# रामचरित-मानस

## बालकाण्ड

### मंगलाचरण

श्लोकाः—वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥१॥

शब्दार्थः—वर्ण=अक्षर । अर्थसंघानां=अर्थ-समूहों–वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ । रस=नवरस–शृंगार, वीर, करुण, हास्य, अद्भुत, भयानक रौद्र, वीभत्स और शान्त । वाणी=सरस्वती । विनायक=गणेश ।

*व्याख्याः—ग्रन्थारम्भ में कवि देवी सरस्वती और गणेशजी की वन्दना* करता हुआ लिखता है कि वर्णों, अर्थ–समूहों, रसों और छन्दों की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती और मङ्गलों के करने वाले गणेश जी को मैं प्रणाम करता हूँ ।

विशेष—ग्रंथ के आरम्भ में महाकवि तुलसीदासजी ने विद्या और बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती और विघ्नों का नाश कर मंगल प्रदान करने वाले गणेश जी की वन्दना इसलिए की है जिससे ग्रंथ निर्विघ्न समाप्त हो और इसके पढ़ने अथवा पढ़ाने वाले का मंगल हो । क्योंकि लिखा है—

"आदि मध्यावसानेषु यस्य ग्रन्थस्य मंगलं ।
तत्पठन् पठनाद्वापि दीर्घायुर्धार्मिको भवेत ॥

× × ×

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम् ॥२॥

शब्दार्थ :—श्रद्धाविश्वासरूपिणौ=श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप । सिद्धाः=सिद्धजन । स्वान्तः=अपने अन्तःकरण में । स्थमीश्वरम्=स्थित ईश्वर को ।

व्याख्या :—श्रद्धा और विश्वास के रूप श्रीपार्वतीजी और श्री शंकर की, मैं वन्दना करता हूँ जिन दोनों की विना कृपा हुए सिद्धजन भी

अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते।

विशेष :—कवि के कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार श्रद्धा और विश्वास के होने से हृदयस्थ ईश्वर के दर्शन हो जाते हैं उसी प्रकार भवानी और शकर की कृपा से श्री रामचन्द्र की भक्ति सुलभ हो जाती है। जो व्यक्ति उनकी आराधना नहीं करता वह राम की भक्ति का अधिकारी भी नहीं होता, जैसा कि श्री राम ने स्वयं कहा है—

**शंकर विमुख भक्ति चह मोरी। सो नर मूढ़ मंद मति थोरी।**

× × × ×

**शंकर भजन विना नर, भक्ति न पावे मोरि।**

× × ×

**वन्दे वोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।**
**यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥३॥**

शब्दार्थ :—वोधमयं=ज्ञानमय। नित्यं=नित्य अर्थात् नाश-रहित। यमाश्रितो=जिनके आश्रित होने से। सर्वत्र= सव कहीं। वन्द्यते=वन्दित होता है, पूजा जाता है।

व्याख्या :—जिनका सहारा पाने से ही वक्र चन्द्रमा की भी सव कहीं वन्दना की जाती है उन ज्ञानमय और अविनाशी शिव स्वरूप गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।

विशेष :—भाव यह है कि जैसे शिवजी के मस्तक का आश्रय पाने के कारण टेढ़े चन्द्रमा की भी वन्दना की जाती है उसी प्रकार गुरु की कृपा से मेरी दोष-युक्त (यदि कोई हो) रचना का भी सर्वत्र आदर किया जायगा।

**सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।**
**वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ ॥४॥**

शब्दार्थ :—गुणग्राम=गुणों के समूह। पुण्यारण्य=पवित्र वन में। विहारिणौ=विहार करने वाले, विचरण करने वाले। विशुद्ध विज्ञानौ=पवित्र ज्ञान-सम्पन्न। कवीश्वर=वाल्मीकि जी। कपीश्वर=हनुमानजी।

व्याख्या :—श्रीराम जानकी के गुण-समूह रूपी पवित्र वन में विहार करने वाले (अर्थात् निरन्तर उनके गुणों का चिन्तन करने वाले), विशुद्ध-

विज्ञान-सम्पन्न कविश्रेष्ठ (महर्षि) वाल्मीकि और (भक्ताग्रगण्य) कपीश्वर हनुमानजी को मैं प्रणाम करता हूँ।

विशेष :—अपने से पूर्व के कवि एवं लेखकों का उल्लेख करने की एक परम्परा रही है। भक्त कवि तुलसीदासजी ने इसी परम्परा का पालन करते हुए महर्षि वाल्मीकि की वन्दना की है। महाकवि जायसी ने भी प्रेमियों के दृष्टांत देते हुए अपने से पूर्व की लिखी कुछ प्रेम कहानियों का उल्लेख किया है—

विक्रम धँसा प्रेम के वारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा॥
मधूपाछ मुगुधावति लागी। गगनपूर होइगा वैरागी॥

× × × ×

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥५॥

शब्दार्थ :—उद्भव=उत्पत्ति, निर्माण। स्थिति=पालन (पालन करने वाली)। सहार=नाश। कारिणी=करने वाली। क्लेश=कष्ट, दुःख, बाधा, विपत्ति आदि। हारिणीम्=हरने वाली, नाश करने वाली। सर्वश्रेयस्करीं=सम्पूर्ण कल्याणों की करने वाली। रामवल्लभाम्=श्रीराम की प्रिया, पत्नी, सीता जी।

व्याख्या :—(इस जगत की) उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और नाश करने वाली, (सब प्रकार के) क्लेशों को दूर करते वाली और समस्त कल्याणों की करने वाली श्रीरामचन्द्रजी की प्रिया, जानकीजी को मैं नमस्कार करता हूं।

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहंतमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥६॥

शब्दार्थ :—यन्मायावशवर्ति=जिनकी माया के वशीभूत अर्थात् जिनकी माया के अधीन। विश्वमखिलं=सम्पूर्ण विश्व, सारा संसार। ब्रह्मादिदेवा-सुरा=ब्रह्मादि देवता और असुर। रामाख्यमीशं=राम कहलाने वाले ईश्वर।

व्याख्या :—जिनकी माया के वशीभूत ब्रह्मा आदि देवताओं और राक्षसों से लेकर सम्पूर्ण संसार है, जिनकी सत्ता से जो कुछ है (अर्थात् यह सारा दृश्य जगत्) रस्सी में सर्प के भ्रम के समान सत्य ही प्रतीत होता है (वास्तव में यह जगत् सत्य अर्थात् हमेशा बना रहने वाला नहीं है, नाशवान् है किंतु ईश्वर की सत्ता से यह नाशवान् जगत् भी नित्य सा प्रतीत होता है) और जिनके केवल चरण ही इस संसार रूपी सागर से पार जाने की इच्छा रखने वालों के लिए नौका रूप हैं उन समस्त कारणों से परे (सब कारणों के कारण और सबसे श्रेष्ठ) राम कहलाने वाले भगवान् श्री हरि की मैं वन्दना करता हूँ।

विशेष :—भ्रमवश रस्सी में सर्प का भान होता है। वास्तव में रस्सी सर्प नहीं है। जैसे रस्सी का सच्चा ज्ञान हो जाने से भ्रम दूर होकर सर्प का भान होना मिट जाता है उसी तरह भगवान् श्रीराम का सच्चा ज्ञान हो जाने पर अज्ञान दूर हो जाता है तथा यह मायिक जगत् झूठा मालूम होने लगता है। तुलसीदास जी ने इसी काण्ड में आगे भी कहा है—

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने। जिमी भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाइ हेराइ। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥

(बाल काण्ड दोहा १११ चौ० १, २)

भागवत् में ब्रह्मा जी ने भगवान् की स्तुति में कहा है—

आत्मानमेवात्मतयाऽविजानतां
तेनैव जातं निखिलं प्रपंचितम्।
ज्ञानेन भूयोऽपि च तत्प्रलीयते
रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा॥

(भागवत् १०, १४, २५)

अर्थात् जैसे अज्ञान रहने पर कोई व्यक्ति रस्सी को साँप समझता है परन्तु ज्ञान हो जाने पर उसका वह भ्रम जाता रहता है वैसे ही जो लोग आत्मा परमात्मा में भेद समझते हैं उन्हीं की दृष्टि में अज्ञानवश यह मिथ्या विश्व-प्रपंच प्रकट होता है किन्तु ज्ञान का उदय होने पर इसका लय हो जाता है।

नाना पुराणनिगमागमसम्मतं यद्—
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ।।७।।

शब्दार्थ :—नानापुराण=अनेक पुराणों । निगमागम=वेद शास्त्रों । निगदितं=कहा गया है, प्रवचन । क्वचिदन्यतोऽपि=कुछ अन्यत्र से भी । स्वान्तः सुखाय=अपने अन्तःकरण के आनन्द के लिए ।

व्याख्या :—जो अनेक पुराणों, वेदों और शास्त्रों का मत है और जो रामायण में वर्णित है उसके अनुसार तथा कुछ अन्यत्र से भी लेकर तुलसी दास, अपने अन्तःकरण के आनन्द के लिए अत्यन्त मनोहर भाषा छन्दों में रघुनाथ जी की कथा का वर्णन करता है ।

विशेष :—उपर्युक्त श्लोक में महाकवि तुलसी ने रामचरितमानस के निर्माण की मूल प्रेरणा अथवा हेतु का उल्लेख किया है । 'स्वान्तः सुखाय' के लिए ही कवि ने इस रचना का सुन्दर भाषा-छन्दों में निर्माण किया है ।

सोरठा—जो सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिबर बदन ।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धिरासि सुभ गुण सदन ।।१।।

शब्दार्थ—सुमिरत=स्मरण करते ही । गननायक=गणों के स्वामी । करि=हाथी । बदन=मुख । अनुग्रह=कृपा ।

व्याख्या—जिनका स्मरण करते ही सब कामों में सिद्धि होती है, जो गणों के स्वामी और सुन्दर हाथी के मुख वाले हैं, वे ही बुद्धि के भण्डार और सुन्दर गुणों के धाम 'श्रीगणेशजी मुझ पर कृपा करें (अर्थात् रामचरित-मानस की रचना के लिए निर्मल बुद्धि दें ) ।

मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़ै गिरिबर गहन ।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलि-मल दहन ।।२।।

शब्दार्थ—मूक=गूँगा । बाचाल=बहुत अधिक बोलने वाला । पंगु=लँगड़ा । गहन=दुर्गम, दुरारोह । कलि-मल-दहन=कलियुग के पापों को जला डालने वाले ।

व्याख्या—जिनकी कृपा से गूँगा बहुत (सुन्दर ज्ञानयुक्त) बोलने वाला हो जाता है और लङ्गड़ा दुर्गम, दुरारोह पहाड़ पर चढ़ जाता है, जो कलियुग के सब पापों को जला डालने वाले हैं, वे दयालु कृपानिधान (भगवान्) मुझ पर कृपा करें।

विशेष :—(१) यद्यपि इस सोरठे में किसी का नाम स्पष्ट नहीं किया गया है, पर इसमें सूर्य देवता से ही प्रार्थना की गई प्रतीत होती है। विनय-पत्रिका में भी तुलसीदासजी ने गणेशजी के बाद सूर्य की वन्दना की है।

(२) इस सोरठे में व्यासजी के निम्न श्लोक की छाया पायी जाती है :—

मूकं करोति वाचालं पंगु लंघयते गिरिं।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम् ॥

× × ×

**नील-सरोरुह-स्याम, तरुण-अरुण-वारिज-नयन ।**
**करउ सो मम उर धाम, सदा छीर सागर सयन ॥३॥**

शब्दार्थ :—नील-सरोरुह=नील कमल। तरुण=पूर्ण खिले हुए। अरुण=लाल।

व्याख्या :—नील कमल के समान जिनका श्याम वर्ण है, पूर्ण खिले हुए लाल कमल के समान जिनके दोनों नेत्र हैं और जो सदा क्षीरसागर (दूध के समुद्र) में शयन करते हैं, वे भगवान् मेरे हृदय में निवास करें।

विशेष :—(१) प्रथम पंक्ति में उपमा अलंकार द्रष्टव्य है।

(२) अनुप्रास—तरुण-अरुण, मम, धाम में वर्ण 'ण' और 'म' की केवल एक बार आवृति होने से छेकानुप्रास है।

**कुन्द-इन्दु-सम देह, उमा रमन करुना-अयन।**
**जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दन मयन ॥४॥**

शब्दार्थ :—कुन्द-इन्दु-सम=कुन्द के फूल और चन्द्रमा के समान। करुणा-अयन=दया के धाम। मर्दन-मयन=कामदेव का नाश करने वाले।

व्याख्या :—जिनका कुन्द के पुष्प के समान सुन्दर और कोमल तथा चन्द्रमा के समान कान्तियुक्त गौर शरीर है, जो पार्वतीजी के संग विहार

करने वाले और दया के धाम हैं और जिनका गरीबों पर स्नेह है, वे कामदेव को भष्म करने वाले शंकरजी मेरे ऊपर कृपा करें।

विशेष :—कुन्द-इन्दु-सम देह में उपमा अलंकार है।

## गुरु—वन्दना

वन्दौं गुरु-पद-कंज, कृपा-सिन्धु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु वचन रवि कर निकर ॥५॥

शब्दार्थ :—पद-कंद=चरण-कमल। नररूप हरि=मनुष्य-रूप में हरि ही हैं। महा-मोह=अत्यधिक अज्ञान। तम-पुंज=अन्धकार-समूह। रवि-कर-निकर=सूर्य की किरणों का समूह।

व्याख्या—मैं उन गुरु महाराज के चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ, जो कृपा के समुद्र और मनुष्य रूप में साक्षात् (भगवान्) विष्णु ही हैं और जिनके उपदेश बड़े भारी अज्ञान की राशि का नाश इस प्रकार कर देते हैं जैसे सूर्य-किरणों का समूह अन्धकार के पुंज का नाश कर देता है।

विशेष :—पद कंज में रूपक अलंकार है।

चौ०—वन्दौं गुरु-पद-पदुम-परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिय मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥

शब्दार्थ :—पदुम=पद्म, कमल। पराग=रज, धूलि। सुबास=सुगन्धित। अमिय=अमृत। मूरि=जड़ी-बूटी। चूरन=चूर्ण। रुज=रोग।

व्याख्या :—मैं गुरु महाराज के चरण-कमलों की सुन्दर कान्तियुक्त, सुगन्धित और कोमल रज की प्रेम से वन्दना करता हूँ। उसके सेवन से संसार के सब रोगों (जन्म, मरण आदि) का परिवार इस प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे अमृत संजीविनी बूटी के सुन्दर चूर्ण का सेवन करने से शरीर के सब रोग जड़ से जाते रहते हैं।

विशेष :—पद-पदुम में रूपक अलंकार है तथा प्रथम चौपाई में अनुप्रास की सुन्दर छटा दर्शनीय है।

सुकृत संभुतन विमल विभूति। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएँ तिलक गुन गन बस करनी॥

शब्दार्थ :—सुकृत=पुण्यवान् । विभूति=राख । मंजुल=सुन्दर । प्रसूति=उत्पन्न करने वाली । मुकुर=दर्पण ।

व्याख्या :—यह रज सुकृति (धार्मिक पुरुष) शिवजी के शरीर में लगी हुई भभूत के समान पवित्र और कल्याण एवम् आनन्द की जननी है। उसके सेवन से भक्तों के मन का (राग-द्वेष आदि) मल इस प्रकार दूर हो जाता है जैसे साधारण मिट्टी से सुन्दर दर्पण का मैल साफ हो जाता है। इस रज को माथे पर लगाते ही गुणों के समूह वश में हो जाते हैं अर्थात् जो उसे माथे पर लगाते हैं उनमें शान्ति, सन्तोष आदि गुण स्वतः ही आ जाते हैं।

श्री गुरु पद-नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती ॥
दलन मोहतम सो सुप्रकासू । बड़े भाग उर आवइ जासू ॥

शब्दार्थ :—मनि-गन=मणियों का समूह । जोति=ज्योति । सुमिरत=सुमरने से ही, स्मरण करते ही । दलन=नाश ।

व्याख्या :—श्री गुरु महाराज के चरण-नखों की ज्योति मणियों के प्रकाश के समान है, जिसका स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है और उसके उत्पन्न होते ही हृदय से मोहरूपी अन्धकार का नाश हो जाता है। जिसके हृदय में यह दृष्टि उत्पन्न हो, उसके बड़े भाग्य हैं।

विशेष :—(१) दिव्य दृष्टि—भगवान् के गुप्त-प्रकट सब चरित्र समझने के लिए दिव्य-दृष्टि अर्थात् ईश्वर की दी हुई सामर्थ्य का होना बहुत जरूरी है। जब भगवान् ने अर्जुन को अपना ऐश्वर्य दिखाया था तब देखने के लिए उसे भी दिव्य दृष्टि ही दी थी। गीता में कहा गया है कि—

"न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥" गीता (११/८)

(२) अलंकार :—'श्री गुरु..............जोति' में उपमा अलंकार है। यह उपमा साभिप्राय है क्योंकि मणियों के प्रकाश में किसी तरह की बाधा नहीं है। इसका प्रकाश सदा अखण्ड और एकसा बना रहने वाला है। सूर्य, चन्द्र और दीपक के प्रकाश में अनेक बाधाएँ हैं। सूर्य एक तो बड़ा गर्म और दूसरे दिन में रहता है तथा जब ग्रहण पड़ता है या मेंह बरसता है तब दिन

में दृष्टिगोचर नहीं होता। चन्द्रमा का प्रकाश तो स्वयं घटता-चढ़ता रहता है और अमावस्या की रात का तो कहना ही क्या? दीपक से जीवों की हिंसा होती है और हवा से उसके बुझने का भय रहता है।

उघरहिं विमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव-रजनी के।
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।।

शब्दार्थ :—उघरहिं=उघड़ जाते हैं, खुल जाते हैं। विमल=निर्मल, पवित्र। ही=हिय, हृदय। भव-रजनी=संसार रूपी रात्रि। जहँ=जहाँ। जेहि=जिस। खानिक=खान।

व्याख्या :—उस दिव्य दृष्टि के हृदय में उत्पन्न होते ही हृदय के निर्मल और पवित्र नेत्र खुल जाते हैं तथा ससार रूपी रात्रि के (मनुष्य पक्ष में मद-मत्सर आदि एवं रात्रि पक्ष में अन्धकार) दोष और दुख (काम, क्रोध आदि तथा रात्रि पक्ष में चोर आदि का भय) मिट जाते हैं तथा श्री राम चरित रूपी मणि और माणिक्य, गुप्त और प्रकट जहाँ जो जिस खान (शास्त्र या पुराण) में हैं, सब दिखायी देने लगते हैं (जैसे कि प्रकाश होने पर खानों में मणि-माणिक्य आदि जहाँ-तहाँ दिखायी पड़ने लगते हैं)।

विशेष :—"भवरजनी और रामचरित-मनिमानिक" में रूपक अलंकार है।

दो०—जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन, भूतल भूरि निधान।।१।।

शब्दार्थ :—अंजि=आँजकर, लगाकर। सुजान=चतुर। कौतुक=आश्चर्य, प्रसन्नता। सैल=पर्वत। भूतल=पृथ्वी का ऊपरी भाग, पाताल। भूरि=स्वर्ण, सोना। निधान=निधि, गड़ा हुआ खजाना।

व्याख्या :—जिस तरह सुन्दर अंजन को आँखों में आँजकर चतुर साधक और सिद्ध पृथ्वी-तल में छिपे हुए खजाने को, पर्वत और वनों में प्रसन्नता के साथ देखते हैं (उसी प्रकार गुरु-पद-रज के लगाने पर रामचरित-रूपी मणि-माणिक्य दिखायी पड़ने लगते हैं।)

चौ०—गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष विभंजन।।
तेहि करि विमल विवेक विलोचन। बरनउँ रामचरित भव-मोचन।।

शब्दार्थ:—मृदु=कोमल। मंजुल=सुन्दर। दोष-विभंजन=दोषों का नाश करने वाला। भवमोचन=संसार के बन्धनों से छुड़ाने वाला।

व्याख्या—श्री गुरु महाराज के चरणों की रज कोमल और सुन्दर नयनामृत अंजन है जो दृष्टि के विकारों को दूर करने वाला है। उसी अंजन से विवेक रूपी नेत्रों को निर्मल करके मैं संसार के बन्धनों (आवागमन) से छुड़ाने वाले रामजी के चरित्र का वर्णन करता हूँ।

विशेष :—(१) 'गुरु-पद-रज मृदु मंजुल अंजन में' रूपक अलंकार है।

(२) 'राम चरित भव मोचन' से श्रीराम के चरित्र की महत्ता का बोध होता है कि श्रीराम का चरित्र संसार के बन्धनों से मुक्त करने वाला और मोक्ष को प्रदान करने वाला है।

## ब्राह्मण-सन्त-वन्दना

बन्दौं प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना॥
सुजन समाज सकल गुन खानी। करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी॥

शब्दार्थ :—महीसुर=पृथ्वी के देवता, ब्राह्मण। मोह जनित=अज्ञान से उत्पन्न। ससय=सन्देह।

व्याख्या :—पहले मैं पृथ्वी के देवता ब्राह्मणों के चरणों की वन्दना करता हूँ जो मोह से उत्पन्न सब सन्देहों को हरने (दूर करने) वाले हैं (जैसे कि याज्ञवल्क्यजी ने भारद्वाज का सन्देह दूर किया था)। फिर समस्त गुणों की खान सन्त-समाज को प्रेम सहित सुन्दर वाणी से प्रणाम करता हूँ।

विशेष :—कवि ने ब्राह्मणों की वन्दना यहाँ 'प्रथम' इसलिये की है क्योंकि ऊपर अमरलोकवासी सुर और उनके तुल्य गुरुदेव की वन्दना की जा चुकी है, पर इस धराधाम पर सब मनुष्यों में ब्राह्मण ही पूज्य है।

साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। वंदनीय जेहिं जग जस पावा॥

शब्दार्थ :—निरस=नीरस, रस रहित। बिसद=विशद, विशाल। गुनमय=गुणों से युक्त। छिद्र=दोष। दुरावा=छिपाता है।

व्याख्या—संतों का चरित्र कपास के चरित्र (जीवन) के समान शुभ

होता है और उसका फल रस-रहित होकर भी विशद और गुण-युक्त होता है (अर्थात् जैसे कपास का फल रस-रहित और उजला होता है तथा उसमें से गुण (तन्तु या सूत) निकलता है उसी तरह संत-चरित्र में भी विषयासक्ति नहीं है और उसका हृदय अज्ञान और पाप रूपी अन्धकार से रहित होने के कारण उज्ज्वल होता है तथा सद्गुणों का भण्डार होने के कारण वह गुणमय है, (जैसे कपास का धागा सूई के किये हुये छेद को अपना तन देकर ढक देता है, अथवा कपास जैसे लोढ़े जाने, काते जाने और बुने जाने का कष्ट सहकर भी वस्त्र के रूप में परिणत होकर दूसरों के गोपनीय स्थानों को ढ़कता है, उसी प्रकार) संत स्वयं दुःख सहकर दूसरों के छिद्रों (दोषों) को ढ़कता है, जिसके कारण उसने इस जगत् में वन्दनीय यश को प्राप्त किया है।

विशेष—"साधु चरित्र सुभ चरित्र कपासू" में उपमा अलंकार है तथा सम्पूर्ण चौपाई में अनुप्रास की छटा द्रष्टव्य है।

मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू॥
रामभक्ति जहँ सुरसरिधारा। सरसई ब्रह्म विचार-प्रचारा॥

शब्दार्थ—जंगम = चलने-फिरने वाला। तीरथराजू = प्रयागराज। सुरसरि = गंगा। सरसइ = सरस्वती।

व्याख्या—संतों का समाज आनन्द-मंगलों से भरपूर है और इस संसार में चलता-फिरता प्रयागराज है (अर्थात् प्रयाग तो एक जगह स्थिर है पर संत समाज चाहे जहाँ जुड़ सकता है)। (जैसे प्रयागराज में गंगा, सरस्वती और यमुना का संगम है उसी तरह संत समाज में) रामजी की भक्ति गंगाजी की धारा है और ब्रह्म के विचार का प्रचार (अर्थात् ब्रह्मविद्या) सरस्वती है।

विशेष—रूपक अलकार।

विधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रविनंदनि बरनी॥
हरि हर कथा विराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥

शब्दार्थ—विधि=जिसमें अच्छे काम करने की आज्ञा है उसे विधि कहते हैं। निषेध=बुरे काम करने की मनाई को निषेध कहते हैं। कलि-मल= कलियुग के पापों को। रविनंदनि=यमुना। हरि=विष्णु। हर=शंकर विराजति=शोभित होती है। बेनी=वेणी, त्रिवेणी।

व्याख्या—विधि और निषेध (यह करो और यह न करो) युक्त कर्मों की कथा ही कलिकाल के पापों को दूर करने वाली सूर्यतनया यमुना जी हैं और भगवान् विष्णु और शंकर जी की कथाएँ त्रिवेणी रूप से सुशोभित हैं, जो सुनते ही सब आनन्द और कल्याणों की देने वाली हैं।

बटु बिस्वासु अचल निज धर्मा। तीरथराज समाज सुकर्मा ॥
सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा ॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देई सद्य फल प्रगट प्रभाऊ ॥

शब्दार्थ—बटु=वटवृक्ष। अचल=स्थिर, अटल। सुकर्मा=शुभकर्म। सुलभ=सरलता से प्राप्त। समन=नाश। अकथ=जिसका वर्णन न किया जा सके। सद्य=तत्काल।

व्याख्या—(उस संत समाज रूपी प्रयागराज में) अपने धर्म के प्रति अटल विश्वास ही अक्षयवट है और शुभकर्म ही उस तीर्थराज का समाज है। (प्रयाग को धनी ही जा सकते हैं और उसके स्नान का माहात्म्य मकर-संक्रांति पर है तथा वह एक देश में ही स्थित है, पर) संत समाज रूपी यह प्रयागराज सब देशों में, सब समय और सभी को सहज में ही प्राप्त हो सकता है और आदर पूर्वक सेवन करने से सब क्लेशों को नष्ट करने वाला है।

यह तीर्थराज अपूर्व, अलौकिक और अकथनीय है। इसके सेवन का प्रभाव सर्वविदित है कि यह तत्काल फल देनेवाला है अर्थात् तीर्थ स्नान का फल तो चिरकाल में मिलता है पर संत समाज में बैठकर रामजी का चरित्र सुनने से तत्काल चित्त को आनन्द होता है।

विशेष—प्रस्तुत चौपाई में संत समाज उपमेय और तीर्थराज प्रयाग उपमान है। संत समाज रूपी प्रयागराज में, प्रयागराज से अधिक गुण होने के कारण यहाँ पर व्यतिरेक अलंकार है।

दोहा—सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥२॥

शब्दार्थ—मुदित=प्रसन्न। मज्जहिं=स्नान करते हैं। चारिफल=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। अछत=रहते हुए।

व्याख्या—जो लोग प्रसन्न मन से (संत समाज में रामचरित्र) सुनकर

उसे समझते हैं और फिर बड़े प्रेम से तन्मय होकर इसमें गोते लगाते हैं, वे इस शरीर के रहते हुए ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों फल पा जाते हैं।

चौपाई—मज्जन फल पेखिय ततकाला। काक होहिं पिक वकउ मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई। सत संगति महिमा नहिं गोई।

शब्दार्थ—पेखिय=देखिए। पिक=कोयल। वकउ=बगुला। मराल=हंस। जनि=नहीं।

व्याख्या—इस तीर्थराज में स्नान का फल तत्काल ऐसा देखने में आता है कि कौए कोयल बन जाते हैं और बगुले हंस। यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे, क्योंकि सत्संगति की महिमा किसी से छिपी नहीं है। (भाव यह है कि जो प्राणी कौओं के समान कठोर-भाषी हैं वे कोकिल के समान मीठा बोलने वाले हो जाते हैं और जो बगुलों के समान पाखण्डी हैं वे हंसों के समान विवेकयुक्त हो जाते है।)

विशेष—"मंज्जनफल...........मराला" में अतिशयोक्ति का आभास होता है।

वालमीकि, नारद, घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी॥
जलचर, थलचर, नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना॥

शब्दार्थ—घटजोनी=अगस्तजी . जहान=संसार

व्याख्या :—वाल्मीकि, नारद और अगस्तजी ने अपने अपने मुख से अपनी होनी (जीवन का वृत्तान्त) कहा है (कि वे किस प्रकार सत्संगति से सुधर गये।) इस संसार में जो जल में रहने वाले, जमीन पर चलने वाले और आकाश में विचरण करने वाले, नाना प्रकार के जड़-चेतन जितने जीव हैं।

विशेष :—(१) छेकानुप्रास है।

(२) प्रस्तुत चौपाई में तीन अन्तर्कथाएँ हैं—

वालमीकि :—वाल्मीकि ऋषि ने रामचन्द्रजी से अपना वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि मैं पहले बहेलिया था। मुनियों के उपदेश और सत्संग से आपका उल्टा नाम 'मरा मरा' जपकर इस परमगति को प्राप्त हुआ हूँ कि आपका घर बैठे दर्शन मिला।

नारद :—नारद ने व्यासजी से आप बीती सुनाते हुए कहा कि मैं एक दासी के पेट से पैदा हुआ था। मेरी माँ एक साधु की टहलनी थी। वहाँ मैं भी जाया करता था और साधुओं की जूठन खा लिया करता था। उससे मेरी बुद्धि ऐसी शुद्ध हो गयी कि माँ के मरने पर मैं एकान्त में जाकर तप करने लगा और अन्त में मरकर मैंने ब्रह्मा के यहाँ जन्म लिया।

अगस्त :—अगस्त मुनि ने शिवजी से अपना हाल कहा है कि मेरे पिता मित्रावरुण तपस्या करते समय रम्भा को देखकर कामातुर हो गये। उनके स्खलित वीर्य को एक घड़े में रख दिया गया, जिससे मैं उत्पन्न हुआ। इसी से मेरा नाम घटज है। मैं जो इस परमगति को प्राप्त हुआ हूँ यह सत्संग का ही फल है।

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥
सो जानब सतसंत प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥

शब्दार्थ :—मति=बुद्धि। कीरति=कीर्ति। भूति=विभूति, ऐश्वर्य। जतन=यत्न। आन=अन्य, दूसरा।

व्याख्या :—उनमें से जिसने जिस समय, जहाँ कहीं भी, जिस किसी यत्न से बुद्धि, कीर्ति, सद्‌गति, ऐश्वर्य और भलाई पायी है, सो सब सत्संग का ही प्रभाव समझना चाहिये। वेदों में और लोक में इनकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

विशेष :—वस्तुतः सत्सग की महिमा अपार है। भगवान् ने स्वयं उद्धव से सत्संग की महिमा का वर्णन इन शब्दों में किया है—

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च
× × × ×
यथाऽवरुन्धते सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम्।
सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः॥

(भागवत् ११/१२)

बिनु सतसंग बिवेकु न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥

शब्दार्थ :—विवेकु=विवेक, ज्ञान । सुलभ=सहज में प्राप्य ।

व्याख्या :—सत्संग के अभाव में ज्ञान नहीं होता और विना श्री रामचन्द्रजी की कृपा के सत्संग सहज में नहीं मिलता । सत्संगति ही आनन्द और कल्याण की मूल है । सत्संगति की सिद्धि (प्राप्ति) ही फल है और सब साधन तो फूल हैं ।

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परस कुधातु सुहाई ।।
बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं । फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं ।।

शब्दार्थ :— सठ=दुष्ट, मूर्ख । कुधातु=लोहा । फनि मनि-सम=सर्प की मणि के समान ।

व्याख्या :—सत्संगति को पाकर दुष्ट मनुष्य भी उसी प्रकार सुधर जाते हैं जैसे पारस पत्थर के स्पर्श से कुधातु लोहा सोना हो जाता है । किन्तु दैवयोग से यदि कभी सज्जन कुसंगति में पड़ जाते हैं, तो वे वहाँ भी साँप की मणि के समान अपने गुणों का ही अनुसरण करते हैं (अर्थात् जिस प्रकार साँप का संसर्ग पाकर भी मणि उसके विष को ग्रहण नहीं करती तथा अपने सहज गुण प्रकाश को नहीं छोड़ती, उसी प्रकार साधु पुरुष दुष्टों के साथ में रहकर भी दूसरों को प्रकाश ही देते हैं, दुष्टों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता) ।

विशेष :— उपमा, उदाहरण एवं अनुप्रास अलंकार ।

बिधि हरि हर कवि कोबिद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ।।
सो मो सन कहि जात न कैसें । साक बनिक मनि गुन जन जैसें ।।

शब्दार्थ :—विधि=ब्रह्मा । हरि=विष्णु । हर=महेश । कोविद=विद्वान् साक-वनिक=साग-तरकारी वेचने वाला ।

व्याख्या :—जब साधु की महिमा करने में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कवि पण्डित और सरस्वती भी हिचकिचाती हैं (क्योंकि साधुओं की महिमा अनन्त, असीम और अपार है) तब मैं उसे कैसे कह सकता हूँ ? जैसे साग-तरकारी वेचने वाला मणियों के गुणों को नहीं कह सकता उसी प्रकार साधु की महिमा भी मुझ से नहीं कही जाती ।

विशेष :—(१) उदाहरण अलंकार।

(२) कवि की दीनता द्रष्टव्य है।

दो०—बन्दौ सन्त समानचित, हित अनहित नहिं कोय।

अञ्जलि गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोय ॥३॥ (क)

शब्दार्थ :—अञ्जलिगत=अञ्जलि में रखे हुए। सुभ=शुभ, सुन्दर।

व्याख्या :—मैं सन्तों को प्रणाम करता हूँ, जिनके चित्त में समता है, जिनका न कोई मित्र है और न कोई शत्रु। वे अञ्जलि में रखे हुए सुन्दर फूल हैं जो दोनों ही हाथों को (जिस हाथ ने फूलों को तोड़ा और जिसने उनको रखा) समान रूप से सुगन्धित करते हैं (इसी प्रकार सन्त भी शत्रु और मित्र दोनों का ही समान रूप से कल्याण करते हैं।)

विशेष :—सन्त और सुमन इन दोनों का एक ही धर्म 'सम सुगन्ध' से सम्बन्ध होने के कारण यहाँ तुल्ययोगिता अलंकार है।

दो०—सन्त सरल चित्त जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु।

बाल विनय सुनि करि कृपा, राम चरन रति देहु ॥३॥ (ख)

शब्दार्थ :—सुभाउ=स्वभाव। रति=प्रीति, प्रेम।

व्याख्या :—सन्त सरल चित्त वाले और संसार के हितकारी होते हैं। उनके ऐसे स्नेह और स्वभाव को जानकर मैं प्रार्थना करता हूँ कि मुझ बालक की विनती सुन वे कृपा करके मुझे श्रीराम के चरणों में प्रीति दें।

विशेष :—प्रथम चरण में अनुप्रास अलंकार है।

## खल-वन्दना

चौ०—बहुरि बंदि खल गन सतिभाये। जे बिनु काज दाहिनेहु बाये।

पर-हित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरष बिषाद बसेरें ॥

शब्दार्थ :—बहुरि=फिर, अब। सतिभाये=सत्यभाव से, सच्चे मन से। काज=कारण, प्रयोजन। उजरें=उजड़ने पर, नष्ट होने पर। बसेरें=बसने पर।

व्याख्या—अब मैं सच्चे भाव से दुष्टों की वन्दना करता हूँ, जो बिना ही प्रयोजन, अपना हित करने वाले के भी प्रतिकूल आचरण करते हैं। पराये

हित की हानि ही जिनकी दृष्टि में लाभ है और (पराये घर आदि के) उजड़ने से जिनको आनन्द तथा बसने से दुःख होता है।

विशेष :—स्वाभावोक्ति अलंकार।

हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से ॥
जो परदोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत जिन्ह के मन माखी ॥

शब्दार्थ :—राकेस=राकेश, चन्द्रमा। भट=वीर, योद्धा। सहसाखी=इन्द्र (सहस्रचक्षु)।

व्याख्या :—वे भगवान् विष्णु और शिवजी के यशरूपी चन्द्रमा को ग्रसने के लिए राहु के समान हैं (अर्थात् जहाँ कहीं कथा, भजन, कीर्तन या सत्संग होता है, उसी में वे बाधा डालते हैं) और दूसरों का (बना हुआ या बनता हुआ) कार्य बिगाड़ने में वे सहस्रबाहु के समान वीर हैं (अर्थात् दो भुजाओं से ही हजार भुजाओं के समान पराक्रम दिखाने को तैयार हो जाते हैं।) वे पराये दोषों को हजार नेत्रों से देखते हैं एवम् दूसरों के हितरूपी घृत के लिए उनका मन मक्खी के समान है (अर्थात् जिस प्रकार मक्खी घी में गिरकर उसे खराब कर देती है और स्वय भी मर जाती है, उसी प्रकार दुष्ट लोग दूसरों के बने बनाये काम को अपनी हानि करके भी बिगाड़ देते हैं।)

विशेष :—(१) भाषा की लाक्षणिकता द्रष्टव्य है।
(२) रूपक एवं उपमा अलंकार हैं।

तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा ॥
उदय केतु सम हित सबही के। कुम्भकरन सम सोवत नीके ॥

शब्दार्थ :—कृसानु=अग्नि। रोष=क्रोध। महिषेसा=यमराज। अघ=पाप। धनेसा=धनेश, कुबेर। केतु=पुच्छल तारा।

व्याख्या :—दुष्ट जनों का तेज अग्नि के समान और क्रोध यमराज का सा होता है (अर्थात् वे दूसरों को देखकर दिन-रात जला करते हैं और जिस पर क्रोध करते हैं उसे दण्ड दिये बिना नहीं छोड़ते)। वे पाप तथा अवगुण रूपी धन में कुबेर के समान धनी होते हैं। (अर्थात् जिस प्रकार कुबेर के पास अतुल धन रहता है उसी प्रकार उनके पास पापों और अवगुणों का

खजाना रहता है)। उनका अभ्युदय सबके लिए पुच्छलतारे के समान है (अर्थात् जैसे केतु उदय होकर देश में अनेक उपद्रव मचाता है और सबको दुख देता है, उसी तरह दुष्ट सभी को हानि पहुँचाते हैं)। इस कारण उनके कुम्भकर्ण के समान सोने में ही (समाज की) भलाई है।

विशेष :—उपमा और रूपक अलंकार है।

पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं ॥
बंदौं खल जस सेष सरोपा। सहस बदन बरनइ पर दोपा ॥

शब्दार्थ :—तनु=तन, शरीर। परिहरहीं=त्याग देते हैं, छोड़ देते हैं। हिम उपल=ओले। दलि=दल करके, नाश करके। गरहीं=गल जाते हैं। जस=जैसा, समान।

व्याख्या—जैसे ओले खेती का नाश करके आप भी गल जाते हैं, वैसे ही वे (दुष्ट) दूसरों का काम बिगाड़ने के लिए अपना शरीर तक छोड़ देते हैं। मैं दुष्टों को (हजार मुख वाले) शेष जी के समान समझकर प्रणाम करता हूँ, जो पराये दोपों को हजार मुखों से (बड़े रोप के साथ) वर्णन करते हैं। अर्थात् जैसे शेषनागजी अपने हजार मुखों से भगवान् के यश का वर्णन करते हैं उसी तरह दुष्ट एक ही मुख से हजारों बार संतों के दोप कहते फिरते हैं।

विशेष :—(१) पर-अकाजु ........गरहीं' में उदाहरण अलंकार है।
(२) 'खल जस सेष सरोपा' में उपमा अलकार है।

पुनि प्रनवौं पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना ॥
बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही। संतत सुरानीक हित जेही ॥
बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन परदोप निहारा ॥

शब्दार्थ—सक्र=इन्द्र। संतत=सदा। सुरानीक=देवताओं की सेना। सुरा=मदिरा। नीक=अच्छी।

व्याख्या—पुनः (मैं) उनको राजा पृथुराज (जिन्होंने भगवान् का यश सुनने के लिए दस हजार कान माँगे थे) के समान जानकर प्रणाम करता हूँ क्योंकि वे पराये पाप को दस हजार कानों से अर्थात् बार-बार सुनते हैं। फिर मैं उनको इन्द्र के समान जानकर प्रणाम करता हूँ क्योंकि उनको निरन्तर सुरा (मदिरा) नीक (अच्छी) और हितकर लगती है, जैसे इन्द्र को

सुरानीक (देवताओं की सेना) हितकर लगती है। जिनको कठोर वचन-रूपी वज्र सदा प्रिय लगता है और वे पराये दोषों को हजार नेत्रों से (अर्थात् बार-बार) देखते हैं।

विशेष :—उपमा, रूपक एवं श्लेष अलंकार द्रष्टव्य हैं।

दो०—उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खलरीति।
जानि पानि जुग जोरि जन, बिनती करइ सप्रीति ॥४॥

शब्दार्थ :—उदासीन=विरक्त । अरि=शत्रु । मीत=मित्र । पानी=पाणी, हाथ।

व्याख्या—दुष्टों की यह रीति है कि वे स्वयं तो शत्रु अथवा मित्र किसी का हित करते नहीं, हमेशा उससे विरक्त रहते हैं परन्तु उनका हित सुनते ही वे जल उठते हैं। ऐसा जानकर यह जन दोनों हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक उनसे विनय करता है।

चौ०—मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा ॥
बायस पलिअहिं अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा ॥

शब्दार्थ—दिसि=दिशा, ओर। भोर=भूल। बायस=कौआ। निरामिष=मांस-रहित।

व्याख्या—मैंने अपनी ओर से उनकी (खूब) विनती की है, परन्तु वे अपनी ओर से थोड़ा सा भी नहीं चूकेंगे अर्थात् मेरे से दुष्टता का व्यवहार करेंगे। क्योंकि बड़े प्रेम से (अच्छी-अच्छी वस्तुएँ खिलाकर) कौओं को भले ही पालो परन्तु काग मांस न खाय—ऐसा कहीं हो सकता है ?

विशेष—लोकोक्ति एवं दृष्टान्त अलंकार।

### सन्त-असन्त-वन्दना।

बन्दौं सन्त असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं ॥

शब्दार्थ :—दुखप्रद=दुखदायी। उभय=दोनों। बीच=अन्तर । दारुन=दारुण, भयंकर।

व्याख्या—अब मैं सन्त और असन्त दोनों के चरणों की वन्दना करता हूँ क्योंकि वे दोनों दुखदायी हैं पर उनके बीच में कुछ भेद कहा गया है।

एक (संत) तो बिछुड़ते समय प्राण हर लेते हैं (अर्थात् संतों का वियोग इतना दुखदायी होता है कि उससे कभी-कभी प्राण भी चले जाते हैं, जैसे राम जी के वियोग में दशरथ ने प्राण त्याग दिये), और दूसरे (असन्त) मिलते ही भयंकर दुःख देते हैं।

विशेष—यथासंख्य अलंकार है।

उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥

शब्दार्थ—जलज=कमल। गुन=गुण। बिलगाहीं=अलग-अलग। जलधि=समुद्र। अगाधू=अगाध, अथाह।

व्याख्या—जैसे कमल और जोंक पानी में एक साथ पैदा होते हैं पर उनके गुण अलग-अलग होते हैं (ऐसे ही संत और असंत दोनों संसार में ही होते हैं परन्तु उनके गुण अलग-अलग होते हैं)। (कमल दर्शन और स्पर्श से सुख देता है, किन्तु जोंक शरीर का स्पर्श पाते ही रक्त चूसने लगती है।) साधु अमृत के समान (मृत्युरूपी संसार से उबारने वाला) और असाधु मदिरा के समान (मोह, प्रमाद और जड़ता उत्पन्न करने वाला) हैं, परन्तु इनका जनक एक ही अथाह समुद्र है। (शास्त्रों में समुद्र-मन्थन से ही अमृत और मदिरा दोनों की उत्पत्ति बतायी गई है।)

विशेष—उदाहरण, उपमा एवं यथासंख्य अलंकार।

भल अनभल निज-निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू॥
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेही सोई॥

शब्दार्थ—अपलोक=अपयश। विभूति=सम्पत्ति। सुधाकर=चन्द्रमा। गरल=विष। कलिमल-सरि=कलियुग के पापों की नदी अर्थात् कर्मनाश। नीक=अच्छा।

व्याख्या—भले और बुरे अपनी-अपनी करनी के अनुसार सुन्दर यश और अपयश की सम्पत्ति को प्राप्त करते हैं। अमृत, चन्द्रमा, गंगाजी, साधु और विष, अग्नि, कर्मनाशा नदी एवं हिंसा करने वाला व्याध, इनके गुण-

अवगुण सब कोई जानते हैं, किन्तु जिसे जो भाता है, उसे वही अच्छा लगता है।

विशेष :—'निज-निज' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।

दो०—भलो भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरतां, गरल सराहिअ मीचु ॥५॥

शब्दार्थ :—सरल है।

व्याख्या :—भला भलाई ही ग्रहण करता है और नीच नीचता को ही ग्रहण किये रहता है। अमृत की सराहना अमर करने में होती है और विष की मारने में।

विशेष :—अनुप्रास अलंकार है।

चौ०—खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा ॥
तेहि तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥

शब्दार्थ :—अगुन=अवगुण। गाहा=गाथा, कथा। अवगाह=अथाह।

व्याख्या :—दुष्टों के पाप और अवगुणों की तथा साधुओं के गुणों की कथाएँ. दोनों ही अपार और अथाह समुद्र हैं। इसी से कुछ गुण और दोषों का वर्णन किया है, क्योंकि बिना पहिचाने संतों की सगति और दुष्टों का त्याग नहीं हो सकता।

भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए ॥
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना ॥

शब्दार्थ :—पोच=बुरे। बिधि=ब्रह्मा। बिलग =अलग-अलग। पुराना=पुराण। प्रपच=विस्तार, संसार।

व्याख्या :—विधाता ने भले और बुरे सभी पैदा किये हैं, पर गुणों और दोषों का विचार कर वेदों ने उनको अलग-अलग कर दिया है। वेद, इतिहास और पुराण (सभी ग्रन्थ) कहते हैं कि ब्रह्मा की यह सृष्टि गुणों और अवगुणों से सनी हुयी है।

विशेषः—अनुप्रास अलंकार है।

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुर मीचू ॥

माया ब्रह्म जीव जगदीसा । लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा । मरु मारव महिदेव गवासा ॥
सरग नरक अनुराग विरागा । निगमागम गुन दोष विभागा ॥

शब्दार्थ :—माहुरु=विष । मीचू=मृत्यु । लच्छि=लक्ष्मी । अवनीसा=राजा । मग=मगध । महिदेव=ब्राह्मण । गवासा=कसाई ।

व्याख्या :—दुःख-सुख, पाप-पुण्य, दिन-रात, साधु-असाधु, सुजाति-कुजाति, दानव-देवता, ऊँच और नीच तथा सुन्दर जीवन को देने वाला अमृत और मृत्यु प्रदान करने वाला विष, माया-ब्रह्म, जीव-ईश्वर, लक्ष्मी-दरिद्रता, रंक-राजा, काशी-मगध, गङ्गा-कर्मनाशा, मरु (रेतीला) मालवा (हरा-भरा), ब्राह्मण-कसाई, स्वर्ग-नरक, प्रेम-वैराग्य, (ये सभी पदार्थ ब्रह्मा की सृष्टि में हैं ।) वेद-शास्त्रों ने उनके गुण-दोषों का विभाग कर दिया है ।

विशेष :—यथासंख्य अलंकार का आभास होता है ।

दो०—जड़ चेतन गुन दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार ।
संत-हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार ॥६॥

शब्दार्थ :—पय=दूध । परिहरि=त्यागकर । विकार=दोष ।

व्याख्या :—ईश्वर ने इस जड़-चेतन विश्व को गुण-दोषमय बनाया है । किंतु सन्त रूपी-हंस दोष-रूपी जल को छोड़कर गुणरूपी दूध को ही ग्रहण करते हैं ।

विशेष :—रूपक अलंकार है ।

चौ०—अस विवेक जब देइ बिधाता । तब तजि दोष गुनहिं मनु राता ॥
काल सुभाउ करम बरिआई । भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई ॥

शब्दार्थ :—बिबेक=विवेक, ज्ञान । राता=रति, प्रेम । सुभाउ=स्वभाव । करम बरिआई=कर्म की प्रबलता ।

व्याख्या :—जब विधाता ऐसा हंस का सा विवेक दें तब दोषों को छोड़कर मन गुणों में अनुरक्त होता है । फिर भी काल, स्वभाव और कर्म की प्रबलता से भले लोग (साधु) भी माया के वश में होकर कभी-कभी भलाई से चूक जाते हैं ।

सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू॥

शब्दार्थ :—हरिजन=भगवान के भक्त। जिमि=जैसे। विमल=पवित्र। अभंगू=विनाजित नहीं होने वाला।

व्याख्या :—उस चूक को जैसे भगवान् के भक्त सुधार लेते हैं और (चूक से पैदा हुए) दुःख-दोषों को मिटाकर निर्मल यश देते हैं, वैसे ही दुष्ट भी कभी-कभी उत्तम संग पाकर भलाई करते हैं, परन्तु उनका कभी भंग न होने वाला नीच स्वभाव नहीं जाता।

विशेष :—दूसरी पंक्ति में अतद्गुण अलंकार है।

लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ॥
उघरहिं अन्त न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥

शब्दार्थ :—सुबेष=अच्छा वेष, साधु का सा वेष। वंचक=धूर्त्त। निबाहू=निर्वाह।

व्याख्या :—जो ठग संसार में संतों का सा सुन्दर वेष बनाये फिरते हैं वे भी वेष के प्रताप से पूजे जाते हैं, परन्तु एक-न-एक दिन उनकी सब कलई खुल जाती है और उनका कपट अन्त तक नहीं चल पाता, जैसे कालनेमि, रावण और राहु के साथ हुआ।

विशेष :—(१) उदाहरण अलंकार है।

(२) अन्तर्कथाओं का सुन्दर प्रयोग हुआ है। कालनेमि की कथा लंका काण्ड में और रावण की कथा अरण्यकाण्ड में आती है।

समुद्र-मथन के बाद जब भगवान् देवताओं को अमृत पिलाने लगे तब राहु भी देवताओं का रूप बनाकर उनमें जा बैठा था। यह देख भगवान् ने चक्र से उसका सिर काट लिया।

किएहुँ कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुँ बेद बिदित सब काहू॥

शब्दार्थ :—लाहू=लाभ। विदित=ज्ञात।

व्याख्या :—बुरा वेष बना लेने पर भी साधु का सन्मान ही होता है, जैसे जगत् में जामवन्त और हनुमानजी का हुआ। बुरे संग से हानि और

अच्छे संग से लाभ होता है। यह बात लोक और वेद में है और सभी लोग इसको जानते हैं।

विशेष :—उदाहरण अलंकार है।

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा ॥
साधु असाधु सदन सुक सारीं। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं ॥

शब्दार्थ :गगन=आकाश। रज=धूल। प्रसंग=साथ। सदन=गृह, घर। सुक=तोता। सारी=मैना। गनि=गिनकर। गारीं=गाली।

व्याख्या :—धूल ऊपर जाने वाले पवन के साथ तो आकाश पर चढ़ जाती है और वही नीचे की ओर बहने वाले जल के संग से कीचड़ में मिल जाती है। साधु के घर के तोता-मैना राम-राम का सुमिरन करते हैं और असाधु के घर के गिन-गिनकर गालियां देते हैं।

विशेष :—तद्गुण एवं क्रम अलंकार है।

धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई ॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवनदाता ॥

शब्दार्थ :—धूम=धुआं। मंजु=सुन्दर। मसि=स्याही। अनल=अग्नि। अनिल=हवा। जलद=बादल।

व्याख्या :—कुसंग के कारण धूआं कालिख कहलाता है और (सुसंग से) सुन्दर स्याही होकर पुराण लिखने के काम में आता है और वही धूआं, पानी अग्नि और पवन के संयोग से बादल होकर जगत् को जीवन देने वाला बन जाता है।

विशेष :—अनुप्रास अलंकार है।

दोहा—ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होंहि कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग ॥७(क) ॥

शब्दार्थ :—भेषज=औषधि। पट=वस्त्र। सुलच्छन लोग=अच्छे लक्षण वाले अर्थात् विचारशील मनुष्य।

व्याख्या :—ग्रह, औषधि, जल, वायु और वस्त्र—ये सब भी कुसंग और सुसंग पाकर संसार में बुरे और भले पदार्थ हो जाते हैं। चतुर और विवेकशील पुरुष ही इस बात को जानते हैं।

विशेष :—(१) ग्रह अच्छे स्थान पर अच्छा और बुरे स्थान में बुरा फल देते हैं। (२) औषध अच्छे अनुमान के साथ लाभदायक और बुरे के साथ हानिकारक होती है। (३) जल पवित्र मनुष्य के हाथ का शुद्ध होता है और पतित के हाथ का अशुद्ध माना जाता है। (४) पवन पुष्पों के संग से सुगंधित और मलिन वस्तु के संसर्ग से दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। वस्त्र ठाकुर जी पर चढ़ने से पवित्र और मृतक पर चढ़ने से अपवित्र हो जाता है।

सम प्रकास तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह ॥७(ख)॥

शब्दार्थ :—तम=अन्धकार। पाख=पक्ष। सोषक=शोषक, घटाने वाला। पोषक=बढ़ाने वाला।

व्याख्या :—महीने के दोनों पक्षों में चांदना और अन्धेरा समान ही रहता है, परन्तु विधाता ने उनके नाम में भेद कर दिया है (एक का नाम शुक्ल और दूसरे का नाम कृष्ण रखकर) एक को चन्द्रमा का बढ़ाने वाला और दूसरे को उसका घटाने वाला समझकर जगत् ने एक को सुयश तथा दूसरे को अपयश दिया है।

विशेष :—उपर्युक्त दोहे के दूसरे एवं चौथे चरण में अक्रमत्व दोष है। शशि-पोषक को यश और शोषक को अपयश होना चाहिये।

## तुलसीदासजी की दीनता और रामभक्तिमयी कविता की महिमा

दोहा—जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदौं सबके पद-कमल सदा जोरि जुग पानि ॥७(ग)॥

शब्दार्थ :—जत=जितने। जानि=जानकर।

व्याख्या :—संसार में जितने जड़ और चेतन जीव हैं, सबको राममय जानकर मैं उन सबके चरण-कमलों की सदा दोनों हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ।

विशेष :—पद-कमल में रूपक अलंकार है।

देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर गंधर्व।
बंदौं किंनर रजनिचर, कृपा करहु अब सर्ब ॥७(घ)॥

शब्दार्थ :—देव=देवता। दनुज=दैत्य। खग=पक्षी। किन्नर=देवयोनि विशेष। रजनिचर=राक्षस।

व्याख्या :—देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर और राक्षस सबको मैं प्रणाम करता हूँ। अब सब मेरे ऊपर कृपा करें।

चौ०—आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभवासी॥
सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

शब्दार्थ :—आकर=समूह, खान। पानी=पाणि, हाथ।

व्याख्या :—जीवों के चार (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, जरायुज) वर्गों में चौरासी लाख (जलचर ९ लाख, मनुष्य ४ लाख, स्थावर २० लाख, कीट ११ लाख, पक्षी १० लाख और चौपाये ३३ लाख) तरह की जातियाँ हैं। उनके सब जीव जल, थल और आकाश में रहते हैं। उन सब जीवों से भरे हुए इस संसार को श्री सीताराममय जानकर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

जानि कृपाकर किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाडि छल छोहू।
निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। तातें बिनय करउँ सब पाहीं॥

शब्दार्थ :—किंकर=सेवक, दास। छाड़ि छल=छल को छोड़कर। छोहू=छोह, कृपा, प्रेम। सब पाहिं=सबसे।

व्याख्या :—मुझे अपना सेवक जानकर, कृपा की खान आप सब लोग मिलकर, छल छोड़कर मेरे ऊपर कृपा कीजिये। मुझे अपने बुद्धिबल का भरोसा नहीं है, इसीलिए मैं आप सबसे विनती करता हूँ।

करन चहउँ रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा॥
सूझ न एकउ अङ्ग उपाऊ। मन मति-रंक मनोरथ राऊ॥

शब्दार्थ :—गाहा=गाथा, कथा। अवगाहा=अथाह। मति=बुद्धि। राऊ=राजा।

व्याख्या :—मैं श्री रघुनाथजी के गुणों की कथा रचना चाहता हूँ पर मेरी बुद्धि तो छोटी है और श्रीरामजी का चरित्र अथाह है। इसके लिए मुझे उपाय का एक अङ्ग अर्थात् कुछ भी उपाय नहीं सूझता। मेरे मन और बुद्धि तो कंगाल हैं और मनोरथ राजाओं का है।

विशेष :—अन्तिम चरण में रूपक अलंकार है।

मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी। चहिअ अमिय जग जुरइ न छाछी॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालवचन मन लाई॥

व्याख्या :—मेरी बुद्धि तो अत्यन्त नीच (अर्थात् तुच्छ कामों में लगने वाली) है और लालसा ऊँची तथा उत्तम है। यह सब इस तरह है जैसे किसी से संसार में छाछ तक तो जुड़ती न हो और अमृत की चाहना हो। इसलिए सज्जन मेरी धृष्टता को क्षमा करेंगे और मेरे बालवचनों को मन लगाकर (प्रेमपूर्वक) सुनेंगे।

जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥
हँसिहहिं कूर कुटिल कुविचारी। जे पर दूषन भूषनधारी॥

शब्दार्थ :—तोतरि=तोतली, अस्पष्ट। मुदित=प्रसन्न। अरु=और। दूषन=दोष।

व्याख्या :—जब बालक तोतले वचन बोलता है तो उन्हें माँ-बाप मन में प्रसन्न होकर सुनते हैं। पर जो दुष्ट और कुटिल हैं, जिनके विचार अच्छे नहीं हैं और जो पराये दोषों को भूषण की भाँति धारण करते हैं (अर्थात् पराये दोष दिखा-दिखाकर ही अपनी पंडिताई प्रकट करते हैं) वे हँसेंगे।

निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका॥
जे पर भनिति सुनत हरषाहीं। ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं॥

शब्दार्थ :—कवित्त=कविता। फीका=नीरस। भनिति=भणित-कही हुयी। बर=श्रेष्ठ।

व्याख्या :—अपनी कविता चाहे वह सरस हो अथवा अत्यधिक नीरस, किसे अच्छी नहीं लगती? पर जो दूसरे की कही हुयी कविता को सुनकर प्रसन्न होते हों, ऐसे सज्जन संसार में बहुत नहीं हैं।

जग बहु नर सर सरि सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हि जल पाई॥
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई॥

शब्दार्थ :—सर=तालाब। सरि=सरिता, नदी। बाढ़ि=बाढ़ से। पूर=पूर्ण। बिधु=चन्द्रमा।

व्याख्या :—हे भाई! इस संसार में सरोवर और सरिताओं के समान

मनुष्य ही अधिक हैं, जो जल पाकर अपनी ही बाढ़ से बढ़ते हैं (अर्थात् अपनी ही उन्नति से प्रसन्न होते हैं)। पर समुद्र-सा तो कोई एक विरला ही सज्जन होता है जो चन्द्रमा को पूर्ण देखकर ( दूसरों का उत्कर्ष देखकर ) उमड़ पड़ता है।

विशेष :—सर सरि-सम और सिन्धु-सम में उपमा अलंकार है।

दो०—भाग छोट अभिलाषु बड़, करउँ एक विस्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास ॥८॥

शब्दार्थ :—भाग=भाग्य। छोट=छोटा। उपहास=हँसी।

व्याख्या :—मेरा भाग्य तो छोटा है और अभिलाषा बहुत बड़ी है, पर मुझे एक विश्वास है कि इसे सुनकर सभी सज्जन सुख पावेंगे और दुष्ट इसकी हँसी उड़ावेंगे।

विशेष :—'सुख सुनि सुजन सब' में अनुप्रास अलंकार है।

चौ०—खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा ॥
हँसहि बक दादुर चातकही। हँसहिं मलिन खल विमल बतकही ॥

शब्दार्थ :—परिहास=उपहास, हँसी। कलकंठ=मधुर कण्ठ वाली-कोयल। बक=बगुला। दादुर=मेंढ़क। विमल=निर्मल। बतकहीं=वाणी, वार्त्तालाप।

व्याख्या :—किन्तु दुष्टों के हँसने से मेरा हित ही होगा, क्योंकि मधुर कण्ठवाली कोयल को कौए तो कठोर ही कहा करते हैं। जैसे बगुले हँसों पर और मेंढ़क पपीहों पर हँसा करते हैं वैसे ही नीच और दुष्ट, मलिन मन वाले निर्दोष और निर्मल वाणी पर हँसते हैं।

विशेष :—'खलपरिहास होइ हित मोरा' में विरोधाभास तथा काक···· कठोरा में अनुप्रास की छटा है।

कवित रसिक न राम पद नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू ॥
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी ॥

शब्दार्थ :—नेहू=स्नेह, प्रेम। हास=हास्य। भनिति=भणित, रचना। भोरि=भोली, अपरिपक्व। खोरी=खोरि, बुराई।

व्याख्या :—जो कविता के तो रसिक हैं पर जिनकी श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रीति नहीं है, उनके लिए भी यह कविता सुखद हास्यरस का काम देगी। प्रथम तो वह भाषा की रचना है, दूसरे मेरी बुद्धि भोली (अपरिपक्व) है; इससे यह हँसने के योग्य ही है और उनके हँसने में कोई दोष नहीं है।

प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीको। तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी॥
हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुवर की॥

शब्दार्थ :—सामुझि=समझ। फीकी=नीरस। रति-प्रेम। कुतरकी=व्यर्थ का विवाद करने वाली।

व्याख्या :—जिनकी प्रभु के चरणों में प्रीति नहीं है पर समझ अच्छी है (अर्थात् जो कथा के रसिक हैं) उनको यह कथा सुनने में नीरस लगेगी (क्योंकि इसमें श्रीरामजी के यश का वर्णन है और वह रामजी का भक्त न होने के कारण उन्हें अच्छा नहीं लगेगा)। जिनकी भगवान् विष्णु और शिवजी के चरणों में प्रीति है और जिनकी बुद्धि व्यर्थ के तर्क करने वाली नहीं है, उन्हें श्री रघुनाथजी की यह कथा मीठी लगेगी।

राम भगति भूषित जियँ जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी॥
कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू॥

शब्दार्थ :—जियँ=हृदय। सुजन=सज्जन। प्रबीनू=कुशल, प्रवीण।

व्याख्या :—सज्जनगण इस कथा को अपने मन में श्रीरामजी की भक्ति से भूषित जानकर सुनेंगे और सुन्दर वाणी से इसकी सराहना करेंगे। मैं न तो कवि हूँ, न वाक्य-रचना में ही कुशल हूँ, मैं तो सब कलाओं तथा सब विद्याओं से रहित हूँ।

विशेष :—द्वितीय चरण में अनुप्रास अलंकार है।

आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा॥
कबित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें॥

शब्दार्थ :—आखर=अक्षर। अरथ=अर्थ। नाना=अनेक प्रकार के। बिधान=रीति। अपार=असीम। बिबेक=ज्ञान।

व्याख्या :—काव्य-रचना के लिए अनेक प्रकार के अक्षर उनके अर्थ एवम् अलंकार, अनेक प्रकार के छन्द और उनकी रचना की रीति, भावों और रसों के अगणित भेद और काव्य के अनेक प्रकार के गुण व दोषों का जानना जरूरी होता है, पर इनमें से काव्य-सम्बन्धी एक भी बात का ज्ञान मुझमें नहीं है। मैं यह कोरे कागज पर लिखकर (शपथपूर्वक) सत्य-सत्य कहता हूँ।

दो०—भनिति मोरि सब गुन रहित, बिस्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनहहिं सुमति, जिन्ह कें बिमल बिबेक ॥९॥

शब्दार्थ :—भनिति=रचना। बिस्व=विश्व। बिमल=निर्मल।

व्याख्या :—मेरी कविता सब गुणों से रहित है, पर इसमें जगत्-प्रसिद्ध एक गुण है। उसी को विचार कर जिनकी सुन्दर बुद्धि और निर्मल ज्ञान है वे इसे सुनेंगे।

चौ०—एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा॥
मंगल भवन अमंगलहारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥

शब्दार्थ :—एहि महँ=इसमें। श्रुति=वेद। पुरारी=शिव।

व्याख्या :—इसमें रघुनाथ जी का उदार (सब मनोरथ का दाता) नाम है, जो अत्यन्त पवित्र और वेद-पुराणों का सार है। यह कल्याण का भवन है और अमंगलों को हरने वाला है। इसे भगवान् शंकर पार्वतीजी सहित सदा जपा करते हैं।

भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ।
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥

शब्दार्थ :—बिधुबदनी=चन्द्रमुखी। बसन=वस्त्र।

व्याख्या :—कविता चाहे जैसी विचित्र और अच्छे कवि की रची हुई हो, पर वह भी राम नाम के बिना शोभा नहीं पाती। जैसे चन्द्रमा के समान मुखवाली सुन्दर स्त्री सब प्रकार से सुसज्जित होने पर भी वस्त्र के बिना शोभा नहीं देती।

विशेष :—अर्थान्तरन्यास, रूपक एवं विनोक्ति अलंकार।

सब गुन रहित कुकवि कृत बानी । राम नाम जस अंकित जानी ॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही । मधुकर सरिस संत गुनग्राही ॥

शब्दार्थ :—बुध=बुद्धिमान् । मधुकर=भौंरा । सरिस=समान ।

व्याख्या :—और भले ही सब गुणों से रहित तथा कुकवि की रची हुई कविता हो, परन्तु उसको राम के नाम एवं यश से अंकित जानकर, बुद्धिमान् लोग उसे बड़े आदर से कहते और सुनते हैं क्योंकि संत जन भौंरे की भाँति गुण के ग्राहक होते हैं ।

विशेष :—'मधुकर सरिस संत गुनग्राही' में उपमा अलंकार है ।

जदपि कवित रस एकउ नाहीं । राम प्रताप प्रगट एहि माहीं ॥
सोइ भरोस मोरें मन आवा । केहिं न सुसंग बड़प्पनु पावा ॥

शब्दार्थ :—जदपि=यद्यपि । एकउ=एक भी । एहि माहीं=इसमें ।

व्याख्या :—यद्यपि मेरी इस रचना में कविता का एक भी रस नहीं है, तथापि इसमें श्री रामजी का प्रताप प्रकट है । मेरे मन में यही एक भरोसा है कि अच्छे संग से किसने बड़प्पन नहीं पाया ?

धूमउ तजइ सहज करुआई । अगरु प्रसंग सुगन्ध बसाई ॥
भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी । राम कथा जग मंगल करनी ॥

शब्दार्थ :—धूमउ=धुआँ । सहज=स्वाभाविक । भदेस=असुन्दर ।

व्याख्या :—धुआँ भी अगर के साथ मिलने से अपनी स्वाभाविक कड़ुआहट छोड़कर अच्छी सुगन्धि देने लगता है । मेरी कविता असुन्दर अवश्य है, परन्तु इसमें संसार का कल्याण करने वाली रामकथा-रूपी उत्तम वस्तु का वर्णन किया गया है (इससे यह भी अच्छी ही समझी जायगी) ।

विशेष :—तद्गुण अलंकार है ।

छन्द—मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।
गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की ॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी ।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी ॥

शब्दार्थ :—पाथ=जल । सुजन=सज्जन । मसान=श्मशान ।

व्याख्या :—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्री रघुनाथजी की कथा कल्याण करने वाली और कलियुग के पापों को हरने वाली है। मेरी इस असुन्दर कवितारूपी सरिता की चाल पवित्र जल वाली नदी (गङ्गाजी) की चाल की भाँति टेढ़ी है। भगवान् श्रीरघुनाथजी के सुन्दर यश के संग से यह कविता सुन्दर तथा सज्जनों के मन को भाने वाली हो जायगी। श्मशान की अपवित्र राख भी श्री महादेवजी के अंग के संग से सुहावनी लगती है और स्मरण करते ही पावन करने वाली होती है।

विशेष :—कविता-सरिता में रूपक तथा अन्तिम दो पंक्तियों में अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

दो०—प्रिय लागिहि अति सबहि, मम-भनिति राम जस संग।
दारु विचारु कि करइ कोउ, बंदिअ मलय प्रसंग॥ १० (क)॥

शब्दार्थ :—जस=यश। दारु=काठ, लकड़ी।

व्याख्या :—श्रीरामजी के यश के संग से मेरी कविता सभी को अत्यन्त प्रिय लगेगी। जैसे मलयागिरि के संसर्ग से काष्टमात्र चन्दन बनकर बन्दनीय हो जाता है, फिर क्या कोई काठ (की तुच्छता) का विचार करता है?

स्याम सुरभि पय बिसद अति, गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस, गावहिं सुनहिं सुजान॥१० (ख)॥

शब्दार्थ :—सुरभि=गाय। पय=दूध। बिसद=विशद, सफेद।

व्याख्या :—श्यामा गौ काली होने पर भी उसका दूध उज्ज्वल और बहुत गुणकारी होता है। यही समझकर सब लोग उसे पीते हैं। इसी तरह गँवारू भाषा में होने पर भी श्रीसीता-रामजी के यश को बुद्धिमान् लोग बड़े चाव से गाते और सुनते हैं।

चौ०—मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥

शब्दार्थ :—मुकता=मोती। अहि=सर्प। गिरि=पर्वत। गज=हाथी। नृप=राजा।

व्याख्या :—जब एक मणि सर्प के सिर पर, माणिक्य पर्वत की चोटी पर और मोती हाथी के मस्तक पर रहता है तब तक उनमें जैसी शोभा

होती है, वह प्रकट नहीं होती। पर राजा के मुकुट में और तरुण स्त्री के शरीर पर वे सब अधिक शोभा पाते हैं।

विशेष :—अनुप्रास अलंकार है।

तैसेंहि सुकवि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत-अनत छबि लहहीं॥
भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥

शब्दार्थ :—बुध=बुद्धिमान्। अनत=और कहीं, दूसरी जगह में। छवि=शोभा। सारद=सरस्वती।

व्याख्या :—इसी तरह, बुद्धिमान् लोग कहते हैं कि सुकवि की कविता उत्पन्न और कहीं होती है और शोभा कहीं और (अन्यत्र) पाती है। (कविता करते समय) जब सरस्वती का स्मरण किया जाता है तब वह भक्ति के कारण ब्रह्मलोक छोड़कर दौड़ी आती है।

विशेष :—पूर्व चौपाई में एक सामान्य बात कही गई थी, प्रस्तुत चौपाई के प्रथम दो चरणों में उदाहरण द्वारा उसे स्पष्ट किया गया है। अतः यहाँ उदाहरण अलंकार है (२) अनत-अनत में पुनरुक्ति प्रकाश है।

रामचरित सर बिनु अन्हवाएँ। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ॥
कबि कोविद अस हृदयँ बिचारी। गावहिं हरि जस कलि मल हारी॥

शब्दार्थ :—सर=सरोवर। अन्हवाएँ=स्नान कराये। कोटि=करोड़ों।

व्याख्या :—परन्तु रामचरित-रूपी सरोवर में स्नान कराये बिना उसकी (सरस्वतीजी की दौड़ी आने की वह) थकावट करोड़ों उपायों से भी दूर नहीं होती (भाव यह है कि यदि कविता रचने की शक्ति हो तो भगवान् के यश का बखान करके ही उसे सफल करना चाहिए)। कवि और पण्डित अपने हृदय में ऐसा विचारकर भगवान् के गुण गाते हैं जो कलि के पापों के नाशक हैं।

विशेष :—'रामचरित-सर में' रूपक अलंकार है।

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना॥
हृदय सिन्धु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥
जौं बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकतामनि चारू॥

**शब्दार्थ** :—प्राकृत-जन=संसारी मनुष्य । गिरा=सरस्वती । मति=बुद्धि । चारु=सुन्दर ।

**व्याख्या** :—संसारी मनुष्यों का गुणगान करने से सरस्वती जी सिर धुन-धुन कर पछताने लगती हैं (कि मैं क्यों इसके बुलानें पर आयी) । बुद्धिमान् लोग हृदय को समुद्र, बुद्धि को सीप और सरस्वती को स्वाति नक्षत्र के समान कहते हैं । इसमें यदि श्रेष्ठ विचार-रूपी जल बरसता है तो कवितारूपी सुन्दर मोती पैदा होते हैं ।

**विशेष** :—(१) 'सिर धुनि पछिताना' मुहावरे का सुन्दर प्रयोग,
(२) भाषा की लाक्षणिकता एवं
(३) रूपक अलंकार की छटा द्रष्टव्य है ।

**दो०—जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं, रामचरित बर ताग ।**
**पहिरहिं सज्जन विमल उर, सोभा अति अनुराग ॥११॥**

**शब्दार्थ** :— जुगुति=युक्ति । ताग=तागा (सूत) ।

**व्याख्या** :—उन (कवितारूपी) मुक्तामणियों को युक्ति से बेंधकर फिर रामचरितरूपी सुन्दर तागे में पिरोकर संतजन बड़े प्रेम से अपने निर्मल हृदय में धारण करते हैं, जिससे अत्यन्त अनुराग रूपी शोभा होती है ।

**विशेष** :—'रामचरित-बर ताग' में उपमा अलंकार है ।

**चौ०—जे जनमें कलिकाल कराला । करतब बायस बेष मराला ॥**
**चलत कुपंथ बेद मग छाँड़े । कपट कलेवर कलिमल भाँड़े ॥**

**शब्दार्थ** :—कराल=घोर । करतब=कर्म । भांडे=पात्र ।

**व्याख्या** :—जो घोर कलिकाल में पैदा हुए हैं, जिनके कर्म कौओं के समान और वेष हंसों का सा है, जो वेदमार्ग को छोड़कर कुमार्ग पर चलते हैं, उनका शरीर कपट से भरा हुआ है और वे कलि के पापों के पात्र अर्थात् बड़े भारी पापी हैं ।

**बंचक भगत कहाइ राम के । किंकर कंचन कोह काम के ॥**
**तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी । धींग धरमध्वज धंधकधोरी ॥**

**शब्दार्थ** :— बंचक=धूर्त्त, ठग । किंकर=सेवक । कोह=क्रोध । धंधकधोरी=काम-धन्धे का बोझ लादने वाला ।

व्याख्या :—वे हैं तो ठग पर (वैष्णवों का सा छापा-तिलक लगा रखा है इस कारण) रामजी के भक्त कहाते हैं, और सुवर्ण (अर्थात् लोभ), क्रोध और काम के दास हैं। संसार के ऐसे लोगों में सबसे पहले मेरी गिनती है। सो ऐसे—धर्म का झंडा लेकर धंधा करने वालों में धुरंधर—मुझे धिक्कार है।

विशेष :—द्वितीय और चतुर्थ चरण में अनुप्रास है।

जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ॥
ताते मैं अति अलप बखाने। थोरे महुँ जानिहहिं सयाने॥

शब्दार्थ :—अलप=कम, संक्षेप। सयाने=चतुर, बुद्धिमान्।

व्याख्या :—यदि मैं अपने सब अवगुणों को कहने बैठूँ तो कथा बहुत बढ़ जायेगी और मैं पार नहीं पाऊँगा (अर्थात् अपनी ही कथा कहने में रह जाउँगा)। इसलिये मैंने बहुत संक्षेप में कहा है क्योंकि बुद्धिमान् लोग थोड़े में ही समझ लेंगे (बुद्धिमानों के लिए संकेत ही पर्याप्त है)।

समुझि बिबिध बिधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी॥
एतेहु पर करिहहिं जे संका। मोहि ते अधिक ते जड़मति रंका॥

शब्दार्थ :—खोरी=खोरि, दोष। जड=मूर्ख। रंक=दरिद्र।

व्याख्या :—मेरी अनेक प्रकार की विनती को समझकर, कोई भी इस कथा को सुनकर दोष नहीं देगा। इतने पर भी जो शंका करेंगे, वे मुझसे भी अधिक मूर्ख और मति के दरिद्री हैं।

कबि न होउँ नहि चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ॥
कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा॥

शब्दार्थ :—अपार=असीम। निरत=आसक्त।

व्याख्या :—न तो मैं कवि हूँ, न चतुर कहलाता हूँ। (मैं तो केवल) अपनी बुद्धि के अनुसार श्रीरामजी के गुण गाता हूँ। कहाँ तो श्री रघुनाथजी के अपार चरित्र और कहाँ दुनियादारी में आसक्त मेरी बुद्धि! (दोनों में बड़ा भारी अन्तर है।)

जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥
समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई॥

शब्दार्थ :—मारुत=पवन । मेरु=सुमेरु । तूल=रूई । अमित=असीम । कदराई=कायरता, हिचकिचाहट'।

व्याख्या :—जो पवन सुमेरु-जैसे पर्वत को उड़ा सकती है, कहिये, उसके सामने रुई किस गिनती में है (अर्थात् जिस रामचरित का वर्णन शेष-शारदा भी नहीं कर सकते उसे कहने के लिए मेरी क्या सामर्थ्य है) । इसीलिये श्रीरामजी की प्रभुता को असीम समझकर कथा रचने में मेरा मन बहुत हिचकता है ।

विशेष :—द्वितीय चरण में मुहावरे का सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

**दो०—सारद सेस महेस विधि, आगम निगम पुरान ।**
**नेति नेति कहि जासु गुन, करहिं निरंतर गान ।।१२।।**

शब्दार्थ :—बिधि=ब्रह्माजी । आगम=शास्त्र । निगम=वेद । नेति-नेति=(न + इति) अन्त नहीं है ।

व्याख्या :—जिस प्रभु के गुणों का सरस्वतीजी, शेषजी, शिवजी, ब्रह्माजी, शास्त्र, वेद और पुराण नेति-नेति अर्थात् अन्त नहीं कहकर निरन्तर गान करते हैं ।

विशेष :—'नेति-नेति' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है ।

**चौ०—सब जानत प्रभु प्रभुता सोई । तदपि कहें बिनु रहा न कोई ।।**
**तहाँ बेद अस कारन राखा । भजन प्रभाउ भाँति बहु भाखा ।।**

शब्दार्थ :—प्रभाउ=प्रभाव । भाखा=कहा है ।

व्याख्या :—सब प्रभु रामचन्द्रजी की उस (अकथनीय) प्रभुता को जानते हैं तथापि कहे बिना कोई नहीं रहा । इसका कारण यह है कि वेदों में भजन के प्रभाव का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है ।

**एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानंद परधामा ।।**
**ब्यापक बिस्वरूप भगवाना । तेहिं धरि देह चरित कृत नाना ।।**

शब्दार्थ :—अनीह=निस्पृह, इच्छा-रहित । अरूप=रूप-रहित । अज=अजन्मा । परधामा=वैकुंठ ।

व्याख्या :—जो इच्छा-रहित, रूप-रहित, नाम-रहित, अजन्मा तथा सच्चिदानंद हैं, जो बैकुंठ में निवास करते हैं, ऐसे परमात्मा एक हैं । उन्हीं

व्यापक और विश्वरूप भगवान् ने देह धरकर भाँति-भाँति के चरित्र किये हैं।

सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी ॥
जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू ॥

शब्दार्थ :—भगतन=भक्तों के। प्रनत=प्रणत, झुका हुआ, शरणागत। छोह=कृपा। कोह=क्रोध।

व्याख्या :—(भगवान् ने देह धारण करके जो अनेक प्रकार की लीलायें की हैं) वे भी केवल भक्तों के हित के लिए हो, क्योंकि वे परम कृपालु हैं और शरणागत से प्रेम करने वाले हैं। जिनकी भक्तों पर बड़ी ममता और स्नेह है, जिन्होंने एक बार जिस पर कृपा करदी, उस पर फिर कभी क्रोध नहीं किया।

गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू ॥
बुध बरनहिं हरि जस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी ॥

शब्दार्थ :—बहोर=वापसी। गरीबनिवाज=दीनबन्धु। सबल=शक्तिमान्। साहिब=स्वामी। पुनीत=पवित्र।

व्याख्या :—वे प्रभु श्री रघुनाथजी गयी हुई वस्तु को फिर प्राप्त कराने वाले, दीनबन्धु, सरल स्वभाव, सर्वशक्तिमान् और सबके स्वामी हैं। यही समझकर बुद्धिमान् लोग भगवान् के यश का बखान करते हैं और अपनी वाणी को पवित्र तथा सफल करते हैं।

विशेष :—(१) द्वितीय एवं तृतीय चरण में अनुप्रास अलंकार है।
(२) भाषा में तत्सम शब्दों के साथ-साथ गरीबनिवाज और साहिब जैसे फारसी एवम् अरबी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है।

तेहिं बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहिहउँ नाइ राम पद माथा ॥
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई ॥

शब्दार्थ :—नाइ=नवाकर। सुगम=सरल, सहज।

व्याख्या :—उसी बल के भरोसे मैं रघुनाथजी के चरणों में मस्तक नवाकर श्री रामचन्द्रजी के गुणों की कथा कहूँगा। और हे भाई! वाल्मीकि

आदि मुनियों ने पहले जिस प्रकार श्रीरामजी का यश गाया है, उसी मार्ग पर चलना मेरे लिए सुगम होगा।

दो०—अति अपार जे सरित वर, जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु श्रम पारहिं जाहिं ॥१३॥

शब्दार्थ :—वर=वर, श्रेष्ठ। नृप=राजा। सेतु=पुल। पिपीलिका=चींटी।

व्याख्या :—जो अत्यन्त बड़ी श्रेष्ठ नदियाँ हैं, यदि राजा उन पर पुल बँधा देता है तो उन पर होकर छोटी से छोटी चींटी भी बिना श्रम के पार चली जाती है (इसी प्रकार मुनियों के वर्णन के सहारे मैं भी श्रीरामचन्द्रजी का वर्णन सहज ही कर सकूँगा)।

विशेष :—अनुप्रास अलंकार है।

## कवि-वन्दना

चौ०—एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहउँ रघुपति कथा सुहाई॥
ब्यास आदि कबि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना॥

शब्दार्थ :—सुहाइ=सुहावनी, सुन्दर। पुंगव=श्रेष्ठ।

व्याख्या :—इस प्रकार मन को बल दिखलाकर (अर्थात् मन को दृढ़ बनाकर) मैं श्रीरघुनाथजी की सुन्दर कथा की रचना करता हूँ। व्यास आदि जो अनेक श्रेष्ठ कवि हो गये हैं, जिन्होंने बड़े आदर से भगवान् के सुन्दर यश का वर्णन किया है।

चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे। पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे॥
कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। जिन बरने रघुपति गुन ग्रामा॥

शब्दार्थ :—तिन्ह केरे=उनके। पुरवहुँ=पूरा करे। कबिन्ह=कवियों को।

व्याख्या :—मैं उन सब (श्रेष्ठ कवियों) के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ। वे मेरे सब मनोरथों को पूरा करें। मैं कलियुग के उन कवियों को भी प्रणाम करता हूँ जिन्होंने श्रीरघुनाथजी के गुण-समूहों का वर्णन किया है।

विशेष :—'चरण कमल' में रूपक तथा तृतीय चरण में अनुप्रास अलंकार है।

जे प्राकृत कवि परम सयाने । भाषां जिन्ह हरि चरित बखाने ॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगें । प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागें ॥

शब्दार्थ :—सयाने=चतुर, बुद्धिमान् । भए जे=जो हो चुके हैं । अहहिं जे=जो इस समय वर्तमान हैं । होइहहिं=जो आगे होंगे ।

व्याख्या :—जो अत्यन्त चतुर प्राकृत कवि हैं, जिन्होंने भाषा में भगवान् का चरित्र वर्णन किया है, जो ऐसे कवि पहले हो चुके हैं, जो इस समय वर्तमान हैं और जो आगे होंगे, उन सबको मैं सारा कपट त्याग कर प्रणाम करता हूँ ।

होहु प्रसन्न देहु बरदानू । साधु समाज भनिति सनमानू ॥
जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं । सो श्रम बादि बालि कवि करहीं ॥

शब्दार्थ :—भनिति=कविता । बुध=बुद्धिमान् । बादि=वृथा, व्यर्थ ।

व्याख्या :—आप सब प्रसन्न होकर यह वरदान दें कि संत-समाज में मेरी कविता का आदर हो, क्योंकि बुद्धिमान् लोग जिस कविता का आदर नहीं करते, उनमें कवि बालक के समान वृथाश्रम करते हैं (अर्थात् पंडित जिसकी सराहना करें वही कविता है, नहीं तो बालकों का सा खेल है) ।

कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कहँ हित होई ॥
राम सुकीरति भनिति भदेसा । असमंजस अस मोहि अँदेसा ॥
तुम्हरी कृपां सुलभ सोउ मोरे । सिअनि सुहावनि टाट पटोरे ॥

शब्दार्थ :—कीरति=कीर्ति । भनिति=कविता । भूति=वैभव, सम्पत्ति । असमंजस=असामञ्जस्य । सिअनि=सिलाई । पटोरे=रेशम ।

व्याख्या :—कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गंगाजी के समान सबके लिए हितकर हो । श्रीरामचन्द्रजी की कीर्ति तो बड़ी सुन्दर (सबका अनन्त कल्याण करने वाली ही) है, परन्तु मेरी कविता भद्दी है । यह असामञ्जस्य है अर्थात् इन दोनों का मेल नहीं मिलता, इसीकी मुझे चिन्ता है । परन्तु हे कवियो ! आपकी कृपा से यह भी मुझे सुलभ हो जायेगी (अर्थात् मेरी कविता सबको हितकर लगेगी) । जैसे रेशम की सिलाई टाट पर भी सुहावनी लगती है ।

विशेष :—'सुरसरि सम' में उपमा तथा सम्पूर्ण चौपाई में अनुप्रास अलंकार है।

दो०—सरल कवित कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान ॥१४॥ (क)

शब्दार्थ :—बयर=वैर। रिपु=शत्रु।

व्याख्या :—चतुर पुरुष उसी कविता का आदर करते हैं, जो सरल हो और जिसमें भगवान् के निर्मल चरित्र का वर्णन हो तथा जिसे सुनकर शत्रु भी स्वाभाविक वैर को भूलकर सराहना करने लगें।

विशेष :—जो वैर विना कारण हो उसे सहज वैर कहते हैं, जैसे धनी-दरिद्री का, पंडित मूर्ख का, पतिव्रता-कुलटा का।

सो न होइ बिनु बिमल मति, मोहि मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरि जस कहउँ, पुनि-पुनि करउँ निहोर ॥१४॥ (ख)

शब्दार्थ :—विमल=निर्मल। मति=बुद्धि। थोर=थोड़ा, कम।

व्याख्या :—ऐसी कविता विना निर्मल बुद्धि के हो नहीं सकती और मुझे बुद्धि का बल (अपने पर विश्वास) बहुत ही कम है। इसलिये बार-बार आपका निहोरा करता हूँ कि हे कवियो! आप कृपा करें, जिससे मैं भगवान् के यश का वर्णन कर सकूँ।

विशेष :—'पुनि-पुनि' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार द्रष्टव्य है।

कवि कोबिद रघुबर चरित, मानस मंजु मराल।
बाल बिनय सुनि सुरुचि लखि, मो पर होहु कृपाल ॥१४॥ (ग)

शब्दार्थ :—कोविद=पंडित। मानस=मानसरोवर। मंजु=सुन्दर। मराल=हंस।

व्याख्या :—श्रीरामचन्द्रजी का चरित्र तो मानसरोवर है और कवि तथा पण्डितगण सुन्दर हंस हैं। मुझ बालक की विनती सुनकर और (राम कथा बनाने में) मेरी रुचि देखकर मेरे ऊपर कृपा करें (भाव यह है कि जैसे कि हंस मानसरोवर की महिमा जानते हैं उसी तरह कवि-पण्डित रामचरित की महिमा जानते हैं। मैं तो केवल बालक की तरह कथा बनाता हूँ। इसमें जो दोष रह जायें उन्हें वे क्षमा करें)।

विशेष :—प्रथम व द्वितीय चरण में रूपक तथा सम्पूर्ण दोहे में अनुप्रास अलंकार है।

## वाल्मीकि, वेद, शिव-पार्वती आदि की वन्दना

सोरठा—बंदउँ मुनि पद कंजु, रामायन जेहिं निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु, दोष रहित दूषन सहित ॥१४॥ (घ)

शब्दार्थ :—स + खर=राक्षस सहित। मंजु=सुन्दर। दूषण=राक्षस।

व्याख्या :—मैं उन वाल्मीकि मुनि के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने रामायण की रचना की है, जो खर (राक्षस) सहित होने पर भी बड़ी कोमल और सुन्दर है तथा जो दूषण (राक्षस) सहित होने पर भी दोष से रहित है।

विशेष :—'मुनि-पद-कंजु' में रूपक अलंकार है।

बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद, बरनत रघुवर बिसद जसु ॥१४॥ (ङ)

शब्दार्थ :—भव-वारिधि=संसार-समुद्र। बोहित=जहाज। खेद=दुःख (यहाँ थकावट)।

व्याख्या :—मैं चारों वेदों की वन्दना करता हूँ, जो संसार-सागर से पार होने के लिए जहाज के समान हैं तथा जिन्हें श्रीरघुनाथजी का निर्मल यश वर्णन करते समय स्वप्न में भी थकावट नहीं होती।

विशेष :—भव-वारिधि में रूपक तथा बोहित सरिस में उपमा अलंकार है।

बंदउँ बिधि पद रेनु, भव सागर जेहिं कीन्ह जहँ।
संत सुधा ससि धेनु, प्रगटे खल बिष बारुनी ॥१४॥ (च)

शब्दार्थ :—रेनु=रज। सुधा=अमृत। खल=दुष्ट। वारुनी=मदिरा।

व्याख्या :—मैं ब्रह्माजी के चरण-रज की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने संसार रूपी समुद्र से बनाया है, जिसमें से सन्त तो अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु (के समान कल्याणकारी) तथा दुष्ट विष और मदिरा (के समान अहितकारी) होकर प्रकट हुए हैं।

विशेष :—रूपक एवम् उपमा अलंकार ।

दो०—विबुध विप्र बुध ग्रह चरन, बंदि कहउँ कर जोरि ।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि ॥१४॥ (छ)

शब्दार्थ :—विबुध=देवता । विप्र=पण्डित । सकल=सब, सम्पूर्ण ।

व्याख्या :—देवता, ब्राह्मण, पण्डित और ग्रह इन सबके चरणों की वन्दना करके और हाथ जोड़कर कहता हूँ कि आप सब प्रसन्न होकर मेरे सम्पूर्ण सुन्दर मनोरथों को पूरा करें ।

चौ०—पुनि बंदउँ सारद सुरसरिता । जुगल पुनीत मनोहर चरिता ॥
मज्जन पान पाप हर एका । कहत सुनत एक हर अविवेका ॥

शब्दार्थ :—पुनि=फिर । सारद=सरस्वती । जुगल=युगल, दोनों । मज्जन=स्नान । अविवेक=अज्ञान ।

व्याख्या :—फिर मैं सरस्वतीजी और देवनदी गङ्गाजी की वन्दना करता हूँ । उन दोनों के चरित्र पवित्र और मनोहर है । एक गङ्गाजी तो स्नान करने और जल पीने से पापों को हरती हैं और दूसरी सरस्वतीजी (कविता) गुण तथा यश कहने और सुनने से अज्ञान का नाश कर देती है ।

विशेष :—(१) क्रम एवम् अनुप्रास अलंकार।

(२) सारद सुरसरिता का क्रम तीसरे और चौथे चरण से न मिलने के कारण प्रस्तुत चौपाई में अक्रमत्व-दोष है ।

गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबन्धु दिन दानी ॥
सेवक स्वामि सखा सिय पी के । हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के ॥

शब्दार्थ :—दिनदानी=प्रतिदिन दान करने वाला । निरुपधि=बाधा रहित । सब विधि= सब प्रकार से ।

व्याख्या :—मैं शिवजी और पार्वतीजी को प्रणाम करता हूँ, जो मेरे गुरु और माता-पिता हैं, जो दीनबन्धु और नित्य दान करने वाले हैं । वे सीतापति श्रीरामचन्द्रजी के सेवक ('सो प्रभु मोर चराचर स्वामी । रघुवर सब उर अन्तरजामी'), स्वामी और सखा हैं तथा मुझ तुलसीदास का सब प्रकार से बाधा-रहित हित करने वाले हैं ।

विशेष :— तृतीय चरण में वृत्यानुप्रस है ।

कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा । सावर मंत्र जाल जिन्ह सिरिजा ।।
अनमिल आखर अरथ न जापू । प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू ।।

शब्दार्थ :—बिलोकि=देखकर । हर=शिवजी । सावरमंत्र-जाल=शाबर, शिवकृत तन्त्र विशेष । सिरिजा=रचना । अनमिल=बेमेल ।

व्याख्या :—कलियुग को आता देखकर जिन शिव-पार्वतीजी ने जगत् के हित के लिए शावर मन्त्रसमूह की रचना की है । उन मन्त्रों में न तो अक्षरों का मेल है, न कुछ अर्थ है और न ही जिसका जप होता है, तो भी शिवजी के प्रताप से उनका प्रभाव प्रत्यक्ष है ।

सो उमेस मोहि पर अनुकूला । करिहिं कथा मुद मंगल मूला ।।
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ । बरनउँ रामचरित चित चाऊ ।।

शब्दार्थ :— मुद=मोद, आनन्द । पसाऊ=अनुकम्पा, कृपा । चाऊ= उमंग ।

व्याख्या :—ऐसे शिवजी मुझ पर प्रसन्न होकर (श्रीरामजी की) इस कथा को आनन्द-मंगल देने वाली कर दें (जब उनकी कृपा से शाबरमंत्र सिद्ध हो गये हैं फिर मेरी कथा के लिए मंगलजनक होना क्या बड़ी बात है ) । इस प्रकार पार्वतीजी और शिवजी दोनों का स्मरण करके और उनका आशीर्वाद पाकर मन की उमंग से मैं श्री श्रीरामचरित का वर्णन करता हूँ ।

भनिति मोरि सिव कृपाँ बिभाती । ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती ।।
जे एहि कथहि सनेह समेता । कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ।।
होइहहिं राम चरन अनुरागी । कलि मल रहित सुमंगल भागी ।।

शब्दार्थ :—भनिति=कविता । बिभाती=सुशोभित । सचेता=सावधान ।

व्याख्या :—शिवजी की कृपा से मेरी कविता ऐसी सुशोभित होगी जैसे तारागण सहित चन्द्रमा के मिलने से रात्रि शोभित होती है । जो मनुष्य इस कथा को प्रेमसहित एवं सावधानी के साथ समझ-बूझकर कहेंगे-सुनेंगे, वे श्रीरामजी के चरणों के प्रेमी, कलि के पापों से रहित और सुन्दर मंगलों के भागी होंगे ।

**दो०—सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर, जौं हर गौरि पसाउ।**
**तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ ॥१५॥**

**शब्दार्थ :**—पसाउ=कृपा, अनुकम्पा। फुर=सत्य। भनिति=कविता।

**व्याख्या :**—जो सचमुच शिव-पार्वतीजी मुझ पर सपने में भी (अर्थात् जरा भी) प्रसन्न हैं तो जो भाषा कविता का प्रभाव मैंने कहा है, वह सब सत्य हो।

**चौ०—बंदउँ अवधपुरी अति पावनि। सरजू सरि कलि कलुष नसावनि ॥**
**प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी। ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी ॥**

**शब्दार्थ :**—अवधपुरी=अयोध्यापुरी। सरि=सरिता, नदी। पुर=नगर। बहोरि=फिर।

**व्याख्या :**—मैं अत्यन्त पवित्र अयोध्यापुरी और कलि के पापों का नाश करने वाली सरयू नदी की वन्दना करता हूँ। फिर अवधपुरी के उन नर-नारियों को मैं प्रणाम करता हूँ जिन पर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की ममता थोड़ी नहीं है (अर्थात् बहुत है)।

**सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए ॥**
**बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची ॥**

**शब्दार्थ :**—सिय=सीताजी। अघ ओघ=पाप समूह। दिसि प्राची=पूर्व दिशा।

**व्याख्या :**—उन्होंने सीताजी की निन्दा करने वाले (धोबी और उसके समर्थक पुर-नर-नारियों) के पाप-समूह को नाश कर उनको शोक रहित बना कर अपने लोक में बसा दिया। मैं कौसल्या रूपी पूर्व दिशा को प्रणाम करता हूँ जिसका यश समस्त संसार में फैल रहा है।

**विशेष :**—(१) 'कौशल्या दिसि प्राची' में रूपक अलंकार है।

(२) अनुप्रास है।

(३) **अन्तर्कथा (सिय निन्दक) :**—अयोध्या में एक दिन एक धोबिन पति की आज्ञा के बिना अपने पिता के यहाँ चली गयी और तीन दिन बाद आई। इससे धोबी बड़ा नाराज हुआ और उसने धोबिन से कहा कि मैं राम

नही हूँ जिन्होंने ग्यारह महीने रावण के घर रहने पर भी सीता को रख लिया। दूत के द्वारा यह समाचार सुन राम ने सीताजी को वनवास दे दिया।

प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारू॥
दसरथ राउ सहित सब रानी। सुकृत सुमंगल मूरति मानी॥
करउँ प्रनाम करम मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी॥
जिन्हहि बिरचि बड़ भयउ बिधाता। महिमा अवधि राम पितु माता॥

शब्दार्थ :—ससि=चन्द्रमा। चारु=सुन्दर। राऊ=राजा। बिरचि=रचकर।

व्याख्या :—जहाँ (कौशल्या रूपी पूर्व दिशा में) संसार को सुख देने वाले और दुष्ट रूपी कमलों के तुषार-रूप (अर्थात् जैसे पाले से कमल नष्ट हो जाते हैं, उसी तरह दुष्टों के नाशक) श्रीरामचन्द्रजी रूपी सुन्दर चन्द्रमा प्रकट हुए हैं। सब रानियों-सहित राजा दशरथ को पुण्य और सुन्दर कल्याण की मूर्ति मानकर मैं कर्म, मन और वाणी से प्रणाम करता हूँ। अपने पुत्र का सेवक जानकर वे मुझ पर कृपा करें जिनको रचकर विधाता भी बड़ा हो गया अर्थात् उनकी बड़ाई हुई क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी के माता-पिता होने के कारण वे महिमा की सीमा हैं (अर्थात् श्रीरामजी के माता-पिता होने से बढ़कर और क्या बड़ाई हो सकती है)।

विशेष :—'रघुपति ससि चारू' और 'खल कमल तुसारु' में रूपक अलंकार है।

सोरठा—बंदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रियतनु तृन इव परिहरेउ॥१६॥

शब्दार्थ :—भुआल=राजा। तृन=तिनका। परिहरेउ=त्याग दिया।

व्याख्या :—मैं अवध के राजा दशरथ की वन्दना करता हूँ, जिनका श्रीरामजी के चरणों में सच्चा प्रेम था और जिन्होंने दीनदयालु प्रभु के बिछुड़ते ही अपने प्यारे शरीर को मामूली तिनके के समान त्याग दिया।

विशेष :—उपमा अलंकार है।

चौ०—प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जानि राम पद गूढ़ सनेहू॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥

शब्दार्थ :—विदेहू=राजा जनक को। गूढ़=गुप्त। गोई=गुप्त।

व्याख्या :—मैं परिवार-सहित राजा जनक को प्रणाम करता हूँ जिनका श्रीरामजी के चरणों में गुप्त प्रेम था, जो उनके योग और भोग में (अर्थात् प्रत्येक कर्म में) गुप्त था, परन्तु श्रीराम को देखते ही वह प्रगट हो गया।

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम व्रत जाइ न बरना॥
राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥

शब्दार्थ :—नेम=नियम। पंकज=कमल।

व्याख्या :—अब मैं पहले भरतजी के चरणों को प्रणाम करता हूँ, जिनके नियम और व्रत का बखान नहीं किया जा सकता। जिनका मन श्रीरामचन्द्रजी के चरण-कमलों में भौंरे की तरह लुभाया हुआ है और उनका पास कभी नहीं छोड़ता।

विशेष :—उपमा एवं रूपक अलंकार।

बंदउँ लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति विमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका॥

शब्दार्थ :—जलजाता=कमल। विमल=निर्मल।

व्याख्या :—मैं श्री लक्ष्मणजी के चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ, जो शीतल, सुन्दर और भक्तों को सुख देने वाले हैं। श्रीरघुनाथजी की कीर्ति रूपी निर्मल पताका में जिनका यश (पताका को ऊँचा फहराने वाले) दंड के समान हुआ है।

विशेष :—रूपक, उपमा एवं अनुप्रास अलंकार द्रष्टव्य हैं।

सेष सहस्रसीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन।
सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर॥

शब्दार्थ :—सहस्रसीस=हजार सिर वाले। टारन=टालने के लिए, दूर करने के लिए।

व्याख्या :—जो हजार सिर वाले और जगत् के कारण (हजार सिरों पर जगत् को धारणकर रखने वाले) शेषजी हैं, जिन्होंने पृथ्वी का भय दूर

करने के लिए अवतार लिया, वे गुणों की खान, कृपासिन्धु, सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजी मुझ पर सदा प्रसन्न रहें।

विशेष :—अनुप्रास अलंकार।

रिपुसूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी।
महावीर विनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥

शब्दार्थ :—रिपुसूदन=शत्रुघ्न। जस=यश।

व्याख्या :—मैं श्री शत्रुघ्नजी के चरण-कमलों में नमस्कार करता हूँ, जो बड़े वीर, सुशील और भरतजी का अनुगमन करने वाले हैं। मैं बड़े पराक्रमी हनुमानजी की विनती करता हूँ, जिनके यश का श्रीरामचन्द्रजी ने स्वयम् वर्णन किया है।

विशेष :—रूपक एवं अनुप्रास अलंकार।

सो०—प्रनवउँ पवनकुमार खल वन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

शब्दार्थ :—पावक=अग्नि। ग्यानघन=ज्ञान घनमूर्ति।

व्याख्या :—मैं पवनकुमार श्री हनुमानजी को प्रणाम करता हूँ, जो दुष्टरूपी वन को भस्म करने के लिए अग्निरूप और ज्ञान की घनमूर्ति हैं और जिनके हृदयरूपी भवन में धनुष-बाण धारण किये श्रीरामजी निवास करते हैं।

विशेष :—रूपक अलंकार।

चौ०—कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा॥
बंदउँ सबके चरन सुहाए। अधम सरीर राम जिन्ह पाए॥

शब्दार्थ :—कपिपति=वानरों के राजा सुग्रीवजी। अधम=नीच।

व्याख्या :—वानरों के राजा सुग्रीवजी, रीछों के राजा जाम्बवान्‌जी, राक्षसों के राजा विभीषणजी और अंगदजी आदि जितना वानरों का समाज है, इन सब के सुन्दर चरणों की मैं वन्दना करता हूँ जिन्होंने नीच (पशु और राक्षस आदि) शरीर में भी श्रीरामचन्द्रजी को प्राप्त कर लिया।

रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते॥
बंदउँ पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे॥

शब्दार्थ :—खग=पक्षी । मृग=पशु । बिनुकाम=बिनाकाम । चेरे सेवक ।

व्याख्या :—पक्षी, पशु, देवता, मनुष्य और राक्षसों सहित जिस श्रीरामजी के चरणों के उपासक हैं, मैं उन सबके चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जो श्रीरामजी के निष्काम सेवक हैं ।

विशेष :—'पद सरोज' में रूपक अलंकार है ।

सुक सनकादि भगत मुनि नारद । जे मुनिवर बिग्यान बिसारद ॥
प्रनवउँ सबहि धरनि धरि सीसा । करहु कृपा जन जानि मुनीसा ॥

शब्दार्थ :—सुक=शुकदेवजी । धरनि=धरती ।

व्याख्या :—शुकदेवजी, सनकादि, नारदमुनि आदि जितने भक्त और परम ज्ञानी श्रेष्ठ मुनि हैं, मैं धरती पर सिर टेककर उन सबको प्रणाम करता हूँ । हे मुनीश्वरों ! आप सब मुझको अपना दास जानकर कृपा कीजिये ।

जनक सुता जग जननि जानकी । अतिसय प्रिय करुनानिधान की ॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ । जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ ॥

शब्दार्थ :—अतिसय=अत्यन्त । निरमल=पवित्र । मति=बुद्धि ।

व्याख्या :—राजा जनक की पुत्री, जगत् की माता और करुणानिधान श्रीराम की प्रियतमा श्री जानकीजी के दोनों चरणकमलों को मैं मनाता हूँ (वन्दना करता हूँ), जिनकी कृपा से निर्मल बुद्धि पाऊँ ।

विशेष: —अनुप्रास एवं रूपक अलकार ।

पुनि मन बचन कर्म रघुनायक । चरन कमल बंदउँ सब लायक ॥
राजिवनयन धरें धनुसायक । भगत बिपति भंजन सुखदायक ॥

शब्दार्थ :—सब लायक=सर्व-समर्थ । राजिवनयन=कमलनयन ।

व्याख्या :—फिर मैं मन, वचन और कर्म से सर्व-समर्थ श्रीरामचन्द्रजी के चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ । उनके नेत्र कमल के समान हैं, हाथों में धनुषबाण है तथा वे भक्तों की विपत्ति के नाशक और सुख को देने वाले हैं ।

विशेष :—चरणकमल और राजिवनयन में रूपक अलकार है ।

दो०—गिरा अरथ जल बीचिसम, कहिअत भिन्न न भिन्न ।
वंदउँ सीताराम पद, जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥१८॥

शब्दार्थ :—गिरा=वाणी । अरथ=अर्थ । बीचि=लहर । खिन्न=दीन-हीन ।

व्याख्या :—मैं श्रीसीतारामजी के चरणों की वन्दना करता हूँ जिनको दीन-दुखी बहुत ही प्रिय है और जो वाणी और अर्थ के तथा जल और उसकी तरंगों के समान कहने में अलग-अलग हैं, परन्तु वास्तव में अभिन्न (एक) हैं ।

विशेष :—उपमा अलंकार है ।

## नाम-वन्दना और राम-नाम की महिमा

चौ०—बंदउँ नाम राम रघुवर को । हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो । अगुन अनूपम गुन निधान सो ॥

शब्दार्थ :—हेतु=कारण । कृसानु=अग्नि । भानु=सूर्य । हिमकर=चन्द्रमा । बिधि=ब्रह्मा । हरि=विष्णु । हर=शंकर । अगुन=गुण (सत-रज-तम) रहित ।

व्याख्या :—मैं श्रीरघुनाथजी के नाम 'राम' की वन्दना करता हूँ, जो अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा का कारण है । आशय यह है कि सूर्य, चन्द्र और अग्नि में जो तेज है वह उन्हीं से आता है । जैसा कि गीता में कहा गया है—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥

वह 'राम' नाम ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप है, अर्थात् ब्रह्मा में जगत पैदा करने की शक्ति, विष्णु में पालन करने की शक्ति और शिव में संहार करने की शक्ति राम नाम से ही आती है यथा—

रामनामप्रभावेण स्वयंभूः सृजते जगत् ।
विभर्ति सकलं विष्णुः शिवः संहरते पुनः ॥ (महाशंभुसंहिता)

वह वेदों का प्राण है, सत-रज-तम तीनों गुणों से परे, उपमा-रहित और गुणों का भण्डार है ।

विशेष :—सतोगुण में विष्णु, रजोगुण में ब्रह्मा और तमोगुण में शिव बताये गये हैं। इसलिये राम के नाम को इन तीनों गुणों से परे कहा गया है।

महामन्त्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥

शब्दार्थ :—मुकुति=मुक्ति। जासु=जिसको। गनराऊ=गणेशजी।

व्याख्या :—वह (राम) नाम महामन्त्र है जिसे महादेवजी जपते हैं और काशी में मुक्ति के लिये जिसका उपदेश करते हैं। जिसकी महिमा जानकर गणेशजी प्रथम पूजनीय हुए, यह नाम का ही प्रभाव है।

विशेष :—वस्तुतः राम से भी अधिक राम के नाम की महिमा है। सभी भक्त कवियों ने नाम की महिमा का खूब बखान किया है। महात्मा कबीर ने इसे अनुपमीय बतलाते हुए कहा है—

"सभी रसायन हम करी, नाहिं नाम सम कोय।
रंचक घट में सचरे, सब तन कंचन होय॥"

× × × ×

जान आदिकवि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥

शब्दार्थ :—सुद्ध=शुद्ध, पवित्र। सहस=सहस्र, एक हजार।

व्याख्या :—आदि कवि श्री वाल्मीकिजी रामनाम के प्रताप को जानते है, क्योंकि वे उलटा जप ('मरा'-'मरा') करते-करते पवित्र हो गये। श्रीशिवजी से इस वचन को सुनकर कि राम-नाम भगवान् के एक सहस्र नाम के समान है, पार्वतीजी सदा अपने पति शिवजी के साथ उसका जाप करती रहती हैं।

विशेष :—(१) एक दिन भोजन के समय शिवजी ने पार्वतीजी से भी भोजन कर लेने को कहा। पार्वतीजी ने कहा कि मैंने अभी तक विष्णुसहस्रनाम का पाठ नहीं किया है। तब शिवजी ने कहा कि "रामरामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने" अर्थात् हे सुन्दरमुखी! राम का नाम एक बार लेना विष्णु के सहस्र नाम के समान है।

(२) अनुप्रास अलंकार।

हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषण तिय भूषण ती को॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥

शब्दार्थ :—हेरि=देखकर। हर=शिवजी। भूषण=आभूषण। तिय-भूषण=स्त्रियों में भूषणरूप अर्थात् पतिव्रताओं में शिरोमणि। अमी=अमृत।

व्याख्या :—शिवजी (पार्वतीजी के) हृदय की इस प्रीति को देखकर प्रसन्न हुए और उन्होंने स्त्रियों में शिरोमणि अपनी स्त्री पार्वती को अपना आभूषण बना लिया (अर्थात् उन्हें अपने अङ्ग में धारण करके अर्द्धाङ्गिनी बना लिया)। नाम के प्रभाव को श्रीशिवजी भली भाँति जानते है जिसके प्रभाव ने उन्हें विष ने भी अमृत का फल दिया।

विशेष :—(१) प्रथम एवम् द्वितीय चरण में अनुप्रास अलंकार है।

(२) 'किय भूषण तिय भूषण ती को' इस पंक्ति का यह भी अर्थ किया जा सकता है कि भगवान् शङ्कर ने पार्वतीजी को अपना भूषण बनाया, जिसके वे स्वयं आभूषण थे।

दो०—बरषा रितु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग, सावन भादव मास॥१९॥

शब्दार्थ :—सालि=शालि, धान। बर=श्रेष्ठ। बरन=वर्ण, अक्षर।

व्याख्या :—श्रीरघुनाथजी की भक्ति वर्षा ऋतु है और सुन्दर भक्तजन धान हैं।' तुलसीदासजी कहते हैं कि रामनाम के दो सुन्दर अक्षर सावन-भादों के महीने हैं।

विशेष :—१. रूपक एवं अनुप्रास अलंकार।

२. फसल के लिए सावन-भादों के दोनों महीने बहुत ही महत्त्वपूर्ण माने जाते है। यह वर्षा ऋतु का समय होता है जिससे धान बढ़ता है। कहा जाता है कि एक बार बादशाह अकबर ने बीरबल से पूछा कि बारह में से दो गये तो शेष क्या बचा? बीरबल ने उत्तर दिया धूल (अर्थात् कुछ नहीं)। अकबर ने पूछा कैसे? बीरबल ने कहा कि बारह महीने में से सावन-भादों के दोनों महीने निकाल दो शेष धूल ही बचेगी, कुछ भी अनाज उत्पन्न नहीं होगा। यहाँ भाव यह है कि जैसे फसल के लिए सावन-भादों के दोनों महीने

ही महत्वपूर्ण हैं, उसी प्रकार भक्तों के लिए रामनाम के ये दो वर्ण ही सब कुछ हैं।

चौ०—आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निवाहू॥

शब्दार्थ :—आखर=अक्षर। बिलोचन=नेत्र। जन=भक्तजन। जिय=हृदय।

व्याख्या :—(राम नाम के) दोनों अक्षर मधुर और मनोहर हैं तथा वे ही अक्षर भक्तजनों के हृदय के नेत्र हैं (जिनके द्वारा उन्हें परमेश्वर के दर्शन होते हैं)। (ये दोनों वर्ण) स्मरण करने में सबके लिए सुलभ और सुख देने वाले हैं। उनसे इस लोक में लाभ और परलोक में निर्वाह होता है अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है।

विशेष :—अनुप्रास अलकार।

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती॥

शब्दार्थ :—सुठि=सुन्दर। प्रीति=प्रेम। बिलग=पृथक् (यहाँ प्रकट)। सँघाती=सहचर, मित्र।

व्याख्या :—ये कहने, सुनने और स्मरण करने में बहुत ही सुन्दर और अच्छे हैं और तुलसीदास को राम-लक्ष्मण के समान प्यारे हैं। वर्णन करने से इन अक्षरों की प्रीति प्रकट होती है कि ये ब्रह्म और जीव की तरह स्वभाव से ही साथ रहने वाले हैं (सदा एकरूप और एकरस हैं।)

विशेष :—(१) 'राम लखन सम' में उपमा अलंकार तथा सम्पूर्ण चौपाई में अनुप्रास की सुन्दरता द्रष्टव्य है।

(२) जीव ब्रह्म का ही प्रतिबिंब है। जैसे शीशे में मुख का प्रतिबिम्ब पड़ता है उसी तरह माया में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है जो जीव कहाता है। जैसे मुख के बिना उसका प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता उसी तरह ब्रह्म-बिना जीव नहीं होता। ब्रह्म और जीव दोनों मित्रों के समान साथ रहने वाले हैं। (देखिये भागवत् का ११वाँ अध्याय।

नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता ॥
भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जगहित हेतु बिमल बिधु पूषन ॥

शब्दार्थ :—सरिस=समान। बिसेषि=विशेष रूप से। त्राता=रक्षक। करन बिभूषन=कानों के आभूषण, कर्णफूल। पूषन=सूर्य।

व्याख्या :—ये दोनों अक्षर नर-नारायण के समान सुन्दर भाई, जगत् के पालक और विशेष रूप से भक्तों की रक्षा करने वाले हैं। ये भक्ति-रूप सुन्दर नारी के मनोहर कर्णफूल हैं और जगत् के हित के लिए निर्मल सूर्य-चन्द्रमा हैं (अर्थात् जैसे सूर्य-चन्द्रमा से अन्धकार का नाश होता है उसी तरह राम नाम का जप करने से अज्ञान का नाश हो ज्ञान का प्रकाश होता है)।

विशेष :—उपमा एवम् रूपक अलंकार।

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के ॥
जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से ॥

शब्दार्थ :—तोष=तृप्ति। कमठ=कच्छप। कंज=कमल। हरि=कृष्ण।

व्याख्या :—ये सुन्दरगति (मोक्ष) रूपी अमृत के स्वाद और तृप्ति के समान हैं (अर्थात् जैसे अमृत पीने में बड़ा स्वाद आता है और फिर अन्य किसी पदार्थ का स्वाद लेने की इच्छा नहीं रहती उसी तरह रामनाम मे ऐसी उत्तम गति प्राप्त हो जाती है कि जिससे मन को सुख होता है तथा अन्य किसी साधन की चाह नही रहती)। ये कच्छप और शेषजी के समान पृथ्वी के धारण करने वाले हैं, भक्तों के मनरूपी सुन्दर कमल में विहार करने वाले भौंरे के समान हैं। (अर्थात् जैसे भौंरे कमल पर से नहीं हटते उसी तरह से ये दोनों अक्षर सन्तों के हृदय से नहीं हटते) और जिह्वारूपी यशोदाजी के लिए श्रीकृष्ण और बलरामजी के समान आनन्दप्रद है।

विशेष :—उपमा, रूपक एवम् अनुप्रास अलंकार।

दो०—एकु छत्रु एक मुकुटमनि, सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ ॥२०॥

शब्दार्थ :—बरननि=वर्णों। बिराजत=सुशोभित। दोउ=दोनों।

व्याख्या :—तुलसीदासजी कहते है कि श्रीरघुनाथजी के नाम के दोनों अक्षर बड़ी शोभा देते हैं, जिनमें से एक (रकार) छत्ररूप (रेफ ँ) से

और दूसरा ( मकार ) मुकुटमणि ( अनुस्वार ँ ) रूप से सब अक्षरों के ऊपर हैं।

चौ०—समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥

शब्दार्थ :—सरिस=समान। अनुगामी=अनुसरण करने वाला। ईस=ईश्वर।

व्याख्या :—समझने में नाम और नामी दोनों बराबर हैं, परन्तु दोनों में परस्पर स्वामी और सेवक के समान प्रीति है (अर्थात् नाम और नामी में पूर्ण एकता होने पर भी जैसे स्वामी के पीछे सेवक चलता है, उसी प्रकार नाम के पीछे नामी चलते हैं। प्रभु श्रीरामजी अपने 'राम' नाम का ही अनुगमन करते है, नाम लेते ही वहां आ जाते हैं)। नाम और रूप दोनों ईश्वर की उपाधि हैं (अर्थात् जैसे उपाधि से मनुष्य प्रख्यात होता है उसी तरह नाम और रूप से ईश्वर का सच्चा ज्ञान होता है)। ये नाम और रूप दोनों ही अकथनीय और अनादि हैं और सुन्दर बुद्धि से ही इनका (दिव्य अविनाशी) स्वरूप जानने में आता है।

विशेष :—अनुप्रास अलंकार है।

को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू॥
देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥

शब्दार्थ :—बड़=बड़ा। छोट=छोटा। गुन=गुण।

व्याख्या :—इन (नाम और रूप) में कौन बड़ा है और कौन छोटा, यह कहना तो अपराध है। इनके गुणों का भेद सुनकर साधु स्वयं ही समझ लेंगे। रूप नाम के अधीन देखे जाते हैं, नाम के बिना रूप का ज्ञान नहीं हो सकता।

रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतलगत न परहिं पहिचानें॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

शब्दार्थ :—करतलगत=हथेली पर रखा हुआ। बिसेषें=विशेष।

व्याख्या :—नाम के बिना जाने केवल रूप से हथेली पर रखा हुआ पदार्थ भी नहीं पहिचाना जा सकता और रूप के बिना देखे भी यदि नाम

का स्मरण किया जाय तो विशेष प्रेम के साथ वह रूप हृदय में आ जाता है।

नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥

शब्दार्थ :—अगुन=निर्गुण। सगुन=सगुण। सुसाखी=सुन्दर साक्षी।

व्याख्या :—नाम और रूप की गति की कहानी अकथनीय है। वह समझने में सुखदायक है, परन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। निर्गुण और सगुण के बीच में नाम ही सुन्दर साक्षी है क्योंकि वह चतुर दुभाषिये के समान दोनों का विशेष ज्ञान कराने वाला है।

विशेष :—वस्तुतः नाम और रूप की महिमा की कहानी अकथनीय है। वह भक्तों के जीवन का आधार और सर्वस्व है। इसीलिए सुन्दरदासजी ने उसे 'सकल सिरोमणि' कहा है—

"सुन्दर" सत्गुरु यों कह्या, सकल सिरोमणि नाम।
ताको निशि दिन सुमरिये, सुख सागर सुख धाम॥

× × ×

दो०—राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरेउँ, जौं चाहसि उजियार॥२१॥

शब्दार्थ :—जीह=जीभ। उजियार=उजाला, प्रकाश।

व्याख्या :—तुलसीदासजी कहते हैं, यदि तू भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला चाहता है तो रामनामरूपी मणि-दीपक को (शरीर रूपी घर के मुख-रूपी) द्वार की जीभ रूपी देहली पर धर (भाव यह है कि जैसे मणि का दीपक सदा प्रकाश करता है उसी तरह जिह्वा से सदा राम नाम जपने से भीतर निर्गुण ब्रह्म के दर्शन होंगे और बाहर सगुण रूप के चरित्र दीखेंगे)।

विशेष :—रूपक अलंकार।

चौ०—नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥

शब्दार्थ :—बिरति=वैराग्य। बिरंची प्रपंच=ब्रह्मा द्वारा निर्मित संसारी जंजाल। अनूपा=अनुपम। अनामय=स्वस्थ।

व्याख्या :—इस नाम को जीभ से जपते हुए योगी (तत्त्वज्ञान रूपी दिन में) जागते हैं और वैराग्य के द्वारा ब्रह्मा के बनाये हुए इस संसारी-जंजाल से अपने को पृथक् रखते हैं और अनुपम ब्रह्म सुख का अनुभव करते हैं, जो नाम और रूप से रहित, अनिर्वचनीय और अनामय है।

विशेष :—असगति एव अनुप्रास अलंकार।

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥

शब्दार्थ :—लय लाएँ=लौ लगाकर। अनिमादिक=अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व।

व्याख्या :—जो (जिज्ञासु) परमात्मा के गूढ़ तत्व को जानना चाहते हैं वे जीभ से नाम जपकर उसे जान लेते हैं। जो साधक (अर्थात् सिद्धियों की कामना वाले अर्थार्थी) लौ लगाकर नाम जपते हैं वे अणिमा आदि सिद्धियाँ पाकर सिद्ध हो जाते हैं।

जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥

शब्दार्थ :—आरत=आर्त, दुःखी। सुकृती=पुण्यात्मा। अनघ=पाप-रहित।

व्याख्या :—जो आर्त (दुखी) जन नाम जपते हैं उनके बड़े-बड़े भारी संकट मिट जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं। संसार में श्रीरामजी के भक्त चार प्रकार के हैं (अर्थात् ज्ञानी, जिज्ञासु, अर्थार्थी और आर्त) और चारों ही पुण्यात्मा, पापरहित और उदार हैं।

चहू चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

शब्दार्थ :—बिसेषि=विशेष रूप से। जुग=युग, काल। श्रुति=वेद।

व्याख्या :—इन चारों ही चतुर भक्तों को राम नाम का आधार है, पर प्रभु को इनमें ज्ञानी भक्त ही विशेष रूप से प्रिय हैं। यों तो चारों ही युगों और चारों ही वेदों में नाम का प्रभाव है, पर कलियुग में विशेषकर (नाम को

छोड़कर अन्य उपाय नहीं है।

दो०—सकल कामना हीन जे, राम भगति रसलीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद, तिन्हहुँ किए मन मीन ॥२२॥

शब्दार्थ :— ह्रद=ह्रदय। मीन=मछली।

व्याख्या :—जो सब प्रकार की (भोग और मोक्ष की भी) कामनाओं से रहित और श्रीराम की भक्ति के रस में लीन हैं, उन्होंने भी नाम के सुन्दर प्रेमरूपी अमृत के सरोवर में अपने मन को मछली बना रखा है (अर्थात् ज्ञानी भक्त निरन्तर नाम का जप करते रहते हैं)।

विशेष :- रूपक अलंकार।

चौ०—अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
मोरें मत बड़ नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें ॥

शब्दार्थ :— सरूपा=स्वरूप। अगाध=अथाह। दुहू=दोनों। बूतें=बल।

व्याख्या :—निर्गुण और सगुण दोनों ब्रह्म के स्वरूप हैं। ये दोनों ही अकथनीय, अथाह, अनादि और उपमा-रहित हैं। पर मेरे मत से नाम इन दोनों से बड़ा है क्योंकि उसने अपने बल से इन दोनों को अपने वश में कर रखा है (अर्थात् नाम के सहारे दोनों सुलभ हैं)।

विशेष :- अनुप्रास अलंकार।

प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। कहउँ प्रीतीति प्रीति रुचि मन की ॥
एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें ॥
ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनन्द रासी ॥

शब्दार्थ :—प्रौढ़ि=धृष्टता, वादविवाद। जनि=नहीं। प्रीतीति=विश्वास। दारु=लकड़ी। पावक=अग्नि। जुग=युग, दोनों। बिबेकू=ज्ञान।

व्याख्या :— सज्जनगण इस बात को मुझ दास की धृष्टता (ढिठाई) न जानें। मैं तो अपने मन के विश्वास, प्रेम और रुचि की बात कहता हूँ कि निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार के ब्रह्म का ज्ञान अग्नि के समान है। निर्गुण उस अप्रकट अग्नि के समान है जो काठ के अन्दर है, परन्तु दीखती

नहीं; और सगुण उस प्रकट अग्नि के समान है जो प्रत्यक्ष दीखती है। (तत्वतः दोनों एक ही हैं, केवल प्रकट-अप्रकट के भेद से भिन्न मालूम होती हैं। इसी प्रकार निर्गुण और सगुण तत्वतः एक ही हैं। इतना होने पर भी) दोनों ही जानने में बड़े कठिन हैं, परन्तु नाम से दोनों ही सुगम हो जाते हैं। इसीसे मैंने नाम को (निर्गुण) ब्रह्म से और (सगुण) राम से बड़ा कहा है। ब्रह्म एक, सबमें व्यापक, नाश-रहित, सत् (तीनों कालों में रहने वाला), चैतन्य-स्वरूप तथा पूर्ण आनन्द की राशि (अर्थात् दुख से बिलकुल अलग) है।

विशेष :—उपमा एवम् अनुप्रास अलकार।

अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥

शब्दार्थ :—अछत=रहते हुए। अबिकारी=विकार-रहित, निर्मल। जिमि=जैसे।

व्याख्या :—ऐसे विकार-रहित प्रभु के हृदय में रहते हुए भी जगत् के सब जीव दीन और दुखी हैं। वही ब्रह्म नाम के समझने और निरन्तर यत्न-पूर्वक जप करने से ऐसे प्रकट हो जाता है जैसे नाम लेते ही रत्न से मोल प्रकट हो जाता है (भाव यह है कि जैसे नाम के जाने बिना रत्न का मोल नहीं खुलता वैसे ही बिना नाम के अभ्यास के ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता। जब नाम जपने से अन्तःकरण में ब्रह्म की झाँकी होगी तब जीवों के सब दुख दूर हो जायेंगे)।

विशेष :—उदाहरण एवम् अनुप्रास अलंकार।

दो०—निरगुन तें एहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें, निज बिचार अनुसार॥२३॥

शब्दार्थ :—एहि भाँति=इस प्रकार।

व्याख्या :—इस प्रकार निर्गुण ब्रह्म से नाम का प्रभाव अत्यन्त बड़ा है। अब अपने विचार के अनुसार (सगुण) राम से नाम को बड़ा कहता हूँ।

चौ०—राम भगत हित नर तनुधारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥

शब्दार्थ :—अनयासा=अनायास, सहज ही में। मुद=मोद, आनन्द।

व्याख्या :—श्रीरामचन्द्रजी ने भक्तों के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण किया और स्वयम् दुख सहकर सन्तों को सुखी किया; परन्तु-भक्तगण प्रेमपूर्वक नाम का जप करने से सहज में ही आनन्द और मंगल के घर हो जाते हैं।

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषि हित राम सुकेतुसुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी॥
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू॥

शब्दार्थ :—तापसतिय=अहिल्या। सुकेतुसुता=सुकेतु राक्षस की पुत्री-ताड़का। भंजेउ=तोड़ा। चाप=धनुष। भव=शिव, संसार।

व्याख्या :—श्रीराम ने एक तपस्वी (गौतम) की स्त्री अहिल्या को तारा; परन्तु नाम ने करोड़ों दुष्टों की बिगड़ी बुद्धि को सुधार दिया। श्रीराम ने विश्वामित्र ऋषि के हित के लिए सुकेतुराक्षस की पुत्री ताड़का का, उसकी सेना तथा पुत्र (सुबाहु) सहित नाश किया; परन्तु नाम अपने भक्तों के दोष, दुःख और दुराशाओं को इस तरह नाश कर देता है जैसे सूर्य रात्रि का। श्रीरामजी ने तो स्वयं शिवजी के धनुष को तोड़ा, परन्तु नाम का तो प्रताप ही संसार के सब भयों का नाश करने वाला है।

विशेष :—(१) क्रम, उदाहरण एवम् यमक अलंकार।

दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन। जन मन अमित नाम किए पावन॥
निसिचर निकर दले रघुनन्दन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन॥

शब्दार्थ :—अमित=अनगिनत। पावन=पवित्र। निकर=समूह।

व्याख्या :—प्रभु श्रीरामजी ने ( भयानक ) दण्डक वन को सुहावना बनाया, परन्तु नाम ने अनगिनत भक्तों के मन पवित्र कर दिये। श्रीरघुनाथजी ने तो राक्षसों के दल का ही नाश किया, पर नाम कलि के सब पापों का नाश करने वाला है।

दो०—सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, बेद बिदित गुन गाथ॥२४॥

शब्दार्थ : गीध=जटायु । उधारे=उद्धार किया । गाथ=गाथा, कथा ।

व्याख्या :—श्रीराम ने तो शबरी, जटायु आदि उत्तम सेवकों को ही मुक्ति दी; परन्तु नाम ने अनगिनत पापियों का उद्धार किया । नाम के गुणों की कथा वेदों में प्रसिद्ध है ।

चौ०—राम सुकंठ विभीषन दोऊ । राखे सरन जान सबु कोऊ ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे । लोक बेद बर बिरिद बिराजे ॥

शब्दार्थ : —सुकंठ=सुग्रीव । नेवाजे=कृपा की । बिरिद=बिरद, यश ।

व्याख्या :—श्रीराम ने सुग्रीव और विभीषण दो को ही अपनी शरण में रक्खा, यह सब जानते हैं; परन्तु नाम ने अनेक गरीबों पर कृपा की है । नाम का यह सुन्दर यश लोक और वेद में प्रसिद्ध है ।

विशेष :—अनुप्रास अलंकार ।

राम भालु कपि कटकु बटोरा । सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा ॥
नामु लेत भवसिन्धु सुखाहीं । करहू विचारु सुजन मन माहीं ॥

शब्दार्थ :—कपि=बन्दर । कटक=सेना । सेतु=पुल ।

व्याख्या :—श्रीराम ने भालू-वानरों की सेना को बटोरा और समुद्र पर पुल बाँधने के लिये थोड़ा परिश्रम नहीं किया; पर नाम के तो लेने से संसार-समुद्र सूख जाता है । हे सन्तजनों ! आप मन में विचार कीजिये (कि दोनो में कौन बड़ा है) ।

विशेष :—भवसिन्धु में रूपक अलंकार है ।

राम सकुल रन रावनु मारा । सीय सहित निज पुर पगुधारा ॥
राजा रामु अवध रजधानी । गावत गुन सुर मुनि बर बानी ॥
सेवक सुमिरत नामु सुप्रीती, बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती ।
फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें । नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें ॥

शब्दार्थ :—सकुल=कुटुम्ब-सहित । अवध=अयोध्या । सुर=देवता । प्रबल=महाबली । दलु=सेना । प्रसाद=कृपा ।

व्याख्या :—श्रीराम ने कुटुम्ब सहित रावण को युद्ध में मारा और उन्होंने सीता-सहित अपने नगर अयोध्या में प्रवेश किया । राम राजा हुए और

अयोध्या उनकी राजधानी बनी। देवता और मुनिजन सुन्दरवाणी से उनके गुण गाते हैं। पर भक्त तो प्रेमपूर्वक नाम के स्मरणमात्र से बिना (युद्ध आदि) परिश्रम के महाबली मोह को (काम, क्रोध आदि की) सेना-सहित जीतकर, प्रेम-सहित अपने सुख में मग्न विचरते है। नाम की कृपा से उनको स्वप्न में भी सोच नहीं होता।

विशेष :—विभावना और अनुप्रास अलंकार।

दो०—ब्रह्म राम तें नामु बड़, बरदायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ, लिय महेस जियँ जानि ॥२५॥

शब्दार्थ :—कोटि=करोड़। सत=सौ।

व्याख्या :—इस प्रकार नाम ब्रह्म (निर्गुण) और राम (सगुण) दोनों से बड़ा है। यह वरदान देने वालों को भी वर देने वाला है। शिवजी ने अपने हृदय में ऐसा जानकर ही सौ करोड़ रामचरित में से 'राम' नाम को चुना है।

विशेष :—कहा जाता है कि वाल्मीकि ने शत कोटि रामायण लिखी और उसे सुनाने के लिए शिवजी के पास ले गये। जब यह समाचार देवताओं को भी मिला तो वे सब इसे सुनने के लिये कैलाश पर पहुँचे। एक वर्ष में कथा पूर्ण हुयी। देवताओं ने शिवजी से कहा कि यदि रामायण में से हम लोगों को भी भाग मिले तो तीनों लोकों में प्रसिद्ध करें। महादेवजी ने प्रसन्न होकर रामायण के अक्षरों को तीन भागों में विभाजित कर देवताओं, शेषनाग और मुनियों में बाँट दिया। शेष 'राम' नाम के दो अक्षर बचे, जिन्हें उन्होंने अपने हृदय में धारण कर लिया।

चौ०—नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साजु अमंगल मंगल रासी॥
सुक सनकादिक सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥

शब्दार्थ :—अबिनासी=अमर। प्रसाद=कृपा।

व्याख्या :—नाम की कृपा से ही शिवजी अविनासी हैं और (मुण्डमाला आदि) अमंगलीक साज होने पर भी मंगल की राशि हैं। शुकदेवजी, सनकादि सिद्ध, मुनि और योगी—ये सब नाम की कृपा से ही ब्रह्म सुख भोगते हैं।

विशेष :—द्वितीय चरण में विरोधाभास अलंकार प्रतीत होता है।

नारद जानेउ नाम प्रतापू । जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू ।।
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । भगत सिरोमनि भे प्रहलादू ।।

शब्दार्थ :—हरि=विष्णु । हर=शिवजी । भे=हुए ।

व्याख्या :—नारदजी ने नाम के प्रताप को जाना है । सारे जगत् को विष्णु प्रिय हैं, विष्णु को शिवजी प्रिय हैं और आप (नारदजी) दोनों को प्रिय हैं । केवल नाम के जपने से ही भगवान् ने ऐसी कृपा की जिससे प्रह्लादजी भक्तशिरोमणि हो गये ।

ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ । पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ।।
सुमिरि पवनसुत पावन नामू । अपने बस करि राखे रामू ।।

शब्दार्थ :—सगलानि=दुःख-सहित, अरुचि । ठाऊँ=स्थान ।

व्याख्या :—ध्रुवजी ने ( अपनी माता के वचनों से दुःखी होकर ) अरुचि से भगवान् का नाम जपा और उसके प्रताप से अचल अनुपम स्थान (ध्रुवलोक) प्राप्त किया । हनुमानजी ने इस पावन नाम का स्मरण करके श्रीरामजी को अपने वश में कर रखा है ।

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ । भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊँ ।।
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई । रामु न सकहिं नाम गुन गाई ।।

शब्दार्थ :—अपतु=अपात्र, अधम । गणिका=वेश्या । मुकुत=मुक्त ।

व्याख्या :—अजामिल, गज और गणिका (वेश्या) जैसे पतित भी भगवान् के नाम के प्रभाव से मुक्त हो गये । मैं नाम की बड़ाई कहाँ तक करूँ, राम भी नाम के गुणों को नहीं गा सकते ।

दो०—नामु राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवासु ।
जो सुमिरत भयो भाँग तें, तुलसी तुलसीदासु ।।२६।।

शब्दार्थ :—कलपतरु = कल्पवृक्ष, समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण करने वाला । भाँग तें=भाँग के समान, निकृष्ट ।

व्याख्या :—श्रीराम का नाम समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण करने वाला कल्पवृक्ष और कलियुग के कल्याण का निवास (मुक्ति का घर) है । जिसका स्मरण करने से भाँग-सा (निकृष्ट) तुलसीदास भी तुलसी के समान (पवित्र) हो गया ।

विशेष :—यमक अलंकार।

चौ०—चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥
बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥

शब्दार्थ :—चहुँ=चारों। जुग=युग। भए=हुए। बिसोका=शोकरहित। सुकृत=पुण्य।

व्याख्या :—( केवल कलियुग में ही नहीं ) चारों युगों, तीनों कालों और तीनों लोकों में प्राणी नाम को जपकर शोकरहित हुए हैं। वेद, पुराण और सन्तों का मत यही है कि श्रीराम में प्रेम होना समस्त पुण्यों का फल है।

ध्यानु प्रथम जुग मख बिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥

शब्दार्थ :—प्रथम जुग=सतयुग। मख=यज्ञ। परितोष=प्रसन्न। मल मूल=पाप की जड़। मीन=मछली।

व्याख्या :— सतयुग में ध्यान से, त्रेता में यज्ञ की विधि से और द्वापर में पूजा से भगवान् प्रसन्न होते हैं, परन्तु कलियुग केवल पाप की जड़ और मलिन है, इसमें मनुष्यों का मन पापरूपी समुद्र में मछली हो रहा है (अर्थात् जैसे मछली पानी में मग्न रहती है उसी तरह लोग पापों में मग्न हैं, इससे ध्यान, यज्ञ और पूजन नहीं हो सकते)।

विशेष :—रूपक एवं अनुप्रास अलंकार।

नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥

शब्दार्थ :—कामतरु=कल्पवृक्ष। कराल=भयंकर। समन=नाश। जग जाला=संसारिक जजाल। अभिमत दाता=मनोवांच्छित फल देने वाला।

व्याख्या :— ऐसे भयंकर कलिकाल में राम का नाम ही कल्पवृक्ष है, जिसका स्मरण करने से ही संसार के सब जजाल नष्ट हो जाते हैं। कलिकाल में यह राम का नाम मनोवांच्छित फल देने वाला है, परलोक मे हितकारी और इस लोक में माता-पिता के समान संरक्षक और परिपालक है।

नहिं कलि करम न भगति विवेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू॥

शब्दार्थ :—भगति=भक्ति। विवेक=ज्ञान। सुमति=बुद्धिमान्।

व्याख्या :—कलियुग में न तो (यज्ञ आदि) कर्म हैं, न भक्ति है, न ज्ञान है (अर्थात् इनका साधन बहुत कठिन है), केवल एक राम के नाम का सहारा है। कलियुग महाकपटी कालनेमि राक्षस है और 'राम' नाम (उसके नाश करने के लिए) समर्थ और बुद्धिमान हनुमानजी हैं।

विशेष :—अनुप्रास एवम् रूपक अलंकार।

दो०—राम नाम नरकेसरी, कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि, पालिहि दलि सुरसाल॥२७॥

शब्दार्थ :—नरकेसरी=नृसिंह। कनककसिपु=हिरण्यकशिपु। जापक=जप करने वाले। सुरसाल=देवताओं को सताने वाला।

व्याख्या :—राम नाम नृसिंह भगवान् हैं, कलिकाल राक्षस हिरण्यकशिपु है और जप करने वाले जन प्रह्लाद के समान हैं। यह राम नाम देवताओं को सताने वाले (कलियुगरूपी दैत्य) को मारकर जप करने वालों की रक्षा करेगा।

विशेष :—रूपक एवम् उपमा अलंकार।

## श्रीरामगुण और श्रीरामचरित की महिमा

चौ०—भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा। करउँ नाइ रघुनाथहि माथा॥

शब्दार्थ :—भायँ=प्रेम, मन। कुभायँ=वैर, बेमन। अनख=क्रोध।

व्याख्या :—जिस नाम का प्रेम से, वैर से, क्रोध से या आलस्य से, (किसी तरह से भी) जपने पर दशों दिशाओं में कल्याण होता है, उसी नाम का स्मरण करके और श्रीरघुनाथजी को मस्तक नवाकर मैं उनके गुणों का वर्णन करता हूँ।

विशेष :—भागवत् में लिखा है :—

"कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौ विदधतो यांति तन्मयतां हि ते ॥"
(१०/२९/१५)

अर्थात् काम से, क्रोध से, भय से, स्नेह से, किसी सम्बन्ध से या भक्ति से—किसी भी तरह जिनका चित्त भगवान् में लवलीन है, वे तन्मय हो जाते हैं ।

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती । जासु कृपाँ नहिं कृपाँ अघाती ॥
राम सुस्वामि कुसेवकु मोसो । निज दिसि देखि दयानिधि पोसो ॥

शब्दार्थ :—अघाती=संतुष्ट होती है । निज दिसि=अपनी ओर ।

व्याख्या:—वे भगवान् मेरी (बिगड़ी) सब तरह से सुधार लेंगे, क्योंकि उनकी कृपा, कृपा करने से कभी संतुष्ट नहीं होती । श्रीराम से उत्तम स्वामी और मेरा जैसा बुरा सेवक ! (दोनों में महान् अन्तर है) पर हे दयानिधान ! अपनी ओर देखकर मेरा पालन कीजिये ।

लोकहुँ वेद सुसाहिब रीती । विनय सुनत पहिचानत प्रीती ॥
गनी गरीब ग्रामनर नागर । पंडित मूढ़ मलीन उजागर ॥

शब्दार्थ :—गनी=धनी । गरीब=निर्धन । नागर=नगरनिवासी । मूढ़= मूर्ख । मलीन=खल । उजागर=सज्जन ।

व्याख्या :—लोक और वेद में भी अच्छे स्वामी की यही रीति प्रसिद्ध है कि वे विनती को सुनते और प्रेम को पहिचानते हैं । धनी-निर्धन, ग्रामीण-नागरिक, पण्डित-मूर्ख, खल-सज्जन ।

विशेष :—ग़नी, ग़रीब जैसे अरबी शब्दों का प्रयोग द्रष्टव्य है ।

सुकवि कुकवि निज मति अनुहारी । नृपहि सराहत सब नर नारी ॥
साधु सुजान सुसील नृपाला । ईस अंस भव परम कृपाला ॥

व्याख्या :—सुकवि-कुकवि—क्या स्त्री, क्या पुरुष, सब अपनी-अपनी मति के अनुसार राजा की सराहना करते हैं । साधु, सज्जन तथा सुशील राजा, ईश्वर के अंश से उत्पन्न और परम दयालु होते हैं ।

सुनि सनमानहिं सबहि सुबानी । भनिति भगति नति गति पहिचानी ॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ । जान सिरोमनि कोसलराऊ ॥
रीझत राम सनेह निसोतें । को जग मंद मलिन मति मोतें ॥

शब्दार्थ :—भनिति=कविता। नति=विनय। गति=चाल। महिपाल=राजा। निसोंते=निःसंयुक्त, शुद्ध। मोतें=मुझसे।

व्याख्या :—वे ( राजा ) अपनी प्रशंसा सुनकर और कविता, भक्ति, विनय तथा चाल को पहिचानकर सुन्दर वाणी से सबका यथायोग्य सम्मान करते हैं। यह स्वभाव तो संसारी राजाओं का है, कौशलराज रघुनाथजी तो चतुरशिरोमणि हैं। वे (श्रीराम) तो सच्चे प्रेम से रीझते हैं, पर जगत् में मुझसे बढ़कर मूर्ख और मलिन बुद्धिवाला कौन है ?

दो०—सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किए जलजान जेहिं, सचिव सुमति कपि भालु ॥२८(क)॥

शब्दार्थ :—सठ=दुष्ट। कृपालु=दयालु। उपल=पत्थर। जलजान=जलयान।

व्याख्या :—(लेकिन मुझे विश्वास है कि) वे दयालु श्रीराम मुझ दुष्ट सेवक की प्रीति और रुचि को अवश्य रखेंगे, जिन्होंने पत्थरों को जहाज और बन्दर-भालुओं को बुद्धिमान् मंत्री बना लिया।

हौंहु कहावत सबु कहत, राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो, सेवक तुलसीदास ॥२८(ख)॥

शब्दार्थ :—उपहास=निन्दा।

व्याख्या :—मुझे सब लोग श्रीरामजी का सेवक कहते हैं और मैं कहलाता भी हूँ। श्री सीतानाथजी-से स्वामी और तुलसीदास जैसा सेवक ! कितना अन्तर है, पर इस उपहास को कृपालु श्रीराम सहते हैं।

चौ०—अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी ॥
समुझि सहम मोहि अपडर अपनें। सो सुधि राम कीन्हि नहीं सपनें ॥

शब्दार्थ :—खोरी=खोट, दोष। अघ=पाप। अपडर=भय।

व्याख्या :—यह मेरी बहुत बड़ी ढिठाई और दोष है, मेरे पाप को सुनकर नरक ने भी नाक सिकोड़ ली हैं (अर्थात् मेरे जैसे पापी के लिए नरक में भी कोई स्थान नहीं)। यह समझकर मैं अपने से ही डर और संकोच कर रहा हूँ, परन्तु भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने तो स्वप्न में भी इस ओर (मेरी धृष्टता और दोष की ओर) ध्यान नहीं दिया।

विशेष :—अतिशयोक्ति अलंकार ।

सुनि अवलोकि सुचित चख चाही । भगति मोरि मति स्वामि सराही ॥
कहत नसाइ होइ हियँ नीकी । रीझत राम जानि जन जी की ॥

शब्दार्थ :—अवलोकि=देखकर । चख=चक्षु । सराही=सराहना की । हियँ=हृदय । जन=भक्त, दास । जी=मन ।

व्याख्या :—संतों से सुनकर तथा शास्त्रों का निरीक्षण कर मैंने अपने सुचित्तरूपी चक्षु से देखा तब मेरी यही मति हुई कि श्रीरामजी (भक्तों की) भक्ति की सराहना ही करते हैं । कहने में चाहे बिगड़ जाय (अर्थात् मैं भली प्रकार से स्पष्ट करके श्रीरामजी के गुणों को न समझा सकूँ) परन्तु हृदय में अच्छापन होना चाहिये । श्रीराम अपने भक्तों के हृदय का स्नेह जानकर रीझ जाते हैं ।

विशेष :—रूपक एवम् अनुप्रास अलंकार ।

रहति न प्रभु चित चूक किए की । करत सुरति सय बार हिए की ॥
जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि बाली । फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥

शब्दार्थ :· सुरति=स्मृति, स्मरण । हिए=हृदय । बधेउ=वध किया, माँरा । सुकंठ=सुग्रीव ।

व्याख्या :—प्रभु के चित्त में ( अपने भक्तों से हुयी ) चूक याद नहीं रहती पर भक्तों के सुहृदय (अच्छाई) को वे सैंकड़ों बार याद करते हैं । जिस पाप के कारण श्रीराम ने बाली को व्याध के समान (छिपकर) मारा था, वही कुचाल (पाप) सुग्रीव ने भी चली ।

विशेष :—उपमा अलंकार ।

सोइ करतूति बिभीषन केरी । सपनेहुँ सो न रांम हियँ हेरी ॥
ते भरतहि भेंटत सनमाने । राजसभाँ रघुबीर बखाने ॥

शब्दार्थ :—सोइ=वही । हियँ=हृदय ।

व्याख्या :—वही करतूत विभीषण ने की, पर श्रीराम ने स्वप्न में भी उसका मन में विचार नहीं किया । उलटे भरतजी से मिलते समय श्री रघुनाथजी ने उनका सम्मान किया और राजसभा में भी उनके गुणों का बखान किया ।

विशेष :—सुग्रीव ने वाली की स्त्री तारा को और विभीषण ने रावण की पत्नी मन्दोदरी को घर में रख लिया था। बालि ने भी इसी तरह का पाप किया था, उसने सुग्रीव की पत्नी को अपने घर में रख लिया था। पर प्रभु ने बालि को दण्ड दिया और सुग्रीव तथा विभीषण को कुछ भी नहीं कहा।

दो०—प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से, साहिब सील निधान ॥२९(क)॥

शब्दार्थ :—तरुतर=वृक्ष के नीचे। साहिब=स्वामी।

व्याख्या :भगवान् तो वृक्ष के नीचे और बन्दर डालियों पर! कैसी अनुचित बात है! (अर्थात् कहाँ सच्चिदानन्दघन परमात्मा श्रीराम और कहाँ पेड़ों की डालियों पर उछल-कूद करने वाले बन्दर!), परन्तु श्रीराम ने ऐसे बन्दरों को भी अपने समान बना लिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीराम जैसे सुशील स्वामी कहीं भी नहीं हैं।

विशेष :—उपमा एवं अनुप्रास अलंकार।

राम निकाईं रावरी है, सबही को नीक।
जौं यह सांची है सदा, तौ नीको तुलसीक ॥२९(ख)॥

शब्दार्थ :—रावरी=आपकी। नीक=भला, अच्छा। सांची=सत्य।

व्याख्या :—हे श्रीराम! आपकी अच्छाई से सभी का भला है (अर्थात् आपका कल्याणमय स्वभाव सभी का कल्याण करने वाला है)। यदि यह बात सत्य है तो तुलसीदास का भी (निश्चित ही) भला है।

एहि विधि निज गुन दोष कहि, सबहि बहुरि सिरु नाइ।
बरनउँ रघुबर बिसद जसु, सुनि कलि कलुष नसाइ ॥२९(ग)॥

शब्दार्थ :—बिसद=विशद, विमल। जस=यश। कलुष=पाप।

व्याख्या :—इस प्रकार अपने गुण-दोषों को कहकर और फिर सबको सिर नवाकर मैं श्री रघुनाथजी का विमल यश वर्णन करता हूँ, जिसके सुनने से कलियुग के पाप नष्ट हो जाते हैं।

चौ०—जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई ॥
कहिहउँ सोइ संवाद बखानी। सुनहुँ सकल सज्जन सुख मानी ॥

शब्दार्थ :—सुहाई=सुहावनी। मुनिबरहि=मुनिश्रेष्ठ।

व्याख्या :—याज्ञवल्क्यजी ने जो सुहावनी कथा मुनिश्रेष्ठ भारद्वाजजी को सुनायी थी, उसी संवाद को मैं विस्तार-पूर्वक कहूँगा; सभी सज्जन सुख का अनुभव करते हुए उसे सुनें।

**संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा।**
**सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा।।**

शब्दार्थ :—बहुरि=फिर। उमहि=उमा को। चीन्हा=पहचानकर।

व्याख्या :—यह सुन्दर चरित्र महादेवजी ने बनाया और फिर कृपा करके पार्वतीजी को सुनाया। वही चरित्र शिवजी ने काकभुशुण्डिजी को राम-भक्त और अधिकारी पहिचान कर दिया।

**तेहि सन जागवलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा।।**
**ते श्रोता बकता समसीला। सवँदरसी जानहिं हरिलीला।।**

शब्दार्थ :—तेहिसन=उनसे। पुनि=फिर।

व्याख्या :—उन (काकभुशुण्डिजी) से फिर याज्ञवल्क्य मुनि ने पाया और फिर उन्होंने भरद्वाजजी को गाकर सुनाया। वे दोनों श्रोता और वक्ता समान शीलवाले, समदर्शी तथा भगवान् की लीलाओ के ज्ञाता हैं।

**जानहिं तीनि काल निज ग्याना। करतल गत आमलक समाना।।**
**औरउ जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना।।**

शब्दार्थ :—निज=अपने। करतलगत=हथेली पर रक्खे हुए। सुजान=चतुर। विधि नाना=अनेक प्रकार से।

व्याख्या :—वे अपने ज्ञान से तीनों कालों को हथेली पर रक्खे हुए आँवले के समान (प्रत्यक्ष) जानते हैं। और भी जो सुजान हरिभक्त हैं वे इस चरित्र को भाँति-भाँति से कहते, सुनते और समझते हैं।

विशेष :—उदाहरण अलकार।

**दो०—मैं पुनि निज गुर सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।**
**समुझी नहिं तसि बालपन तब, अति रहेउँ अचेत।।३०(क)।।**

शब्दार्थ :—सूकरखेत=वाराह-क्षेत्र, जो सरयू के किनारे अयोध्या के पास है। अचेत=अनसमझ।

व्याख्या :—फिर वही कथा मैंने अपने गुरुजी से वाराह-क्षेत्र में सुनी। लेकिन जैसी चाहिये थी वैसी समझ में नहीं आई, क्योंकि उस समय मैं बालक-पन के कारण बहुत अनसमझ था।

श्रोता वकता ग्याननिधि, कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौं मैं जीव जड़, कलि मल ग्रसित विमूढ ॥३०॥ (ख)

शब्दार्थ :—श्रोता=सुनने वाले। किमि=कैसे। ग्रसित=ग्रसा हुआ।

व्याख्या :—श्रीरघुनाथजी की कथा बड़ी ही गूढ़ है। इसके समझने को श्रोता और वक्ता (कहने वाले) दोनों ही ज्ञानी होने चाहिये। (सो गुरु तो ज्ञान के समुद्र थे पर) मैं कलियुग के पापों से ग्रसा हुआ महामूढ़ जड़ जीव भला उसको कैसे समझ सकता था?

चौ०—तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहिं होई॥

शब्दार्थ :—बारहिं-बारा=बार-बार। मति=बुद्धि। प्रबोध=यथार्थ-ज्ञान।

व्याख्या :—(मैं नहीं समझा) तो भी गुरुजी ने बार-बार (समझाकर) कथा कही, तब अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ समझ में आयी। उसी को मैं अब भाषा-छन्दों में बनाता हूँ, जिससे मेरे मन को उसका यथार्थ ज्ञान हो जाय।

विशेष :—यहाँ यह शंका उत्पन्न होती है कि जब गुरु के बार-बार सुनाने से भी पूर्ण बोध नहीं हुआ तो अब उसे भाषाबद्ध करने से प्रबोध कैसे हो जायेगा? इसका समाधान यह है कि एक तो तुलसीदासजी उस समय बालकपन के कारण अल्पज्ञ थे सो अब नहीं रहे। दूसरे अब अनेक शास्त्रों, पुराणों तथा वेदों का मंथन करके तथा रामायण पढ़कर वे उस कथा की रचना करने बैठ हैं, पहले तो केवल सुना ही था।

जस कछु बुधि बिबेक बल मेरें। तस कहिहउँ हियें हरि के प्रेरें॥
निज सन्देह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥

शब्दार्थ :—जस=जैसा। प्रेरें=प्रेरणा से। सरिता=नदी। तरनी=नौका।

व्याख्या :—जैसा कुछ मुझमें बुद्धि और ज्ञान का वल है, मैं हृदय से हरि की प्रेरणा से उसी के अनुसार कहूँगा। मैं अपने सन्देह, मोह और भ्रम को दूर करने वाली तथा संसाररूपी नदी से तारने के लिए नौकारूप कथा बनाता हूँ।

विशेष :—चतुर्थ चरण में रूपक अलंकार है।

बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। राम कथा कलि कलुष बिभंजनि।।
राम कथा कलि पंनग भरनी। पुनि बिवेक पावक कहुँ अरनी।।

शब्दार्थ :—बुध=पंडित। रंजनि=प्रसन्न करने वाली। कलुष=पाप। पंनग=साँप। भरनि=डसने वाली-यहाँ मोरनी। पावक=अग्नि। अरनी=अरणि, मन्थन की जाने वाली लकड़ी।

व्याख्या :—रामकथा पंडितों को विश्राम देने वाली, सब मनुष्यों को प्रसन्न करने वाली और कलियुग के पापों का नाश करने वाली है। रामकथा कलियुगरूपी साँप के लिए मोरनी है (अर्थात् जैसे मयूरी सर्प का भक्षण कर लेती है उसी तरह रामकथा कलियुग के घोर पापों का नाश करने वाली है) और विवेकरूपी अग्नि के प्रकट करने के लिए अरणि है (अर्थात् जैसे लकड़ियों के रगड़ने से अग्नि प्रकट हो जाती है उसी तरह रामकथा पढ़ने से ज्ञान की प्राप्ति होती है)।

विशेष :—तृतीया एवं चतुर्थ चरण में रूपक अलंकार।

रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई।।
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम-भेक भुअंगिनि।।

शब्दार्थ :—कामद गाई=कामधेनु गो। सजीवनि=सञ्जीवनी। सुहाई=सुन्दर। तरंगिनि=नदी। भ्रम-भेक=भ्रमरूपी मेंढ़क। भुअंगिनी=सर्पिणी।

व्याख्या :—श्रीराम की कथा कलियुग में सब मनोरथों को पूरा करने वाली कामधेनु गो है और सज्जनों के लिए सुन्दर सञ्जीवनी जड़ी है (भाव यह है कि जैसे सञ्जीवनी बूटी के सेवन से शरीर के सब रोग जाते रहते हैं उसी तरह रामकथा से भक्तों के जन्म-मरण आदि सभी संसारिक रोग नष्ट हो जाते हैं)। राम कथा पृथ्वीतल पर अमृत की नदी है, भय की नाशक है और भ्रमरूपी मेंढ़कों को खाने के लिए सर्पिणी है।

विशेष :—रूपक एवम् अनुप्रास अलंकार।

असुरसेन सम नरक निकंदिनि। साधु विबुध कुल हित गिरिनंदिनि॥
सन्त समाज पयोधि रमा सी। विस्व भार भर अचल छमा सी॥

शब्दार्थ :—असुरसेन सम=राक्षसों की सेना के समान। निकंदिनि=नाश करने वाली। विबुध=पंडित, देवता। गिरिनंदिनि=पार्वती। अचल=स्थिर।

व्याख्या :—यह रामकथा राक्षसों की सेना के समान नरकों का नाश करने वाली और साधु रूप देवताओं के कुल का हित करने वाली पार्वती है। यह सन्त-समाज रूपी क्षीरसागर के लिए लक्ष्मीजी के समान है तथा सम्पूर्ण जगत् का भार धारण करने के लिए पृथ्वी के समान अचल है।

विशेष :—उपमा, रूपक एवम् अनुप्रास अलंकार की छटा द्रष्टव्य है।

जम गन मुँह मसि जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी। तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी।

शब्दार्थ :—जमगण=यमदूतों। जनु=मानों।

व्याख्या :—यमदूतों का मुँह काला करने के लिए यह जगत् में यमुनाजी के समान है और जीवों को मुक्ति देने के लिए मानो काशी ही है (अर्थात् जैसे काशी में प्राण त्यागने से मुक्ति मिलती है, उसी तरह राम कथा को पढ़ने से भी मोक्ष मिलता है)। यह श्रीरामजी को पवित्र तुलसी के समान प्यारी है और तुलसीदास के लिए हुलसी (तुलसीदासजी की माता) के समान हृदय से हित चाहने वाली है।

विशेष :- उपमा, उत्प्रेक्षा एवम् अनुप्रास अलंकार।

सिवप्रिय मेकल सैल सुता सी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी॥
सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुबर भगति प्रेम परमिति सी॥

शब्दार्थ :—मेकल-सैल-सुता=नर्मदा नदी। अंब=माता। परमिति=चरमसीमा।

व्याख्या :—यह रामकथा शिवजी को नर्मदा के समान प्रिय है (क्योंकि शिवलिंग प्रायः नर्मदा के पत्थरों के ही होते हैं), यह सकल सिद्धियों की, सुख की तथा सम्पत्ति की राशि है। यह सद्गुणरूपी देवताओं को उत्पन्न

तथा पालन करने के लिए माता अदिति के समान है और श्रीरघुनाथजी की भक्ति तथा प्रेम की परम सीमा है। (अर्थात् श्रीरामजी की भक्ति और प्रेम प्राप्त करने का इससे बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं )।

विशेष :—उपमा, रूपक एवम् अनुप्रास अलंकार।

दो०—रामकथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुवीर बिहारु ॥३१॥

शब्दार्थ :—चारु=सुन्दर, विमल। सुभग=सुन्दर।

व्याख्या :—तुलसीदासजी कहते हैं कि सुन्दर स्नेह ही वन है, (जिनमें) निर्मल चित्त चित्रकूट और रामकथा मन्दाकिनी नदी है, वहाँ सीतारामजी विहार करते हैं।

विशेष :—रूपक अलंकार द्रष्टव्य है।

चौ०—रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥
जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥

शब्दार्थ :—चारू=सुन्दर। सुमति=सुबुद्धि। सुभग=सुन्दर। धरम= धर्म।

व्याख्या :—श्रीरामजी का चरित्र सुन्दर चिन्तामणि है और सन्तों की सुबुद्धिरूपी स्त्री का सुन्दर शृंगार है (अर्थात् रामचरित का वर्णन करने से ही सन्तों की बुद्धि की शोभा होती है)। श्रीरामजी के गुण-समूह जगत् में मंगल करने वाले हैं और मुक्ति, अर्थ, धर्म और धाम (परमधाम) के देने वाले हैं।

विशेष :—रूपक एवम् अनुप्रास अलंकार।

सदगुर ग्यान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के॥
जननि जनक सियराम प्रेम के॥ बीज सकल व्रत धरम नेम के॥

शब्दार्थ :—ग्यान=ज्ञान। बिराग=वैराग्य। जोग=योग। बिबुध-बैद= देवताओं के वैद्य, अश्विनीकुमार। भीम=भयंकर। नेम=नियम।

व्याख्या :—(यह रामचरित्र) ज्ञान, वैराग्य और योग सिखाने के लिए सद्गुरु है (अर्थात् रामचरित्र सुनने से भक्तों को ज्ञान, वैराग्य और योग में गति हो जाती है) और संसार के भयंकर (आवागमन आदि) रोगों का नाश करने

के लिए देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार के समान है। यह श्रीराम जानकी में प्रेम उत्पन्न करने के लिए माता-पिता के समान है और सम्पूर्ण व्रत, धर्म और नियमों का बीज है (अर्थात् रामचरित्र सुनने से इनके अंकुर पैदा हो जाते हैं)।

विशेष :—रूपक एवम् अनुप्रास अलंकार।

समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के ॥
सचिव सुभट भूपति विचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के ॥

शब्दार्थ :—समन=नाश। सचिव=मन्त्री। भूपति=राजा। कुंभज=अगस्त्यजी।

व्याख्या :—पाप, सन्ताप और शोक के नाशक तथा इस लोक और परलोक के प्रिय पालक हैं अर्थात् दोनों जगह सब सुख देने वाले हैं। विचार रूपी राजा के शूरवीर मन्त्री और लोभ रूपी अपार समुद्र को सोखने के लिए अगस्त्य मुनि हैं।

विशेष :—रूपक एवम् अनुप्रास अलंकार।

काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन मन वन के ॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के ॥

शब्दार्थ :—कोह=क्रोध। करिगन=हाथियों। केहरि सावक=सिंह के बच्चे। पुरारि=शिवजी। घन=बादल। दवारि=दावाग्नि, दावानल।

व्याख्या :—भक्तों के मनरूपी वन में रहने वाले, काम, क्रोध और कलियुग के पापरूपी हाथियों के मारने के लिए सिंह के बच्चे हैं। शिवजी के पूज्य और प्रियतम अतिथि हैं और दरिद्रतारूपी वन की अग्नि को बुझाने के लिये कामनापूर्ण करने वाले घन हैं।

विशेष :—रूपक एवम् अनुप्रास अलंकार।

मन्त्र महामनि विषय व्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के ॥
हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक सालि पाल जलधर से ॥

शब्दार्थ :—व्याल=सर्प, साँप। कुअङ्क=बुरे लेख। दिनकर=सूर्य। कर=किरण। सालि=धान। जलधर=मेघ, बादल।

व्याख्या :—विषयरूपी सर्प का जहर उतारने के लिए राम मन्त्र

और महामणि हैं तथा विधाता द्वारा ललाट पर लिखे हुए कठिनता से मिटने वाले बुरे लेखों को मिटा देने वाले हैं। ये अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने के लिये सूर्य-किरणों के समान और सेवकरूपी धान के पालन करने में मेघ के समान हैं।

विशेष :—उपमा एवं रूपक अलंकार।

अभिमत दानि देवतरु बर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से॥
सुकवि सरद नभ मन उडगन से। रामभगत जन जीवन धन से॥

शब्दार्थ :—अभिमत=मनोवाञ्छित। देवतरु=कल्पवृक्ष। हरि=विष्णु। हर=शिवजी। उडगन=तारागण।

व्याख्या :—मनोवाञ्छित वस्तु देने में श्रीराम श्रेष्ठ कल्पवृक्ष के समान हैं और सेवा करने पर विष्णु-शिव के समान सहज में मिलने वाले और सुख देने वाले हैं। ये सुकविरूपी शरद् ऋतु के मनोनभ में सुशोभित तारागण के समान और श्रीरामजी अपने भक्तों के तो जीवन-सर्वस्व ही हैं।

विशेष :—उपमा एवम् रूपक अलंकार।

सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जगहित निरुपधि साधु लोग से॥
सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से॥

शब्दार्थ :—सकल=सम्पूर्ण। सुकृत=पुण्य। भूरि—भारी, बहुत। निरुपधि=निष्कपट। मराल=हंस। पावन=पवित्र।

व्याख्या :—(श्रीराम) समस्त सुकर्मों के फल पूर्ण भोग के समान हैं और संसार का हित करने में निष्कपट साधु-सन्तों के समान हैं। वे सेवकों (भक्तों) के मनरूपी मानसरोवर के लिये हंस के समान और पावन करने में गंगाजी की तरङ्गमालाओं के समान हैं।

विशेष :—उपमा, रूपक एवं अनुप्रास अलंकार।

दो०—कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दंभ पाषंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि, इंधन अनल प्रचंड॥३२॥ (ख)

शब्दार्थ :—कुतरक=कुतर्क। दंभ=दम्भ, अभिमान। जिमि=जैसे।

व्याख्या :—श्रीराम के गुणों के समूह कलियुग के समस्त कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल, कपट, अभिमान एवम् आडम्बर को जला डालने के लिए वैसे

ही हैं जैसे ईंधन के लिए प्रचण्ड अग्नि (अर्थात्. जैसे प्रचण्ड अग्नि की ज्वाला में सब कुछ जलकर राख हो जाता है उसी प्रकार श्रीरामचरित्र के कहने-सुनने से हृदय की समस्त बुराइयाँ नष्ट हो जाती हैं ) ।

विशेष :—उदाहरण एवं अनुप्रास अलकार ।

**रामचरित राकेस कर, सरिस सुखद सब काहु ।**
**सज्जन कुमुद चकोर हित, बिसेषि बड़ लाहु ।।३२।। (ख)**

शब्दार्थ :—राकेश=चन्द्रमा । सरिस=समान । सब काहू=सभी ।

व्याख्या :—पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणों के समान रामचरित्र सभी को सुख देने वाला है, परन्तु सज्जनरूपी कुमुदिनी और चकोर के चित्त के लिए तो विशेष हितकारी और महान् लाभदायक है ।

विशेष :—उपमा एवम् रूपक अलंकार ।

**चौ०—कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी । जेहि बिधि संकर कहा बखानी ।।**
**सो सब हेतु कहब मैं गाई । कथाप्रबन्ध विचित्र बनाई ।।**

व्याख्या :—पार्वतीजी ने जिस भाँति शिवजी से प्रश्न किया था और जिस प्रकार भगवान् शंकर ने बखान कर कहा था, वह सब कारण मैं विचित्र कथा बनाकर क्रमशः कहूँगा ।

**जेहिं यह कथा सुनी नहिं होई । जनि आचरजु करै सुनि सोई ।।**
**कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी । नहिं आचरजु करहिं अस जानी ।।**
**रामकथा कै मिति जग नाहीं । असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं ।।**
**नाना भाँति राम अवतारा । रामायन सत कोटि अपारा ।।**

शब्दार्थ :—जनि=नहीं । आचरजु=आश्चर्य । मिति=सीमा । प्रतीति= विश्वास । कोटि=करोड़ ।

व्याख्या—जिसने यह कथा नहीं सुनी हो वह इसे सुनकर आश्चर्य नहीं करे । इस अलौकिक कथा को जो ज्ञानी सुनते हैं वे यह जानकर आश्चर्य नहीं करते कि संसार में रामकथा की कोई सीमा नहीं है, वह अनन्त है । उनके मन में ऐसा विश्वास रहता है कि श्रीराम ने अनेक प्रकार से अवतार लिया है और उनकी सौ करोड़ तथा अपार रामायण हैं ।

कलप भेद हरि चरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिय कथा सादर रति मानी॥

व्याख्या—कल्पभेद के अनुसार भगवान् के सुन्दर चरित्रों को मुनियों ने अनेक प्रकार से गाया है। हृदय में ऐसा जानकर संदेह न कीजिये और आदर-सहित प्रेम से इस कथा को सुनिये।

दो०—राम अनंत अनंत गुन, अमित कथा विस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं, जिन्ह कें विमल विचार॥३३॥

व्याख्या—श्रीरामजी अनन्त हैं, उनके गुणों का अन्त नहीं और उनकी कथाओं का विस्तार भी सीमा-रहित है। अतएव जिनके विचार निर्मल हैं वे इस कथा को सुनकर अचरज नहीं मानेंगे (अर्थात् इस कथा में किसी रामायण से भेद होगा तो भी आश्चर्य नहीं करेंगे।

## मानस-निर्माण की तिथि

चौ०—एहि विधि सब संसय करि दूरी। सिर धरि गुर पद पंकज धूरी॥
पुनि सबही बिनवउँ कर जोरी। करत कथा जेहि लाग न खोरी॥

शब्दार्थ :—एहि विधि=इस प्रकार। संसय=सन्देह। खोरी=दोष।

व्याख्या :—इस प्रकार सब सन्देह दूर कर और गुरु के चरण-कमलों की रज को सिर पर धारण करके मैं फिर हाथ जोड़कर सभी से विनती करता हूँ, जिससे कथा की रचना में कोई दोष स्पर्श न कर पावे।

विशेष :—'गुर पद पंकज धूरी' में रूपक अलंकार है।

सादर सिवहि नाइ अब माथा। बरनउँ बिसद राम गुन गाथा॥
संवत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥

व्याख्या—अब आदरपूर्वक शिवजी को सिर नवाकर मैं श्रीरामजी के निर्मल गुणों की कथा कहता हूँ। भगवान् के चरणों में सिर रखकर संवत् १६३१ में इस कथा का आरम्भ करता हूँ।

नौमी भौम बार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥
जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं॥

व्याख्या—चैत के महीने में नवमी तिथि मंगलवार को अयोध्या में इस सुन्दर रामचरित्र का बनाना आरम्भ हुआ। जिस दिन श्रीरामजी का जन्म

होता है, वेद कहते हैं कि उस दिन सारे तीर्थ वहाँ ( अयोध्या ) चले आते हैं।

असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा॥
जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल कीरति गाना॥

शब्दार्थ :—खग=पक्षी। सुजान=चतुर। कल=सुन्दर।

व्याख्या :—असुर, नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देवता सब (अयोध्या) आकर श्रीरघुनाथजी की सेवा करते हैं। बुद्धिमान् लोग जन्म का बड़ा भारी उत्सव मनाते हैं और श्रीराम की सुन्दर कीर्ति का गान करते हैं।

दो०—मज्जहिं सज्जन बृंद बहु, पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर, सुंदर स्याम सरीर॥

व्याख्या :—सज्जनों के झुण्ड के झुण्ड सरयू के पवित्र जल में स्नान करते हैं और हृदय में साँवले शरीर वाले श्रीरामजी का ध्यान करें जप करते हैं।

चौ०—दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह वेद पुराना॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकइ सारदा बिमलमति॥

शब्दार्थ :—सरस=दर्शन। परस=स्पर्श। मज्जन=स्नान। पुनीत=पवित्र। अमित=अनन्त।

व्याख्या :—सरयू का दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपान पापों को हरता है—यह वेद-पुराण कहते हैं। यह नदी बड़ी ही पवित्र है और इसकी महिमा अनन्त है, जिसे निर्मल बुद्धिवाली सरस्वतीजी भी नहीं कह सकती।

राम धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति पावनि॥
चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजें तनु नहिं संसारा॥

व्याख्या :—( सरयू के तीर पर ) श्रीराम के परमधाम ( वैकुंठ ) को देनेवाली सुन्दर अयोध्यापुरी है, जो सब लोकों में प्रसिद्ध है और अत्यन्त पवित्र है। संसार में चार खानि (प्रकार) के अनन्त जीव हैं, उनमें से जो कोई भी अयोध्याजी में शरीर छोड़ते हैं, वे फिर संसार में नहीं आते अर्थात् मुक्त हो जाते हैं।

सब बिधि पुरी मनोहर जानी । सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी ।
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा । सुनत नसाहिं काम मद दंभा ॥

व्याख्या :—सब प्रकार से इस अयोध्यापुरी को मनोहर, सब सिद्धियों की देनेवाली और मंगलों की खान समझकर मैंने यहां इस पवित्र कथा का प्रारम्भ किया, जिसके सुनने से काम, अहंकार और अभिमान नष्ट हो जाते हैं ।

## मानस का रूपक और माहात्म्य

रामचरितमानस एहि नामा । सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा ॥
मन करि बिषय अनल बन जरई । होइ सुखी जौं एहि सर परई ॥

व्याख्या :—इसका नाम रामचरित मानस है । इसके सुनने से कानों को शान्ति मिलती है । मनरूपी हाथी विषयरूपी दावानल में जल रहा है, वह यदि इस रामचरितरूपी सरोवर में आ पड़े तो सुखी हो जाय (अर्थात् जैसे वन का हाथी दावानल की तपन से व्याकुल होकर सरोवर में जा पड़ता है और सुखी होता है उसी प्रकार शरीर में मन विषयों की दावाग्नि से व्याकुल हो रहा है, वह तभी सुखी होगा जब रामचरित्र सुनकर इसमें तन्मय हो जाये) ।

विशेष :—रूपक अलंकार ।

रामचरितमानस मुनि भावन । बिरचेउ संभु सुहावन पावन ॥
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन । कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन ॥

व्याख्या :—इस सुहावने और पवित्र रामचरित की शिवजी ने रचना की है । यह मुनियों को अच्छा लगने वाला, तीनों प्रकार के दोष, दुःख और दरिद्रता का दमन करने वाला तथा कलियुग की कुचालों और सब पापों का नाश करने वाला है ।

रचि महेस निज मानस राखा । पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ॥
तातें रामचरितमानस बर । धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर ॥
कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई । सादर सुनहु सुजन मन लाई ॥

व्याख्या :—महादेवजी ने इसे बनाकर अपने ही मानस (मन) में रख लिया था और सुअवसर पाकर पार्वतीजी से कहा । इसी से शिवजी ने इसको अपने हृदय में देखकर और प्रसन्न होकर इसका सुन्दर नाम 'रामचरित मानस'

रक्खा। मैं उसी सुखदायी और सुहावनी कथा को कहता हूँ। हे सज्जनों! आप मन लगाकर आदरपूर्वक इसे सुनिये।

दो०—जस मानस जेहि विधि भयउ, जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब, सुमिरि उमा वृषकेतु ॥३५॥

व्याख्या :—यह रामचरित मानस जैसा है, जिस प्रकार से हुआ और जिस कारण से इसका जगत् में प्रचार हुआ, वही सब प्रसंग अब गौरी-शंकर का स्मरण करके कहता हूँ।

चौ०—संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी ॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी ॥

शब्दार्थ :—प्रसाद=कृपा। हियँ=हृदय। मति=बुद्धि। सुजन=सज्जन।

व्याख्या :— महादेवजी की कृपा से हृदय में सुन्दर बुद्धि का संचार हुआ, जिससे यह तुलसीदास रामचरितमानस का कवि हुआ। अपनी बुद्धि के अनुसार तो मैं इसे मनोहर ही बनाता हूँ, फिर भी हे सज्जनों! इसे सुन्दर चित्त से सुनकर भूलचूक सुधार लेना।

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू ॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी ॥

व्याख्या :—सुन्दर बुद्धि भूमि है, हृदय अगाध स्थल है, वेद-पुराण समुद्र और सतजन बादल हैं। वे (साधुरूपी मेघ) राम-सुयशरूपी जल बरसाते हैं, जो मधुर, मनोहर और मंगलकारी हैं।

विशेष :—रूपक एव अनुप्रास की छटा दर्शनीय है।

लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी ॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई ॥

व्याख्या :—सगुण लीला का विस्तारपूर्वक वर्णन ही जल की स्वच्छता है, जो मल का नाश करती है। जिसका वर्णन नहीं हो सकता ऐसा प्रेम और भक्ति ही जल की मधुरता और शीतलता है।

सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई ॥
मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन ॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना ॥

शब्दार्थ :—सालि=धान । मेधा=बुद्धि । महि=पृथ्वी । सकिलि=सिमट कर । श्रवन=कान । थिराना = स्थिर । चिराना=पुराना ।

व्याख्या :—वह (राम-सुयशरूपी जल) सत्कर्म रूपी धान के लिए हितकारी है और श्रीराम के भक्तों का तो जीवन ही है । वह पवित्र जल बुद्धिरूपी पृथ्वी पर गिरा और सिमटकर सुहावने श्रवण मार्ग से चला और हृदयरूपी श्रेष्ठ स्थान में भरकर वहीं स्थिर हो गया । वही पुराना होकर सुन्दर, सुखद, शीतल और रुचिकर हुआ ।

विशेष : रूपक अलंकार ।

दो०—सुठि सुन्दर संवाद वर, विरचे बुद्धि विचारि ।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि ॥३६॥

व्याख्या :—बुद्धि के विचार से जो अति सुन्दर और उत्तम चार संवाद (शिव-पार्वती, कागभुशुण्डि-गरुड़, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और तुलसीदास तथा सन्तों के) रचे गये है, वही इस पवित्र और सुन्दर सरोवर के चार मनोहर घाट हैं ।

चौ०—सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना । ग्यान नयन निरखत मन माना ॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा । बरनब सोइ बर बारि अगाधा ॥

व्याख्या :—सात काण्ड ही इस मानस सरोवर की सुन्दर सीढ़ियाँ हैं, जिनको ज्ञान के नेत्रों से देखते ही मन हरा-भरा हो जाता है । श्रीरामजी की निर्गुण (गुणातीत) और निर्बाध (असीम) महिमा का जो वर्णन किया जायगा, वही इस सुन्दर जल की अथाह गहराई है ।

राम सीय जस सलिल सुधासम । उपमा बीचि बिलास मनोरम ॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई । जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई ॥

शब्दार्थ :—जस=यश । सुधासम=अमृत के समान । बीचि=तरंग । पुरइनि=कमलिनी । चारु=सुन्दर । जुगुति=युक्ति । मंजु=सुन्दर ।

व्याख्या :—श्रीसीताराम का यश ही अमृत के समाने जल है और (इसमें दी गयी) उपमायें ही तरंगों का मनोहर विलास है । सुन्दर चौपाइयाँ ही घनी फैली हुयीं कमल की बेलें हैं और कविता की युक्तियाँ सुन्दर मोती उत्पन्नकरने वाली सुहावनी सीपियाँ हैं ।

विशेष :—उपमा एवम् रूपक अलंकार ।

छन्द सोरठा सुन्दर दोहा । सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा ॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा । सोइ पराग मकरंद सुबासा ॥

व्याख्या :—सुन्दर छन्द, सोरठे और दोहे ही बहुत से रंगों के कमलों का समूह हैं । अनुपम अर्थ, सुन्दर भाव और उत्तम भाषा ही (क्रमशः) पराग (पुष्परज), मकरन्द (पुष्परस) और सुगन्ध हैं ।

विशेष :—क्रम अलंकार ।

सुकृत पुंज मंजुल अलि माला । ग्यान बिराग बिचार मराला ॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती । मीन मनोहर ते बहुभाँती ॥

शब्दार्थ : —सुकृत पुंज=सत्कर्मों का समूह । मंजुल = सुन्दर । ग्यान= ज्ञान । बिराग=वैराग्य । मराला=हंस । धुनि=ध्वनि । अवरेब=वक्रोक्ति । मीन=मछली । बहुभाँति=अनेकों प्रकार की ।

व्याख्या :—सत्कर्मों के समूह सुन्दर भौंरों की पंक्तियाँ हैं, ज्ञान, वैराग्य और विचार हंस हैं । कविता की ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण और जाति ही भाँति-भाँति की रंग-बिरंगी मनोहर मछलियाँ हैं ।

अरथ धरम कामादिक चारी । कहब ग्यान बिग्यान बिचारी ॥
नवरस जप तप जोग बिरागा । ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥

व्याख्या :—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—ये चारों, ज्ञान-विज्ञान का विचार-पूर्वक कथन काव्य के नौ रस, जप, तप, योग और वैराग्य—ये सब इस सरोवर के सुन्दर जलचर हैं ।

सुकृती साधु नाम गुन गाना । ते बिचित्र जलबिहग समाना ॥
सन्तसभा चहुँ दिसि अवँराई । श्रद्धा रितु बसन्त सम गाई ॥

व्याख्या :—श्रीराम के नाम और गुणों का गान करने वाले पुण्यात्मा सन्त विचित्र जलपक्षियों के समान हैं । सन्तों की सभा ही चारों ओर आमों की बगीचियाँ हैं और श्रद्धा बसन्त ऋतु के समान कही गयी है ।

भगति निरूपन बिबिध बिधाना । छमा दया दम लता बिताना ॥
सम जम नियम फूल फल ग्याना । हरि पद रति रस बेद बखाना ॥
औरउ कथा अनेक प्रसंगा । तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा ॥

शब्दार्थ :—भगति=भक्ति। विविध विधाना=अनेक प्रकार से। दम=इन्द्रिय-निग्रह। लता-विताना=लताओं के मण्डप। जम=यम—बारह होते हैं यथा—अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, असंग, बुरे काम से लज्जा, असंचय, आस्तिक्य, ब्रह्मचर्य, मौन, धैर्य, क्षमा, अधर्म से भय। रति=प्रेम। सुक=तोता। पिक=कोयल। बिहँग=पक्षी।

व्याख्या :—अनेक प्रकार से भक्ति का निरूपण और क्षमा, दया तथा दम लताओं के मण्डप हैं। शम, यम, नियम ही उनके फूल हैं, ज्ञान फल हैं और भगवान् के चरणों में प्रेम ही उसका (ज्ञानरूपी फल का) सुन्दर रस है ऐसा वेदों ने कहा है। इसमें और भी जो अनेक प्रसंगों की कथाएँ हैं वे ही तोते, कोकिल और रंग-बिरंगे पक्षी हैं।

दो०—पुलक वाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारु।
मालो सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु॥३७॥

व्याख्या :—इस कथा के सुनने से जो रोमाञ्च होता है वही वाटिका, बाग और वन है और जो सुख होता है वह सुन्दर पक्षियों का विहार है। निर्मल मन ही माली है जो प्रेमरूपी जल से सुन्दर नेत्रों द्वारा उनको सींचता है।

चौ०—जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरबर मानस अधिकारी॥

शब्दार्थ :—सँभारे=सावधानी से। ताल=तालाब। सुरबर=श्रेष्ठ देवता।

व्याख्या :—जो मनुष्य सावधानी से इस चरित्र को गाते हैं, वे ही इस सरोवर के चतुर रखवाले हैं, और जो नर-नारी सदा आदर से इसे सुनते हैं, वे ही इस मानस के वास्तविक अधिकारी तथा श्रेष्ठ देवता हैं।

अति खल जे बिषई बग कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय कथा रस नाना॥

व्याख्या :—जो महादुष्ट विषयी बगुले और कौए हैं, वे अभागे इस तालाब के समीप नहीं जाते क्योंकि यहाँ घोंघे, मेढ़क और सेवार के समान अनेक रसीली विषय-कथाएँ नहीं हैं।

तेहि कारन आवत हियँ हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥
आवत एहि सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई॥

व्याख्या :—इसी कारण कामी, कौए और बगुले यहाँ आने में सकुचाते हैं; क्योंकि इस सरोवर तक आने में अनेक कठिनाइयाँ हैं। श्रीराम की कृपा के अभाव में यहाँ नहीं आया जा सकता।

कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला॥
गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥
मन बहु बिषय मोह मद माना। नदीं कुतर्क भयंकर नाना॥

व्याख्या :—कठिन कुसंग ही भयंकर कुमार्ग है तथा उन (कुसंगियों) के वचन ही बाघ, सिंह और सर्प हैं। घर के काम-काज और गृहस्थी के अनेक जंजाल ही बड़े-बड़े दुर्गम पर्वत हैं। मोह, मद और मान ही अनेक बीहड़ वन हैं और नाना भाँति के कुतर्क ही बड़ी दुस्तर सरिताएँ हैं।

दो०—जे श्रद्धा संबल रहित, नहि सन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति, जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ॥३७॥

व्याख्या :—जिनके पास श्रद्धारूपी सफर खर्च नहीं, सन्तों का साथ नहीं और जिन्हें श्रीराम प्रिय नहीं, उनके लिए यह (रामचरित) मानस अत्यन्त अगम हैं (अर्थात्, श्रद्धा, सत्संग और भगवत्प्रेम के बिना कोई इसे नहीं पा सकता)।

विशेष :—'श्रद्धा संबल' में रूपक अलंकार है।

चौ०—जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नींद जुड़ाई होई॥
जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा॥

शब्दार्थ :—जातहि=जाते ही। जोड़ाई=जूड़ाई-ज्वर जड़ता=मूर्खता। उर=हृदय। मज्जन=स्नान।

व्याख्या :—फिर भी कोई कष्ट उठाकर वहाँ (मानसरोवर) तक पहुँच जाय तो वहाँ जाते ही उसे नींद लग जाती है (वह सो जाता है) और भयंकर जाड़ा लगने से हृदय में जड़ता (निर्जीवता) आ जाती है जिससे वह अभागा वहाँ जाकर भी स्नान नहीं कर पाता।

करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवइ समेत अभिमाना॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निन्दा करि ताहि बुझावा॥

व्याख्या :—उससे सरोवर में स्नान और जलपान तो करा नहीं जाता पर वह अभिमान-सहित लौट आता है। फिर यदि कोई उससे (सरोवर के विषय में) पूछने को आता है तो वह (अपने दुर्भाग्य की बात न कहकर) सरोवर की निन्दा करके उसे समझाता है।

सकल विघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही॥
सोइ सादर सर मज्जनु करई। महा घोर त्रयताप न जरई॥

व्याख्या :—जिसे श्रीराम सुन्दर कृपा की दृष्टि से देखते हैं, उसे ये सारे (ऊपर कहे हुए) विघ्न बाधा नहीं देते। वही आदरपूर्वक सरोवर में स्नान करता है और महान् भयानक तीनों (दैहिक, दैविक, भौतिक) तापों से नहीं जलता।

ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह कें राम चरन भल भाऊ॥
जो नहाइ चह एहिं सर भाई। सो सतसंग करउ मन लाई॥

व्याख्या :—जिनकी श्रीराम के चरणों में सुन्दर प्रीति है, वे इस सरोवर को कभी नहीं छोड़ते। हे भाई! जो इस सरोवर में स्नान करना चाहो तो मन लगाकर सत्संग करो।

अस मानस मानस चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥
भयउ हृदयँ आनन्द उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू॥

व्याख्या :—ऐसे (रामचरित रूपी) मानसरोवर को हृदय के नेत्रों से देखकर और इसमें स्नान करने से मुझ कवि की बुद्धि निर्मल हो गयी, हृदय में आनन्द और उत्साह बढ़ा तथा प्रेम और प्रमोद का प्रवाह उमड़ पड़ा।

विशेष :—'मानस' शब्द का दो बार भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग होने के कारण यमक तथा 'मानस चख' में रूपक अलंकार है।

चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो॥
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला॥
नदी पुनीत सुमानस नंदिनि। कलिमल तृन तरु मूल निकंदिनि॥

व्याख्या :—उससे वह सुन्दर कवितारूपी सरिता वह निकली जिसमें श्रीराम का विमल यशरूपी जल भरा है। इसका नाम सरयू है, जो सम्पूर्ण

सुन्दर मंगलों की जड़ है। लोक और वेद का मत इसके दो सुन्दर किनारे हैं। यह पवित्र सरयू नदी मान-सरोवर की कन्या है और कलियुग के पापरूपी तृणों और वृक्षों को जड़ से उखाड़ने वाली है।

दो०—श्रोता त्रिविध समाज पुर, ग्राम नगर दुहुँ कूल।
सन्तसभा अनुपम अवध, सकल सुमंगल मूल॥

व्याख्या :—तीनों—आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी श्रोताओं के समाज ही इस नदी के दोनों किनारों पर बसे हुए पुर, ग्राम और नगर हैं तथा समस्त सुन्दर मंगलों की जड़ सन्तों की सभा ही अनुपम अयोध्या है।

चौ०—रामभगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सुहावन॥

व्याख्याः—सुकीर्तिरूपी सुहावनी सरयूजी रामभक्तिरूपी गंगा में जाकर मिलीं। छोटे भाई लक्ष्मण-सहित श्रीराम के युद्ध का पवित्र यशरूपी सुन्दर महानद सोन भी उसमें आ मिला।

जुग बिच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा॥
त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानि। राम सरूप सिंधु समुहानी॥

व्याख्या :—उन दोनों के बीच में गंगाजी की धारा ऐसी सुहावनी लगती है जैसे ज्ञान और वैराग्य के बीच में भक्ति सुशोभित होती है। ऐसी तीनों तापों को भय दिखाने वाली यह त्रिमुहानी नदी रामस्वरूपरूपी समुद्र की ओर जा रही है।

मानस मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करिही॥
बिच-बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बर बागा॥

व्याख्या :—इसका मूल मानस (श्रीरामचरित्र) है और यह (राम-भक्ति रूपी) गंगाजी में मिली है–इसीसे यह सुनने वाले सन्तों के मन को पवित्र कर देती है। इस कथा के बीच-बीच में जो छोटे-छोटे विचित्र प्रसंग हैं वे ही मानो नदी तट के आसपास के वन और बाग हैं।

विशेष :—उत्प्रेक्षा अलंकार।

उमा महेस बिबाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँति॥
रघुबर जनम अनंद बधाई। भँवर तरंग मनोहरताई॥

व्याख्या :—शिव-पार्वतीजी के विवाह के बराती-रूप नदी में बहुत भाँति के अनगिनती जलचर हैं। श्रीराम के जन्मोत्सव की आनन्द-बधाइयाँ ही इस नदी के भँवर और तरंगों की मनोहरता है।

दो०—बालचरित चहु बंधु के, बनज बिपुल बहुरंग।
नृप रानी परिजन सुकृत, मधुकर बारि बिहंग ॥४०॥

शब्दार्थ :—चहु बन्धु=चारों भाई। बनज=वनज, कमल। सुकृत=पुण्य। मधुकर=भ्रमर। बारि बिहंग=जल-पक्षी।

व्याख्या :—चारों भाइयों के बाल-चरित्र ही (इसमें खिले हुए) रंग-बिरंगे बहुत से कमल हैं तथा राजा-रानी (महाराज दशरथ और उनकी रानियों) और कुटुम्बियों के सत्कर्म ही भ्रमर और जल-पक्षी हैं।

चौ०—सीय स्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका॥

व्याख्या :—सीता-स्वयंवर की जो सुन्दर कथा है, वही इस नदी में सुहावनी छवि छा रही है। अनेकों विचारपूर्ण सुन्दर प्रश्न ही इस नदी की नौकाएँ हैं और उनके विवेक-सहित उत्तर ही चतुर केवट हैं।

सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बर बानी॥

व्याख्या :—इस कथा को सुनने के पश्चात् जो परस्पर विचार-विनिमय होता है, वही इस नदी के किनारे यात्रियों का समाज है। परशुरामजी का क्रोध इस नदी की भयंकर धार है और श्रीराम के श्रेष्ठ वचन ही सुन्दर बँधे हुए घाट हैं।

सानुज राम बिबाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू॥
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं॥

व्याख्या :—छोटे भाइयों-सहित श्रीराम के विवाह का उत्साह ही इस कथा-नदी की कल्याणकारिणी बाढ़ है, जो सभी को सुख देने वाली है। इस कथा के कहने-सुनने से जो प्रसन्न और पुलकित होते हैं वे ही पुण्यात्मा पुरुष हैं, जो प्रसन्नमन से इसमें नहाते हैं।

राम तिलक हित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरे समाजा॥
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी॥

व्याख्या :—श्रीराम के राजतिलक के लिये जो मंगल-साज सजाया गया, वही मानो पर्व के अवसर पर इकट्ठे हुए यात्रियों का समूह है। कैकेयी की कुबुद्धि ही काई है, जिसके फलस्वरूप (रघुकुल पर) बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी।

विशेष :—रूपक एवम् उत्प्रेक्षा अलंकार।

दो०—समन अमित उतपात सब, भरतचरित जपजाग।
कलि अघ खल अवगुन कथन, ते जलमल बग काग॥४१॥

व्याख्या :—रामानुज भरतजी के चरित्र ही सब अनगिनत उत्पातों को शान्त करने वाले जप और यज्ञ हैं। कलियुग के पापों और खलों के अवगुणों के जो वर्णन हैं वे ही जल का मल, बगुले और कौए हैं।

चौ०—कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी॥
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू॥

व्याख्या :—भगवान् की कीर्तिरूपी यह नदी छहों ऋतुओं में सुन्दर रहती है। सभी समय यह परम सुहावनी और अत्यन्त पवित्र है। इसमें वर्णित शिव-पार्वती का विवाह ही हेमन्त ऋतु है और श्रीराम के जन्म का उत्सव सुखद शिशिर ऋतु है।

बरनब राम बिबाह समाजू। सो मुद मंगलमय रितुराजू॥
ग्रीषम दुसह राम बन गवनू। पंथकथा खर आतप पवनू॥

व्याख्या :—श्रीराम के विवाह-समाज का वर्णन ही आनन्द-मंगल से भरी वसन्त ऋतु है। श्रीराम का वनगमन ही असह्य ग्रीष्म ऋतु है और मार्ग की कथा ही कड़ी धूप और लू है।

बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी॥
राम राज सुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥

व्याख्या :—भयंकर राक्षसों से लड़ाई वर्षा ऋतु है, जो देवकुलरूपी धान का सुन्दर कल्याण करने वाली है। श्रीराम के राज्यकाल का जो सुख, विनय और बड़ाई है वही निर्मल, सुखद, सुहावनी शरद् ऋतु है।

सती सिरोमनि सिय गुनगाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥
भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई॥

व्याख्या :—सती-शिरोमणि सीता के गुणों की कथा ही इस अनुपम जल का निर्मल गुण अर्थात् स्वच्छता है। भरतजी का स्वभाव ही जल की शीतलता है, जो सदा एकसी रहती है और जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

दो०—अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परसपर हास।
भायप भलि चहु बंधु की, जल माधुरी सुवास॥४२॥

व्याख्या :—चारो भाइयों का आपस में प्रीति से बोलना, देखना; मिलना और हँसना—यह सुन्दर भाईपना ही इस जल की मधुरता और सुगन्ध है।

चौ०—आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुवारि न थोरी॥
अद्भुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पिआस मनोमल हारी॥

व्याख्या :—मेरी आर्त वाणी, विनय और दीनता ही इस दोषरहित सुन्दर निर्मल जल की हलकाई (हलकापन) है। यह जल बड़ा ही अद्भुत है जो (रामचरित के) सुनते ही गुण करता है और आशा रूपी प्यास को तथा मन के मैल को दूर कर देता है।

राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी॥
भव श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा॥

व्याख्या :—यह जल श्रीराम के प्रति सुन्दर प्रेम को पुष्ट करता है और कलियुग के समस्त पापों तथा मन की ग्लानि को दूर करता है। यह संसार के आवागमन की थकावट को सोखनेवाला, सन्तोष को भी संतोष देने वाला तथा पाप, ताप, दरिद्रता और दोषों को नष्ट करने वाला है।

काम कोह मद मोह नसावन। विमल विवेक विराग बढावन॥
सादर मज्जन पान किए तें। मिटहि पाप परिताप हिए तें॥

व्याख्या :—यह जल काम, क्रोध, अभिमान और मोह का नाशक तथा निर्मल विवेक और वैराग्य का बढ़ाने वाला है। इसमें आदरपूर्वक स्नान करने से तथा इसका पान करने से हृदय के पाप और परिताप मिट जाते हैं।

जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए॥
तृषित निरखि रवि कर भव बारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी॥

व्याख्या :—जिन्होंने इस जल से अपने हृदय को नहीं धोया, उन कायरों को कलियुग ने नष्ट कर दिया। वे जीव उसी तरह दुःखी हो भटकते फिरेंगे जैसे प्यासे मृग सूर्य की किरणों से (भ्रमवश) रेती में जल देख भटकते फिरते हैं।

दो०—मति अनुहारि सुबारि गुन, गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी संकरहि, कह कवि कथा सुहाइ॥४३(क)॥

व्याख्या :—अपनी बुद्धि के अनुसार सुन्दर जल के गुणों का वर्णन करके और उसमें अपने मन को नहलाकर तथा भवानी-शंकर का स्मरण करके कवि (तुलसीदास) इस सुन्दर कथा को कहता है।

## याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद

अब रघुपति पद पंकरुह, हियँ धरि पाइ प्रसाद।
कहउँ जुगल मुनिबर्य कर, मिलन सुभग संवाद॥४३(ख)॥

व्याख्या :—अब श्री रघुनाथजी के चरणकमलों को हृदय में धारणकर और उनका प्रसाद पाकर दोनों श्रेष्ठ मुनियों के सुन्दर मिलन और संवाद का वर्णन करता हूँ।

विशेष :—'पद-पकजरुह' में रूपक अलकार है।

चौ०—भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहि राम पद अति अनुरागा॥
तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना॥

व्याख्या :—भरद्वाज मुनि प्रयाग में रहते हैं, उनका श्रीराम के चरणो में बहुत अधिक प्रेम है। वे तपस्वी निगृहीतचित्त, जितेन्द्रिय, दया-निधान और परमार्थ के पथ (कार्य) में बड़े ही चतुर हैं।

माघ मकरगत रवि जब होई। तीरथपतिहिं आव सब कोई॥
देव दनुज किंनर नर श्रेनीं। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं॥

व्याख्या :—माघ-माह में जब सूर्य मकरराशि पर होता है तब सब लोग तीर्थराज प्रयाग में आते हैं। देवताओं, दानवों, किन्नरों और मनुष्यों के समूह सब श्रद्धापूर्वक त्रिवेणी में स्नान करते हैं।

विशेष :—राशियाँ बारह हैं। उनमें से प्रत्येक राशि पर सूर्य एक-एक माह रहता है। राशियों के नाम ये हैं--मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ और मीन।

पूजहिं माधव पद जलजाता। परसि अखय बटु हरषहिं गाता॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिवर मन भावन॥

व्याख्या :--( भक्तजन ) श्री वेणीमाधवजी के चरणकमलों की पूजा करते हैं और अक्षयवट का स्पर्श कर उनके शरीर पुलकित होते हैं। वहाँ भरद्वाज मुनि का आश्रम वहुत ही पवित्र, परम रमणीय और श्रेष्ठ मुनियों के मन को लुभानेवाला है।

तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथ राजा॥
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परसपर हरि गुन गाहा॥

व्याख्या :—वहाँ ( भरद्वाज मुनि के आश्रम में ) उन ऋषियों और मुनियों का जमाव होता है जो तीर्थराज प्रयाग में स्नान करने जाते हैं। वे सब प्रातःकाल उत्साहपूर्वक स्नान करते हैं और फिर परस्पर भगवान् के गुणों की कथाएँ कहते हैं।

दो०—ब्रह्म निरूपन धरम बिधि, बरनहिं तत्व विभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै, संजुत ग्यान बिराग॥४४॥

व्याख्या :—वे ब्रह्म का विचार, धर्म के विधान और तत्वों के भेद का वर्णन करते हैं तथा ज्ञान और वैराग्य से युक्त भगवान् की भक्ति का वखान करते हैं।

चौ०—एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज-निज आश्रम जाहीं॥
प्रति संवत अति होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा॥

व्याख्या :—इस प्रकार माघ के महीने भर स्नान करते हैं और फिर सब अपने-अपने आश्रमों को लौट जाते हैं। प्रतिवर्ष वहाँ इसी तरह बड़ा आनन्द होता है और मुनिगण मकर नहाकर चले जाते हैं।

एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए॥
जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी॥

व्याख्या :—एक बार मकर भर नहाकर सब मुनीश्वर तो अपने-अपने आश्रमों को लौट गये परन्तु भरद्वाज जी ने परमज्ञानी याज्ञवल्क्य मुनि को चरण पकड़कर ठहरा लिया (सानुरोध रोक लिया)।

सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे॥
करि पूजा मुनि सुजस बखानी। बोले अति पुनीत मृदुबानी॥

व्याख्या :—आदरपूर्वक उनके चरणकमल धोये और उनको बड़े ही पवित्र आसन पर बैठाया। पूजा करके मुनि याज्ञवल्क्यजी के सुन्दर यश का वर्णन किया और फिर अत्यन्त पवित्र (निष्कपट) कोमलवाणी से बोले कि—

नाथ एक संसउ बड़ मोरें। करगत बेदतत्व सबु तोरें॥
कहत सो मोहि लागत भय लाजा। जौं न कहउँ बड़ होइ अकाजा॥

व्याख्या :—हे नाथ! मुझे एक बड़ा भारी सन्देह है; वेदों का तत्त्व सब आपकी मुट्ठी में है (अर्थात् कोई ऐसी बात नहीं जो आपसे छिपी हो, इसी कारण आप मेरे सन्देह का निवारण कर सकते हैं)। पर उस सन्देह को कहते हुए मुझे भय और लाज आती है (भय इसलिए कि कहीं आप यह न समझें कि मेरी परीक्षा ले रहा है और लाज इसलिए कि इतनी अवस्था होने होने पर भी, अब तक ज्ञान नहीं हुआ) और जो नहीं कहता तो बड़ी हानि होती है (क्योंकि अज्ञानी बना रहता हूँ)।

दो०—संत कहहिं असि नीति प्रभु, श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न बिमल बिवेक उर, गुर सन किएँ दुराव॥४५॥

व्याख्या :—हे स्वामी! संतलोग ऐसी नीति कहते हैं और वेद, पुराण तथा मुनिजन भी यही बतलाते हैं कि गुरु के साथ छिपाव करने से हृदय में निर्मल ज्ञान नहीं होता।

चौ०—अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू। हरहू नाथ करि जन पर छोहू॥
राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा॥

व्याख्या :—यही सोचकर मैं अपना अज्ञान (आपके समक्ष) प्रकट करता हूँ सो हे नाथ! दास पर कृपा करके उसे दूर कीजिये। श्रीराम के नाम का असीम प्रभाव है, यह संत, पुराण और उपनिषदों ने कहा है।

संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी॥
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं॥

व्याख्या :—मंगलकारी, ज्ञान और गुणों की राशि, अविनाशी भगवान् शम्भु उस नाम का सदा जप करते रहते हैं और संसार में जो चार जाति के जीव हैं उनमें से जो काशी में मरते हैं, वे सभी मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेसु करत करि दाया॥
रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही॥

व्याख्या :—सो हे मुनिराज ! वह भी राम (नाम) की ही महिमा है, जिसका उपदेश दया करके शिवजी करते हैं (अर्थात् शिवजी काशी में मरने वाले जीव को रामनाम का ही उपदेश देते हैं और इसी नाम के प्रभाव से जीव को मोक्ष भी मिलता है)। हे प्रभु ! (इसलिये) मैं आपसे पूछता हूँ कि वे राम कौन हैं ? हे दयानिधान ! मुझे समझाकर कहिये।

एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयेउ रोषु रन रावनु मारा॥

व्याख्या :—एक राम तो अवध के नरेश दशरथजी के पुत्र हैं, जिनका चरित्र सारा संसार जानता है। उन्होंने स्त्री के विरह में अपार दुःख सहा और क्रोध आने पर रावण को मार डाला।

दो०—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह, कहहु बिबेकु बिचारि॥४६॥

व्याख्या :—हे प्रभो ! महादेवजी जिनका जप करते हैं वे ये ही (दशरथ-पुत्र) राम हैं या कि कोई दूसरे हैं ? आप सत्य के धाम और सर्वज्ञ है, सो ज्ञान से विचारकर कहिये।

चौ०—जैसें मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी॥
जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई॥

व्याख्या :—हे स्वामी ! जिससे मेरा यह भारी भ्रम मिट जाय, आप उसी कथा को विस्तारपूर्वक कहिये। यह सुनकर याज्ञवल्क्यजी मुस्कराकर बोले कि श्रीराम की प्रभुता को तुम जानते हो।

रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी । चतुराई तुम्हारि मैं जानी ॥
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा । कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा ॥

व्याख्या :—(हे भरद्वाज !) तुम मन, कर्म और वाणी से श्रीराम के भक्त हो । तुम्हारी चतुराई को मैं जान गया हूँ कि तुम श्रीराम के रहस्यमय गुणों को सुनना चाहते हो; इसी से तुमने ऐसा प्रश्न किया है मानो तुम बड़े ही अज्ञानी हो ।

विशेष :—उत्प्रेक्षा अलंकार ।

तात सुनहु सादर मनु लाई । कहउँ राम कै कथा सुहाई ॥
महामोहु महिषेसु बिसाला । रामकथा कालिका कराला ॥

व्याख्या :—हे तात ! तुम मन लगाकर आदरपूर्वक सुनो । मैं श्रीराम जी की सुन्दर कथा कहता हूँ । बड़ा भारी अज्ञान विशाल (दैत्य) महिषासुर है और श्रीराम की कथा (उसका नाश कर देने वाली) भयंकर कालीजी हैं ।

विशेष :—रूपक अलकार ।

रामकथा ससि किरन समाना । संत चकोर करहिं जेहि पाना ॥
ऐसेइ सँसय कीन्ह भवानी । महादेव तब कहा बखानी ॥

व्याख्या :—श्रीराम की कथा चन्द्रमा की (शीतल) किरणों के समान है, जिसका संतरूपी चकोर निरन्तर पान करते रहते हैं । ऐसा ही सन्देह पार्वतीजी ने किया था, तब शिवजी ने विस्तार से उसका उत्तर दिया था ।

विशेष :—उपमा एवं रूपक अलंकार ।

दो०—कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संवाद ।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद ॥४७॥

व्याख्या :—उसी शिव-पार्वती के संवाद को अब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ । वह संवाद जिम समय और जिस हेतु से हुआ, उसे हे मुनि ! तुम सुनो, इससे तुम्हारा विषाद मिट जायेगा ।

चौ०—एक बार त्रेता जुग माहीं । संभु गए कुंभज रिषि पाहीं ॥
संग सती जग जननी भवानी । पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी ॥

व्याख्या :—एक बार त्रेतायुग में शिवजी अगस्त्य ऋषि के पास गये ।

उनके साथ जगत् की माता, भवानी सतीजी भी थी। ऋषि ने सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर जानकर उनका पूजन किया।

रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी॥
रिषि पूछी हरि भगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाइ॥

व्याख्या :—मुनिवर अगस्त्यजी ने रामकथा का वर्णन किया जिसे सुनकर महादेवजी ने परम सुख माना। फिर ऋषि ने शिवजी से सुन्दर हरि भक्ति के विषय में पूछा और शिवजी ने उनको अधिकारी पाकर (जानकर) भक्ति का निरूपण किया।

कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥
मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी। चले भवन संग दच्छकुमारी॥

व्याख्या :—इस प्रकार श्रीरघुनाथजी के गुणों की कथाएँ कहते-सुनते कुछ दिनों तक शिवाजी वहाँ रहे। फिर मुनि से बिदा माँगकर शिवजी दक्ष-कुमारी पार्वतीजी के साथ घर (कैलाश) को चले।

तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥
पिता बचन तजि राजु उदासी। दंडक बन बिचरत अविनासी॥

व्याख्या :—उन्हीं दिनों पृथ्वी का भार उतारने के लिये भगवान् ने रघु के वंश में अवतार लिया और पिता से वचन से राज छोड़, अविनाशी भगवान् श्रीराम तपस्वी-वेश में दण्डक वन में विचर रहे थे।

दो०—हृदयँ बिचारत जात हर, केहि बिधि दरसनु होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गएँ जान सबु कोइ॥४८॥ (क)

व्याख्या :—इधर शिवजी हृदय में विचारते जा रहे थे कि भगवान् के दर्शन मुझे किस प्रकार हों। प्रभु ने गुप्तरूप से अवतार लिया है; संमुख जाने से यह भेद सब लोग जान जायेंगे।

सो०—संकर उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ।
तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची॥४८॥ (ख)

व्याख्या :—शंकरजी के हृदय में इस बात को लेकर बड़ी खलबली उत्पन्न हो गयी, परन्तु सतीजी इस भेद को नहीं जानती थीं। तुलसीदासजी

कहते हैं कि दर्शन के लोभ से उनके नेत्र ललचा रहे थे पर मन में (भेद खुलने का) भय था।

चौ०—रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा॥
जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा। करत बिचारु न बनत बनावा॥

व्याख्या :—रावण ने अपना मरना मनुष्य के हाथ से माँग रखा था और भगवान् ब्रह्मा के वचनों को सत्य करना चाहते हैं (इसी हेतु नर-रूप धारण किया है)। जो प्रभु के दर्शन के लिए नहीं जाता हूँ तो बड़ा पछतावा रह जायेगा (और जाने का अवसर नहीं)। इस प्रकार शिवजी विचार करते थे, परन्तु कोई भी उक्ति ठीक नहीं बैठती थी।

एहि बिधि भए सोचबस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सोइ कपटकुरंगा॥

व्याख्या :—इस प्रकार शिवजी चिन्तामग्न हो गये। उस समय रावण ने जाकर नीच मारीच को साथ लिया जो छल से उसी समय हिरण बन गया।

करि छलु मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही॥
मृग बधि बंधु सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जल छाए॥

व्याख्या :—तब मूर्ख रावण ने छल करके सीताजी को हर लिया। उसे श्रीराम के वास्तविक प्रताप का कुछ भी ज्ञान नहीं था। हिरण को मारकर श्रीराम भाई लक्ष्मण-सहित आश्रम में आये और उसे सूना देखकर उनके नेत्रों में जल भर आया।

बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥
कबहूँ जोग बियोग न जाकें। देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें॥

व्याख्या :—श्रीरघुनाथजी मनुष्य के समान विरह से व्याकुल हो गये और दोनों भाई वन में सीताजी को ढूँढते हुए फिरने लगे। जिनके कभी संयोग और वियोग नहीं है, उन (भगवान श्रीराम) का विरह-दुःख प्रकट देखने में आया।

दो०—अति बिचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद बिमोह बस, हृदयँ धरहिं कछु आन॥४९॥

व्याख्या :—श्रीरघुनाथजी का चरित्र बड़ा ही विचित्र है। उसे बड़े-बड़े ज्ञानी ही जानते हैं, पर जो मंदबुद्धि हैं वे अज्ञान के वश हृदय में कुछ और ही समझते हैं (अर्थात् उन्हें सचमुच दुःखी-सुखी समझ लेते हैं)।

## सती को भ्रम

चौ०—संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा॥
भरि लोचन छबिसिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी॥

व्याख्या :—उसी समय शिवजी ने श्रीराम के दर्शन किये जिससे उनके हृदय में बड़ा ही आनन्द उत्पन्न हुआ। उन शोभा के समुद्र श्रीराम को शिवजी ने नेत्र भरकर देखा, परन्तु कुसमय जानकर उनसे परिचय नहीं किया।

जय सच्चिदानद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥

व्याख्या :—हे सच्चिदानंद, हे जगत् के पवित्र करने वाले, आपकी जय हो, इस प्रकार कहकर कामदेव के नाशक शिवजी चल पड़े। कृपानिधान शिवजी बार-बार आनन्द से पुलकित होते हुए सती के संग चले जा रहे थे।

सतीं सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी॥
संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥

व्याख्या :—सतीजी ने जब शकर की यह दशा देखी तो उनके मन में बड़ा सन्देह उत्पन्न हो गया। (वे मन ही मन सोचने लगी कि) ससार के वन्दनीय तथा जगत् के स्वामी शिवजी को तो सुर, नर, मुनि सब सिर नवाते हैं।

तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी॥

व्याख्या :—उन्होंने एक राजपुत्र को सच्चिदानन्द परब्रह्म कहकर प्रणाम किया और उसकी शोभा देखकर वे इतने प्रेममग्न हो गये कि अब तक प्रीति उनके हृदय में रोकी नहीं रुकती।

दो०—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत बेद॥५०॥

व्याख्या :—जो ब्रह्म सबमें व्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, चेष्टारहित और अखण्ड है और जिसको वेद भी नहीं जानते, वह क्या देह धारण करके मनुष्य हो सकता है?

चौ०—बिष्नु जो सुर हित नरतनुधारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी॥

व्याख्या :—देवताओं के हित के लिए भगवान् विष्णु ने मनुष्य का शरीर धारण किया है वे भी शिवजी की भाँति ही सर्वज्ञ हैं। सो क्या वे भी लक्ष्मी के स्वामी, ज्ञान के धाम और असुरों के शत्रु विष्णु अज्ञानी की तरह नारी को ढूँढ़ते फिरते हैं ?

संभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्बग्य जान सबु कोई॥
अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा॥

व्याख्या :—फिर शिवजी के वचन भी असत्य नहीं हो सकते क्योंकि सब जानते हैं कि शिवजी सर्वज्ञ हैं। इस प्रकार सती के मन में अपार सन्देह उठ खड़ा हुआ और हृदय में किसी भाँति ज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं हुआ।

जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी॥
सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ उर काऊ॥

व्याख्या :—यद्यपि पार्वतीजी ने प्रकट में कुछ नहीं कहा, पर अन्तर्यामी शिवजी सब जान गये। वे बोले हे सती ! सुनो, तुम्हारा स्त्री स्वभाव है। मन में कभी ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिये।

जासु कथा कुंभज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥

व्याख्या :—जिनकी कथा का अगस्त्य ऋषि ने गान किया और जिनकी भक्ति मैंने मुनि को सुनायी, ये वही मेरे इष्टदेव श्रीराम हैं, जिनकी सेवा ज्ञानी मुनि सर्वदा किया करते हैं।

छं०—मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ रामु ब्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनि॥

व्याख्या :—ज्ञानी, मुनि, योगी और सिद्ध शुद्ध हृदय से जिनक निरन्तर ध्यान करते हैं तथा वेद, पुराण और शास्त्र जिनकी कीर्ति को नेति नेति कहकर गाते हैं, उन्हीं सब (चराचर) में व्यापक, परब्रह्म, समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी, मायापति, नित्य परम स्वतन्त्र भगवान् श्रीराम ने अपने भक्तों के हित के लिए रघुकुल के मणिरूप में अवतार लिया है।

सो०—लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु ।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ ॥५१॥

व्याख्या :—यद्यपि शिवजी ने बहुत बार समझाया, फिर भी सती के हृदय में उनका उपदेश नहीं लगा । तब शिवजी मन में भगवान् की माया की प्रबलता जानकर मुस्कराते हुए बोले—

चौ०—जौं तुम्हरें मन अति संदेहू । तौ किन जाइ परीछा लेहू ॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं । जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं ॥

व्याख्या :—जो तुम्हारे मन में बहुत सन्देह है तो तुम जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेतीं ? जब तक तुम मेरे पास लौटकर आओगी तब तक मैं इसी बड़ की छाया में बैठा रहूँगा ।

जैसें जाइ मोह भ्रम भारी । करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी ॥
चलीं सती सिव आयसु पाई । करहिं बिचारु करौं का भाई ॥

व्याख्या :—जिस भाँति तुम्हारा यह भारी मोह और भ्रम दूर हो, वही यत्न तुम विवेक से सोच-समझकर करो । शिवजी की आज्ञा पाकर सती चलीं और विचार करने लगीं कि हे भाई ! क्या करूँ (कैसे परीक्षा लूँ) ?

इहाँ संभु अस मन अनुमाना । दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना ॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं । बिधि बिपरीत भलाई नाहीं ॥

व्याख्या :—यहाँ शिवजी ने मन में यह अनुमान किया कि अब दक्ष-कन्या सती का कल्याण नहीं है (इनके पीछे प्रभु की माया लगी है सो बिना दण्ड दिये इन्हें नहीं छोड़ेगी) । जब मेरे समझाने से भी सन्देह दूर नहीं हुआ, तब मालूम होता है—प्रारब्ध ही उलटा है और कुछ भलाई नहीं दीखती ।

होइहि सोइ जो राम रचि राखा । को करि तर्क बढ़ावै साखा ॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा । गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा ॥

व्याख्या :—होगा वही, जो कुछ श्रीराम ने रच रक्खा है । फिर तर्क करके बात में बात शाखा) कौन निकाले । ऐसा कहकर शिवजी तो राम-नाम जपने लगे और सतीजी वहाँ गयीं जहाँ सुख के धाम प्रभु श्रीराम (विराजमान) थे ।

दो०—पुनि पुनि हृदयँ विचारु करि, धरि सीता कर रूप ।
आगें होइ चलि पंथ तेहिं, जेहिं आवत नरभूप ॥५२॥

व्याख्या :—बार-बार हृदय में विचारकर और सीताजी का रूप धारण करके सती उस मार्ग की ओर आगे होकर चलीं जिससे मनुष्यों के राजा

श्रीराम आ रहे थे ।

चौ०—लछिमन दीख उमाकृत वेषा । चकित भए भ्रम हृदयं विसेषा ॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा । प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा ॥

व्याख्या :—लक्ष्मणजी सती को (सीता के) बनावटी भेष में देखकर चकित हो गये और उनके हृदय में बड़ा भ्रम हो गया । वे कुछ कह नहीं सके और बहुत गम्भीर हो गये क्योंकि धीर बुद्धि लक्ष्मण प्रभु श्रीराम के प्रभाव को जानते थे ।

सती कपटु जानेउ सुरस्वामी । सबदरसी सब अंतरजामी ॥
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना । सोइ सरबग्य रामु भगवाना ॥

व्याख्या :—देवताओं के स्वामी श्रीराम ने सती के कपट को जान लिया क्योंकि वे सब कुछ देखने वाले और सबके हृदय को जानने वाले हैं । जिनके स्मरणमात्र से अज्ञान का नाश हो जाता है, वे ही सर्वज्ञ भगवान श्रीराम हैं ।

सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ । देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ ॥
निज माया बलु हृदयँ बखानी । बोले बिहसि रामु मृदु बानी ॥

व्याख्या—पर सतीजी वहाँ (उन सर्वज्ञ भगवान् के सामने) भी छिपाव करना चाहती हैं, स्त्री के स्वभाव का प्रभाव तो देखो ! अपनी माया के बल को हृदय में स्मरणकर श्रीराम हँसकर कोमल वाणी से बोले—

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू । पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥
कहेउ बहोरि कहाँ भृपकेतू । बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥

व्याख्या :—पहले प्रभु ने हाथ जोड़कर सती को प्रणाम किया और पिता-सहित अपना नाम बताया । फिर कहा कि वृषकेतु महादेवजी कहाँ हैं ? आप यहाँ वन में अकेली किसलिए फिर रही हैं ?

दो०—राम वचन मृदु गूढ़ सुनि, उपजा अति सकोचु ।
सती सभीत महेस पहिं, चली हृदयँ बड़ सोचु ॥५३॥

व्याख्या :—श्रीराम के कोमल और गूढ़ वचन सुनकर सती को बड़ा संकोच हुआ और वे डरती हुयी (चुपचाप) महादेवजी के पास चलीं, पर उनके हृदय में बड़ा सोच था ।

चौ०—मैं संकर कर कहा न माना । निज अग्यानु राम पर आना ॥
जाइ उतरु अब देहउँ काहा । उर उपजा अति दारुन दाहा ॥

व्याख्या :—मैंने शिवजी का कहना नहीं माना और अपना अज्ञान श्रीराम पर प्रकट किया। अब जाकर उनको क्या उत्तर दूँगी? यों सोचते-सोचते सतीजी के हृदय में अत्यन्त भयानक जलन पैदा हो गयी।

जाना राम सतीं दुखु पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा ॥
सतीं दीख कौतुकु मग जाता। आगें रामु सहित श्रीभ्राता ॥

व्याख्या :—श्रीराम ने जान लिया कि सती को दुःख हुआ, तब उन्होंने अपना कुछ प्रभाव प्रकट करके दिखाया। सतीजी ने मार्ग में जाते हुए एक कौतुक देखा कि श्रीराम सीताजी और लक्ष्मण सहित आगे चले जा रहे हैं।

फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुन्दर वेषा ॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना ॥

व्याख्या :—फिर पीछे फिरकर देखा तो वहाँ भी प्रभु श्रीराम को भाई और सीता-सहित सुन्दर वेष में देखा। वे जिधर देखती हैं उधर ही प्रभु श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं और सुचतुर सिद्ध-मुनीश्वर उनकी सेवा कर रहे हैं।

देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका ॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा ॥

व्याख्या :—सतीजी ने अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु देखे जो एक से एक बढ़कर असीम प्रभाव वाले थे। वे भगवान् के चरणों की वन्दना और सेवा कर रहे थे। इसके अतिरिक्त सती ने सभी देवताओं को नाना भाँति के वेष में देखा।

दो०—सती बिधात्री इन्दिरा, देखीं अमित अनूप।
जेहिं जेहिं बेष अजादि सुर, तेहि तेहि तन अनुरूप ॥५४॥

व्याख्या :—(फिर सतीजी ने) असंख्य अनुपम रूपों में सती, ब्रह्माणी और लक्ष्मीजी को देखा। जिस-जिस रूप में ब्रह्मादि देवता थे उसी रूप के अनुसार वे (उनकी शक्तियाँ) भी थीं।

चौ०—देखे जहँ तहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते।
जीव चराचर जो संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा ॥

व्याख्या :—सतीजी ने जहाँ-जहाँ जितने रामचन्द्रजी देखे वहाँ उतने ही सब देवता अपनी-अपनी शक्तियों सहित देखे। संसार में जो चर और अचर जीव हैं, वे भी अनेक प्रकार के सब देखे।

पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा । राम रूप दूसर नहिं देखा ॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे । सीता सहित न बेष घनेरे ॥

व्याख्या ।—देवता अनेक वेष धारण करके प्रभु श्रीराम की पूजा कर रहे थे, पर रामजी का दूसरा रूप नहीं देखा (अर्थात् श्रीराम उसी एक रूप में थे जबकि देवता लोग भाँति-भाँति के वेष बनाकर भगवान् की पूजा कर रहे थे) । सीता-सहित श्रीराम बहुत-से देखे, परन्तु उनके वेष अनेक नहीं थे ।

सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता । देखि सती अति भईं सभीता ॥
हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं । नयन मूदि बैठीं मग माहीं ॥

व्याख्या :—(सब जगह) वे ही राम, वे ही लक्ष्मण और वे ही सीताजी–सतीजी ऐसा देखकर बहुत ही डर गयीं । उनका हृदय काँपने लगा, शरीर की कुछ सुध न रही । वे आँख बन्द करके रास्ते में बैठ गयीं ।

बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी । कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी ॥
पुनि-पुनि नाइ राम पद सीसा । चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा ॥

व्याख्या :—फिर जब आँखें खोलकर देखा तो वहाँ दक्षकुमारी सती को कुछ भी दिखायी नहीं दिया । तब वे बार-बार श्रीराम के चरणों में सिर नवाकर वहाँ चली, जहाँ शिवजी थे ।

दो०—गईं समीप महेस तब, हँसि पूछी कुसलात ।
लीन्हि परीछा कवन बिधि, कहहु सत्य सब बात ॥५५॥

व्याख्या :—जब सतीजी शिवजी के पास पहुँची तो उन्होंने हँसकर सती की कुशल पूछी और कहा कि तुमने श्रीराम की परीक्षा किस प्रकार ली, सारी बात सच-सच कहो ।

## शिवजी द्वारा सती का त्याग

चौ०—सतीं समुझि रघुबीर प्रभाऊ । भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ ॥
कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं । कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं ॥

व्याख्या :—श्रीराम के प्रभाव को समझकर सती ने डर के मारे शिवजी से छिपाव किया और कहा कि, हे स्वामी ! मैंने कुछ भी परीक्षा नहीं ली, (वहाँ जाकर मैंने) आपकी ही तरह (भगवान् श्रीराम को) प्रणाम किया ।

जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई। मोरें मन प्रतीति अति सोई।
तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना॥

व्याख्या :—आपने जो कहा वह असत्य नहीं हो सकता, मेरे मन में ऐसा पूर्ण विश्वास है। यह सुनकर शिवजी ने ध्यान धरकर देखा और सतीजी ने जो चरित्र किया था सो सब जान लिया।

बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा॥
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना॥

व्याख्या :—फिर उन्होंने श्रीराम की माया को सिर नवाया, जिसने प्रेरणा करके सती के मुँह से भी झूठ कहलवा दिया। सुजान शिवजी हृदय में विचार करने लगे कि हरि-इच्छा (अर्थात् भगवान् की इच्छा से ही यह सब कुछ होता है) रूपी भावी बड़ी बलवान् है (अर्थात् जो कुछ होना होता है वह होकर ही रहता है)।

सतीं कीन्ह सीता कर बेषा। सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा॥
जौं अब करउँ सतीसन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती॥

व्याख्या :—सती ने सीता का वेष धारण किया, इस कारण शिवजी ने हृदय में बड़ा दुःख पाया। ( वे विचार करने लगे कि ) जो अब सती से मैं प्रेम करता हूँ तो भक्ति का मार्ग ही मिटा जाता है और बड़ा अन्याय होता है।

दो०—परम पुनीत न जाइ तजि, किएँ प्रेम बड़ पापु।
प्रगटि न कहत महेसु कछु, हृदयँ अधिक संतापु॥५६॥

व्याख्या :—सती परम पवित्र है इसीलिये इन्हें छोड़ते भी नहीं बनता और प्रेम करने से बड़ा पाप होता है। शिवजी ने प्रकट में (वाणी से) कुछ भी नहीं कहा परन्तु उनके हृदय में बड़ा संताप हुआ।

चौ०—तब संकर प्रभु पद सिरु नावा। सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा।
एहिं तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं॥

व्याख्या :—तब शिवजी ने प्रभु श्रीराम के चरणों में सिर नवाया और श्रीरामजी का स्मरण करते ही उनके मन में यह आया कि इस देह से मेरी (पति-पत्नी रूप में) सती से भेंट नहीं हो सकती। शिवजी ने अपने मन में यही संकल्प कर लिया।

अस बिचारि संकरु मतिधीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा॥
चलत गगन भै गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढ़ाई॥

व्याख्या :—स्थिरमति शिवजी ऐसा विचारकर श्रीराम का स्मरण करते हुए अपने घर कैलाश को चले। चलते समय सुन्दर आकाशवाणी हुयी कि हे शंकर, आपकी जय हो! आपने भक्ति को खूब दृढ़ किया।

अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। राम भगत समरथ भगवाना॥
सुनि नभगिरा सती उर सोचा। पूछा सिवहि समेत सकोचा॥

व्याख्या :—ऐसा प्रण आपको छोड़कर और दूसरा कौन कर सकता है? भगवन्! आप श्रीराम के भक्त और समर्थ हैं। इस आकाशवाणी को सुनकर सतीजी के मन में चिन्ता हुयी और उन्होंने सकुचाते हुए शिवजी से पूछा—

कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीनदयाला॥
जदपि सतीं पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती॥

व्याख्या :—हे दयालु! आपने कौनसा प्रण किया है, सो कहिए? हे प्रभु! आप सत्य के धाम और दीनों पर दया करने वाले हैं। यद्यपि सतीजी ने अनेक प्रकार से पूछा तो भी त्रिपुरारि शिवजी ने कुछ नहीं कहा।

दो०—सतीं हृदयँ अनुमान किय, सबु जानेउ सर्बग्य।
कीन्ह कपटु मैं संभु सन, नारि सहज जड़ अग्य॥५७॥ (क)

व्याख्या :—सतीजी ने (शिवजी से कोई उत्तर न पाकर) अपने हृदय में अनुमान लगाया कि प्रभु सर्वज्ञ है और उन्होंने (जो कुछ मैंने किया था) सब जान लिया है। मैंने शिवजी से कपट किया (यह कोई बड़ी बात नहीं क्योंकि) स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख और अज्ञान होती है।

सो०—जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि॥
बिलग होइ रसु जाइ, कपट खटाई परत पुनि॥५७॥ (ख)

व्याख्या :—प्रीति की इस सुन्दर रीति को तो देखिये कि जल भी (दूध के समान भाव बिकता है, परन्तु फिर कपटरूपी खटाई पड़ते ही पानी अलग हो जाता है (दूध फट जाता है) और स्वाद (प्रेम) जाता रहता है।

विशेष :—'कपट-खटाई' में रूपक अलकार है।

चौ०—हृदयँ सोचु समुझत निज करनी। चिंता अमित जाइ नहि बरनी॥
कृपासिन्धु सिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा॥

व्याख्या :—अपनी ही करनी समझकर सती को हृदय में बहुत दुःख हुआ। उनके मन में इतनी अधिक चिन्ता है कि उसका वर्णन भी नहीं किया जा सकता। (वे अपने मन में सोचने लगीं कि) शिवजी कृपा के परम अथाह समुद्र हैं, इसीसे उन्होंने प्रकट में मुझसे मेरा अपराध नहीं कहा।

संकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदयँ अकुलानी ॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपइ अवाँ इव उर अधिकाई ॥

व्याख्या :—शिवजी का रुख देखकर पार्वतीजी हृदय में बहुत व्याकुल हो उठीं कि स्वामी ने मेरा त्याग कर दिया है। अपना ही पाप समझकर कुछ कहते नहीं बनता, परन्तु हृदय (भीतर-ही-भीतर) कुम्हार के आँवे के समान अत्यन्त जलने लगा।

सतिहि ससोच जानि वृषकेतू। कहीं कथा सुन्दर सुख हेतू ॥
वरनत पंथ विविध इतिहासा। विस्वनाथ पहुँचे कैलासा ॥

व्याख्या :—सती को सोच में जानकर वृषकेतु शिवजी ने उन्हें सुख देने के लिए सुन्दर कथाएँ कहीं। इस प्रकार मार्ग में विविध प्रकार इतिहास कहते हुए संसार के स्वामी शिवजी कैलाश में जा पहुँचे।

तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन। बैठे वट तर करि कमलासन ॥
संकर सहज सरुपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा ॥

व्याख्या :—वहाँ फिर शिवजी अपना प्रण याद करके बड़ के पेड़ के नीचे कमलासन लगाकर बैठ गये। शंकरजी ने अपना स्वाभाविक रूप सँभाला। जिससे उनकी अखण्ड और अपार समाधि लग गयी।

दो०—सती बसहिं कैलास तब, अधिक सोचु मन माहिं।
मरमु न कोऊ जान कछु, जुग सम दिवस सिराहिं ॥५८॥

व्याख्या :—तब सतीजी कैलाश में रहने लगीं पर उनके मन में बड़ा भारी दुःख था। इस रहस्य के विषय में (कि शिवजी ने सती को त्याग दिया है) कोई भी कुछ भी नहीं जानता था। (शिवजी के इस व्यवहार के कारण) सती के दिन युग के समान बीत रहे थे।

चौ०—नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहउँ दुख सागर पारा ॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पतिबचनु मृषा करि जाना ॥

व्याख्या :—नित्य नया सोच होने से सती का हृदय भारी हो गया।

(वे सोचने लगीं कि) मैं इस दुःख-समुद्र के पार कब जाऊँगी। मैंने जो श्रीराम का अपमान किया और फिर पति के वचनों को झूठ जाना—

सो फलु मोहि बिधाताँ दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा॥
अब बिधि अस बूझिअ नहिं तोही। संकर बिमुख जिआवसि मोही॥

व्याख्या :—उसी का फल विधाता ने मुझे दिया और जो कुछ उचित था वही किया। हे विधाता! अब तुझे ऐसा नहीं चाहिये कि शिवजी के विमुख होने पर भी मुझे जिला (जीवित रख) रहा है।

कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महुँ रामहि सुमिर सयानी॥
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन बेद जसु गावा॥

व्याख्या :—सती के हृदय की ग्लानि कुछ कही नहीं जाती। बुद्धिमती सतीजी ने मन में श्रीराम का स्मरण कर कहा। जो भगवान् दीनों पर दया करने वाले कहाते हैं और दुःख के हरने वाले कहकर वेदों ने जिनकी प्रशंसा की है—

तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी। छूटउ बेगि देह यह मोरी॥
जौं मोरें सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू॥

व्याख्या :—उनसे मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि मेरी यह देह जल्दी छूट जाय। यदि शिवजी के चरणों में मेरा प्रेम है और मन, कर्म तथा वचन से मेरा यह प्रण सच्चा है—

दो०—तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु, करउ सो बेगि उपाइ।
होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ॥५९॥

व्याख्या :—तो हे सर्वदर्शी प्रभु! सुनिये और शीघ्र वही उपाय कीजिये, जिससे अनायास मेरा मरन हो और मेरी यह (पति-परित्यागरूपी) असह्य विपत्ति दूर हो जाय।

चौ०—एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी॥
बीतें संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी॥

व्याख्या :—दक्षराज की कन्या सतीजी इस प्रकार बहुत दुःखित थीं। उनको इतना दारुण और भारी दुःख था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। (इस प्रकार) सत्तासी हजार वर्ष बीत जाने पर अविनासी शिवजी ने अपनी समाधि खोली।

राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सतीं जगतपति जागे॥
जाइ संभु पद बंदनु कीन्हा। सनमुख संकर आसनु दीन्हा॥

व्याख्या :—शिवजी रामनाम का स्मरण करने लगे। जब सतीजी ने जाना कि जगत् के स्वामी शिवजी जग गये हैं तो उन्होंने जाकर शिवजी के चरणों में प्रणाम किया। शिवजी ने उनको बैठने के लिए अपने सामने आसन दिया (सीता का वेष धरने के कारण बाईं ओर नहीं बैठाया)।

लगे कहन हरिकथा रसाला। दच्छ प्रजेस भए तेहि काला॥
देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक॥

व्याख्या :—और वे (शिवजी) भगवान् की रसमय कथा कहने लगे। जिस समय दक्षराज प्रजापति हुए, ब्रह्माजी ने सब प्रकार से योग्य देख-समझकर दक्ष को प्रजापतियों का नायक बना दिया।

बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमानु हृदयं तब आवा॥
नहि कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥

व्याख्या :—जब दक्ष ने इतना बड़ा अधिकार पाया तो उनके मन में बहुत अधिक घमण्ड हो गया। (शिवजी ने कहा कि) संसार में ऐसा कोई भी पैदा नहीं हुआ, जिसको प्रभुता पाकर अभिमान न हुआ हो।

विशेष :—दूसरी पंक्ति में लोकोक्ति का सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है।

दो०—दच्छ लिए मुनि बोलि सब, करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख भाग॥६०॥

व्याख्या :—दक्ष ने सब मुनियों को बुला लिया और वे बड़ा यज्ञ करने लगे। जो देवता यज्ञ का भाग पाते हैं, दक्ष ने उन सबको आदरसहित निमन्त्रित किया।

चौ०—किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा॥
बिष्नु बिरंचि महेसु बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई॥

व्याख्या :—किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व और सब देवता अपनी-अपनी स्त्रियोंसहित चले। ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी को छोड़कर सभी देवता अपना-अपना विमान सजाकर चले।

सतीं बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुन्दर बिधि नाना॥
सुर सुन्दरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना॥

व्याख्या :—सतीजी ने देखा कि आकाश में भाँति-भाँति के सुन्दर

विमान चले जा रहे हैं। देवसुन्दरियाँ मधुर गान गा रही हैं, जिसके कान में पड़ते ही मुनियों के ध्यान छूट जाता है।

पूछेउ तब सिवँ कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी॥
जौं महेसु मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं॥

व्याख्या :—जब सती ने (विमानों में देवताओं के जाने का कारण) पूछा तब शिवजी ने सब हाल कहा। पिता के यज्ञ की वता सुनकर वे कुछ प्रसन्न हुयीं और सोचने लगीं कि यदि महादेवजी मुझे आज्ञा दें तो कुछ दिन इसी बहाने पीहर जाकर रहूँ।

पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी। कहइ न निज अपराध बिचारी॥
बोली सती मनोहर बानी। भय संकोच प्रेमरस सानी॥

व्याख्या :—उनके हृदय में पति द्वारा त्यागी जाने का बड़ा भारी दुःख है पर अपना अपराध समझकर कुछ कहती नहीं है। (अन्त में कुछ सोचकर) सतीजी भय, संकोच और प्रेमरस में सनी हुयी मनोहर वाणी से कहने लगीं कि—

दो०—पिता भवन उत्सव परम, जौं प्रभु आयसु होइ।
तौ मैं जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोइ॥६१॥

व्याख्या :—हे कृपानाथ! मेरे पिता के यहाँ बहुत बड़ा उत्सव है। स्वामी की आज्ञा हो तो मैं आदरसहित उसे देखने जाऊँ।

चौ०—कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा, यह अनुचित नहिं नेवत पठावा॥
दच्छ सकल निज सुता बोलाईं, हमरें बयर तुम्हउ बिसराईं॥

व्याख्या :—शिवजी ने कहा—तुमने मेरे मन को भाने वाली सुन्दर बात कही, पर (तुम्हारे पिता) दक्षराज ने न्यौता नहीं भेजा, यह अनुचित है। दक्ष ने अपनी सब बेटियों को बुलवाया है, पर हमारे साथ वैर होने के कारण उन्होंने तुमको भी भुला दिया।

ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना। तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना॥
जौं बिनु बोलें जाहु भवानी। रहइ न सीलु सनेहु न कानी॥

व्याख्या :—एक बार ब्रह्माजी की सभा में उन्होंने (उठकर उनका आदर न करने से) बुरा माना था, उसीसे वे अब भी हमारा अपमान करते हैं। हे भवानी! जो तुम बिना बुलाये जाओगी तो शील, स्नेह और मान-मर्यादा कुछ भी नहीं रहेगा।

जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यानु न होई॥

व्याख्या—यद्यपि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाये भी जाना चाहिये, इसमें सन्देह नहीं है तो भी जहाँ कोई विरोध मानता हो, वहाँ जाने से भलाई नहीं होती।

विशेष :—लोकनीति और व्यवहार की दृष्टि से प्रस्तुत चौपाई उल्लेखनीय है।

भाँति अनेक संभु समुझावा। भावी बस न ग्यानु उर आवा॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाएँ। नहिं भलि बात हमारे भाएँ॥

व्याख्या :—शिवजी ने अनेक प्रकार से समझाया, पर होनहार के कारण सती के हृदय में बोध नहीं हुआ। शिवजी ने कहा कि जो बिना बुलाये जाओगी तो हमारी समझ में अच्छी बात नहीं होगी।

दो०—कहि देखा हर जतन बहु, रहइ न दच्छकुमारि।
दिए मुख्यगन संग तब, बिदा कीन्ह त्रिपुरारि॥६२॥

व्याख्या :—शिवजी ने बहुत तरह से कहकर देख लिया, पर सतीजी नहीं रुकीं, तब त्रिपुरारि शिवजी ने अपने मुख्य गणों को साथ देकर उनको विदा कर दिया।

चौ०—पिता भवन जब गईं भवानी। दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी॥
सादर भलेहिं मिली एक माता। भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता॥

व्याख्या :—जब भवानी पिता के घर पहुँची तब दक्षराज के डर से किसी ने उनका सम्मान नहीं किया। केवल एक माता भले ही आदर से मिली। बहनें बहुत मुसकराती हुयीं मिलीं।

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता॥
सतीं जाइ देखेउ तब जागा। कतहुँ न दीख संभु कर भागा॥

व्याख्या :—दक्ष ने कुछ राजी-खुशी नहीं पूछी, वरन् सती को देखकर उनके सारे अंग जल उठे। जब सती ने जाकर यज्ञ देखा तो वहाँ कहीं भी शिवजी का भाग दिखायी नहीं दिया।

तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ॥
पाछिल दुखु न हृदयँ अस ब्यापा। जस यह भयउ महा परितापा॥

व्याख्या :—तब जो शिवजी ने कहा था, वह उनकी समझ में आया।

स्वामी का अपमान समझकर सती का हृदय जल उठा। विच्छला (पतिपरित्याग का) दुःख भी उनके हृदय में इतना अधिक नहीं व्यापा था, जितना महान् दुःख इस समय (पति-अपमान के कारण) हुआ।

विशेष :—मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी यह उचित ही है कि स्त्री को पति के द्वारा अपमानित होने पर भी उतना दुःख नहीं होता, जितना अन्य या अपनों के द्वारा पति का अपमान देखकर होता है।

**जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सब तें कठिन जाति अवमाना॥**
**समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। बहु विधि जननी कीन्ह प्रबोधा॥**

व्याख्या :—यद्यपि जगत् में भाँति-भाँति के दारुण दुःख हैं, परन्तु जाति-अपमान सबसे बढ़कर कठिन है। यह समझकर सती को बड़ा भारी क्रोध हो आया। माता ने उन्हें अनेक प्रकार से समझाया।

**दो०—सिव अपमानु न जाइ सहि, हृदयँ न होइ प्रबोध।**
**सकल सभहि हठि हटकि तब, बोलीं बचन सक्रोध॥६३॥**

व्याख्या :—परन्तु उनसे शिवजी का अपमान नहीं सहा गया, इसीसे उनके हृदय में (माता के काफी समझाने पर भी) ज्ञान तनिक भी नहीं हुआ। तब वे सारी सभा को हठपूर्वक डांटकर क्रोध-भरे वचन बोलीं—

**चौ०—सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। कही सुनी जिन्ह संकर निंदा॥**
**सो फलु तुरत लहब सब काहूँ। भली भांति पछिताब पिताहूँ॥**

व्याख्या :—हे सभासदो और सब मुनिश्वरों! सुनो, जिन्होंने शिवजी की निन्दा कही या सुनी है, उन सबको उसका फल तुरन्त ही मिलेगा और पिताजी भी भली भाँति पछतायेंगे।

**संत संभु श्रीपति अपवादा। सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा॥**
**काटिअ तासु जीभ जो बसाई, श्रवन मूँदि न त चलिअ पराई॥**

व्याख्या :—जहाँ संत, शिवजी और लक्ष्मीपति विष्णु भगवान् की निंदा सुनी जाय, वहाँ ऐसी मर्यादा है कि यदि अपना वश चले तो निन्दा करने वाले की जीभ काट ले, नहीं तो कान मूँद कर वहाँ से भाग जाय।

**जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी॥**
**पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही॥**

व्याख्या :—त्रिपुरासुर को मारने वाले भगवान् शिवजी सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं, वे जगत् के पिता और सबका हित करने वाले हैं। मेरा मन्द-

बुद्धि पिता उनकी निन्दा करता है। मेरा यह शरीर दक्ष के ही वीर्य से उत्पन्न है।

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि वृषकेतू॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥

व्याख्या :—इसलिये चन्द्रमा को ललाट पर धारण करने वाले शिवजी को हृदय में धारण करके मैं इस शरीर को शीघ्र ही त्याग दूँगी। ऐसा कहकर सती ने योगाग्नि में अपना शरीर भस्म कर दिया; इससे सारी यज्ञशाला में हाहाकार मच गया।

दो०—सती मरनु सुनि संभु गन, लगे करन मख खीस।
जग्य विधंस बिलोकि भृगु, रच्छा कीन्हि मुनीस॥६४॥

व्याख्या :—सती का मरना सुनकर जब शिवजी के गण यज्ञ का नाश करने लगे तब यज्ञ का विध्वंस देखकर मुनिवर भृगुजी ने उसकी रक्षा की।

चौ०—समाचार सब संकर पाए। बीरभद्रु करि कोप पठाए॥
जग्य विधंस जाइ तिन्ह कीन्हा। सकल सुरन्ह विधिवत फलु दीन्हा॥

व्याख्या :—शिवजी ने जब सब समाचार पाये तब क्रोध करके उन्होंने वीरभद्र को भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर यज्ञ विध्वस कर डाला और सब देवताओं को यथोचित फल (दण्ड) दिया।

भै जगविदित दच्छ गति सोई। जसि कछु संभु बिमुख कै होई॥
यह इतिहास सकल जग जानी। ताते मैं संछेप बखानी॥

व्याख्या :—दक्ष की वही जगत्-प्रसिद्ध दशा हुई, जो शिवद्रोही की हुआ करती है। यह इतिहास सारा जगत् जानता है, इसीलिये मैंने इसका संक्षेप में वर्णन किया है।

## पार्वती का जन्म और तपस्या

सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जनमीं पारबती तनु पाई॥

व्याख्या :—सती ने मरते समय भगवान् श्रीराम से यह वर माँगा कि जन्म-जन्म में (अर्थात् प्रत्येक जन्म में) मेरा शिवजी के चरणों में प्रेम बना रहे। इसी कारण उन्होंने पार्वती का शरीर पाकर हिमाचल के घर जाकर जन्म लिया।

जब तें उमा सैल गृह जाईं । सकल सिद्धि संपति तहँ छाईं ॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे । उचित बास हिम भूधर दीन्हे ॥

व्याख्या —जब से उमा हिमाचल के घर जन्मी, तबसे वहाँ सब सिद्धियाँ और सम्पत्तियाँ छा गयीं । मुनियों ने जहाँ-तहाँ सुन्दर आश्रम बना लिये और हिमालय ने उन्हें (अपने आश्रम बनाने के लिए) उचित स्थान प्रदान किये ।

दो०—सदा सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति ।
प्रगटीं सुन्दर सैल पर, मनि आकर बहु भाँति ॥६५॥

व्याख्या —उस समय नये-नये अनेक प्रकार के सब वृक्ष सदा फल-फूलों से लदे रहने लगे और सुन्दर पर्वत पर बहुत तरह की मणियों की खान हो गईं ।

चौ०—सरिता सब पुनीत जलु बहहीं । खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं ॥
सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा । गिरि पर सकल करहिं अनुरागा ॥

व्याख्या :——सभी नदियों में निर्मल जल बहने लगा । पशु, पक्षी और भ्रमर सब सुखी रहने लगे । सब जीवों ने अपना स्वाभाविक बैर छोड़ दिया और पर्वत पर सभी प्रेम-सहित रहने लगे ।

सोह सैल गिरिजा गृह आएँ । जिमि जनु रामभगति के पाएँ ॥
नित नूतन मंगल गृह तासू । ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू ॥

व्याख्या :—घर में पार्वतीजी के आ जाने से पर्वत ऐसा सुन्दर लगने लगा जैसे मनुष्य राम की भक्ति को पाकर लगता है । उस (पर्वतराज) के घर नये-नये मंगल होने लगे, जिसका ब्रह्मादि देवता यश गाते हैं ।

नारद समाचार सब पाए । कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए ॥
सैलराज बड़ आदर कीन्हा ॥ पद पखारि बर आसनु दीन्हा ॥

व्याख्या :—जब नारदजी ने ये सब समाचार सुने तो वे कौतुक में ही (महाराज) हिमालय के घर पधारे । पर्वतराज ने उनका बड़ा आदर किया और चरण धोकर बैठने के लिए सुन्दर आसन दिया ।

नारि सहित मुनि पद सिरु नावा । चरन सलिल सबु भवनु सिंचावा ॥
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना । सुता बोलि मेली मुनि चरना ॥

व्याख्या :—पर्वतराज हिमालय ने स्त्री-सहित मुनि के चरणों में सिर नवाया और उनके चरणोदक को सारे घर में छिड़कवाया । पर्वतराज ने

(मुनि के आगमन पर) अपने सौभाग्य का बहुत (प्रकार से) वर्णन किया और पुत्री को बुलाकर मुनि के चरणों में डाल दिया।

दो०—त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह, गति सर्बत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन, मुनिबर हृदयँ बिचारि ॥६६॥

व्याख्या :—हे मुनिवर! आप त्रिकाल (भूत, भविष्य एवम् वर्तमान) के ज्ञाता और सर्वज्ञ हैं, आपकी सर्वत्र पहुँच है। इसलिये आप हृदय में विचारकर पुत्री के गुण-दोष कहिये।

चौ०—कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदुबानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी।
सुन्दर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अम्बिका भवानी॥

व्याख्या :—नारद मुनि ने हँसकर गूढ़ अभिप्राय की कोमल वाणी से कहा—तुम्हारी कन्या सब गुणों की खान है। यह सुन्दर, स्वभाव से ही सुशील और समझदार है। उमा, अम्बिका और भवानी इसके नाम हैं।

सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पिआरी॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि तें जसु पैहहिं पितु माता॥

व्याख्या :—कन्या सब सुलक्षणों से सम्पन्न है, यह अपने पति को सदा प्रिय होगी। इसका सुहाग सदा अचल रहेगा और इसके माता-पिता भी यश पावेंगे।

होइहि पूज्य सकल जग माहीं। ऐहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं॥
एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा॥

व्याख्या :—यह सारे संसार में पूज्य होगी और इसकी सेवा करने से कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा। और संसार में इसके नाम का स्मरण करके स्त्रियाँ पतिव्रतरूपी तलवार की धार पर चढ़ जायेंगी।

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी॥
अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना॥

व्याख्या :—हे हिमवान्! तुम्हारी कन्या सुलक्षिणी है, पर अब इसमें जो दो चार-अवगुण हैं, उन्हें भी सुनलो। गुणहीन, मान-विहीन, माता-पिता रहित, उदासीन, सब प्रकार के संदेहों से मुक्त,—

दो०—जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि, परी हस्त असि रेख ॥६७॥

व्याख्या :—योगी, जटाधारी, निष्कामहृदय, नग्न और अमंगल वेष-

वाला, ऐसा पति इसको मिलेगा। इसके हाथ में ऐसी ही रेखा पड़ी हैं।

विशेष :—नारदजी के इन गूढ़ शब्दों का अर्थ निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :—

शब्दार्थ :—अगुण=रज, सत्, तम, तीनों गुणों से परे। अमान=अहंकार रहित। मातु-पितु-हीन=अनादि। उदासीन=समदर्शी। सब संशय छीना=सब सन्देहों को दूर करने वाला जोगी=ध्यान करने वाला। जटिल=अनादि जटाधारी। अकाम-मन=कामनाओं से रहित मनवाला। नग्न=दिगम्बर। अमंगल वेष=भभूत, मृगचर्म, कपाल आदि के अशुभ भेष से युक्त।

**चौ०—सुनि मुनि गिरा सत्य जियँ जानी। दुख दंपतिहि उमा हरषानी।**
**नारदहूँ यह भेदु न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना॥**

व्याख्या :—नारद मुनि की वाणी सुनकर और उसको हृदय में सत्य जानकर दम्पति को दुःख हुआ पर उमाजी प्रसन्न हुयीं। नारदजी ने भी इस रहस्य को नहीं जाना, क्योंकि सबकी बाहरी दशा एक-सी होने पर भी भीतरी समझ भिन्न-भिन्न थी (अर्थात् दम्पति के मुँह पर दुःख का और उमा के मुँह पर हर्ष का भाव था पर नारदजी केवल भाव को जान सके, उसका भेद नहीं समझे।

**सकल सखीं गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना॥**
**होइ न मृषा देवरिषि भाषा। उमा सो बचनु हृदयँ धरि राखा॥**

व्याख्या :—सब सखियां, पार्वती, पर्वतराज हिमवान् और मैना (पार्वती की माता) सभी के शरीर पुलकित हो गये और नेत्रों में जल भर आया। देवर्षि का कहना असत्य नहीं होगा, यह विचारकर पार्वतीजी ने उन वचनों को अपने हृदय में रख लिया;

**उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू॥**
**जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। सखी उछँग बैठीं पुनि जाई॥**

व्याख्या :—उमाजी का महादेवजी के चरणकमलों में स्नेह उत्पन्न हो आया, परन्तु मन में यह सन्देह हुआ कि उनका मिलना कठिन है। कुअवसर समझकर उन्होंने अपने प्रेम को छिपा लिया और फिर वे सखी की गोद में जाकर बैठ गयीं।

**झूठि न होइ देवरिषि बानी। सोचहिं दंपति सखीं सयानी॥**
**उर धरि धीर कहइ गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिअ उपाऊ॥**

व्याख्या :—देवर्षि की वाणी झूठी नहीं होती, यह विचारकर मैना, हिमवान् और चतुर सखियाँ चिन्ता करने लगीं। फिर महाराज हिमाचल ने हृदय में धीरज धरकर नारदजी से कहा, हे नाथ ! कहिए, अब क्या उपाय किया जाय ?

दो० —कह मुनीस हिमवंत सुनु, जो विधि लिखा लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनिहार ॥६८॥

व्याख्या :—मुनिराज ने कहा—हे हिमवान् ! सुनो, विधाता ने जो कुछ ललाट पर लिख दिया है उसको देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग और मुनि कोई भी नहीं मिटा सकता।

चौ०—तदपि एक मैं कहउँ उपाई। होई करै जौं दैउ सहाई॥
जस बरु मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं। मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं॥

व्याख्या :—तो भी मैं एक उपाय बतलाता हूँ। यदि दैव सहायता करें तो वह सिद्ध हो सकता है। जैसा वर मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है वैसा ही उमा को मिलेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

जे जे बर के दोष बखाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने॥
जौं बिबाहु संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सबु कोई॥

व्याख्या :—यह मैंने वर के जो-जो दोष बतलाये हैं, मेरे अनुमान से वे सब शिवजी में पाये जाते हैं। यदि शिवजी के साथ विवाह हो जाय तो सब लोग दोषों को भी गुण कहेंगे।

जौं अहि सेज सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं॥
भानु कृसानु सर्ब रस खाहीं। तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं॥

व्याख्या :—जैसे भगवान् विष्णु सर्प की सेज पर शयन करते हैं, तो भी पण्डितजन उनको कोई दोष नहीं देते। सूर्य और अग्निदेव अच्छे बुरे-सभी रसों का भक्षण करते हैं, पर उनको कोई बुरा नहीं कहता।

सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई॥
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥

व्याख्या :—गंगाजी में शुभ और अशुभ सब पानी बहता है, पर उनको कोई अपवित्र नहीं कहता। (इसी प्रकार हे राजन् !) सूर्य, अग्नि और गंगाजी की भाँति समर्थ को कुछ दोष नहीं लगता।

दो०—जौं अस हिसिषा करहिं नर, जड़ विवेक अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक महुँ, जीव कि ईस समान ॥६९॥

व्याख्या :—यदि मूर्ख मनुष्य ज्ञान के अभिमान से देवताओं की बराबरी करते हैं (कि जैसा देवताओं ने किया वैसा ही हम भी करेंगे) तो वे कल्प भर के लिए नरक में पड़ते हैं। भला, कहीं जीव भी ईश्वर के बराबर हो सकता है?

चौ०—सुरसरि जल कृत बारुनि जाना। कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना॥
सुरसरि मिलें सो पावन जैसें। ईस अनीसहि अंतरु तैसें॥

व्याख्या :—मदिरा को गंगाजल से बनी हुई जानकर भी संतलोग कभी उसका पान नहीं करते (क्योंकि पान करने से दोष लगता है), पर वही गंगाजी में मिल जाने पर जैसे पवित्र हो जाती है (या उसके गंगाजी में मिलने पर भी गंगा पवित्र बनी बनी रहती है, अर्थात् उसको दोष नहीं लगता), जीव और ईश्वर में भी वैसा ही भेद है (जीव को एक अनुचित बात से भी दोष लग जाता है, पर ईश्वर को अनेक अनुचित कर्मों से भी दोष नहीं लगता)।

संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू॥

व्याख्या :—भगवान् शिवजी स्वभाव से ही समर्थ हैं, इसलिये इस विवाह में सब भाँति कल्याण है। यद्यपि महादेवजी की आराधना बड़ी कठिन है, तो भी कष्ट सहने से अर्थात् कठिन तप करने से वे शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं।

जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥
जद्यपि बर अनेक जग माहीं। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं॥

व्याख्या :—जो तुम्हारी कन्या तप करे तो त्रिपुरारि शिवजी होनहार को भी मेट सकते हैं। यद्यपि संसार में अनेक वर हैं, पर इसके लिए शिवजी को छोड़कर दूसरा वर नहीं है।

बर दायक प्रनतारति भंजन। कृपासिन्धु सेवक मन रंजन॥
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें॥

व्याख्या :—शिवजी वर देने वाले, शरणागतों के दुःख दूर करने वाले, कृपा के समुद्र और सेवकों के मन प्रसन्न करने वाले हैं। शिवजी की आराधना

किये बिना करोड़ों योग और जप का साधन करने पर भी वाञ्छित फल नहीं मिलता ।

दो०—अस कहि नारद सुमिरि हरि, गिरिजहि दीन्हि असीस ।
होइहि यह कल्यान अब, संसय तजहु गिरीस ॥७०॥

व्याख्या :—ऐसा कहकर नारदजी ने भगवान् का स्मरण करके पार्वती को आशीर्वाद दिया । (और कहा कि) हे पर्वतराज ! तुम सन्देह छोड़ दो, अब यह कल्याण ही होगा ।

चौ०—कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ । आगिल चरित सुनहु जस भयऊ ॥
पतिहि एकांत पाइ कह मैना । नाथ न मैं समुझे मुनि बैना ॥

व्याख्या :—यों कहकर नारद मुनि ब्रह्मलोक को चले गये । अब आगे जो चरित्र हुआ उसे सुनो । पति को एकान्त में पाकर मैना ने कहा—हे स्वामी ! मैंने मुनि के वचनों का अर्थ नही समझा ।

जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा । करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा ॥
न त कन्या बरु रहउ कुआरी । कंत उमा मम प्रानपिआरी ॥

व्याख्या :—जो हमारी कन्या के अनुकूल, घर, वर और कुल उत्तम हो तो विवाह कीजिये, नही तो लड़की चाहे कुमारी ही रहे, क्योंकि हे कंत ! उमा मुझे प्राणों से प्यारी है ।

जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू । गिरि जड़ सहज कहिहि सबु लोगू ॥
सोइ बिचारि पति करेहु बिबाहू । जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू ॥

व्याख्या :— यदि पार्वती के योग्य वर नहीं मिला तो सब लोग कहेंगे कि पर्वत स्वभाव से जड़ (मूर्ख) होते हैं । इसलिये हे स्वामी ! सोच-विचार कर ही विवाह कीजियेगा, जिससे फिर पीछे हृदय में सन्ताप न हो ।

अस कहि परी चरन धरि सीसा । बोले सहित सनेह गिरीसा ॥
बरु पावक प्रगटै ससि माहीं । नारद बचनु अन्यथा नाहीं ॥

व्याख्या :—ऐसा कहकर मैना पति के चरणों में सिर रखकर गिर पड़ीं । तब पर्वतराज ने प्रेम से कहा—चाहे चन्द्रमा में (अमृत के बदले) अग्नि प्रकट हो जाय, पर नारदजी के वचन असत्य नहीं हो सकते ।

दो०—प्रिया सोच परिहरहु सबु, सुमिरहु श्री भगवान ।
पारबतिहि निरमयउ जेहिं, सोइ करिहि कल्यान ॥७१॥

व्याख्या :—हे प्रिय ! सब सोच छोड़कर श्रीभगवान् का स्मरण करो,

जिन्होंने पार्वती को बनाया है, वे ही कल्याण करेंगे ।

चौ०—अब जौं तुम्हहि सुता पर नेहू । तौ अस जाइ सिखावनु देहू ॥
करै सो तपु जेहि मिलहि महेसू । आन उपाउँ न मिटिहि कलेसू ॥

व्याख्या :—अब जो तुम्हें पुत्री से प्रेम है तो जाकर उसे यह शिक्षा दो कि वह ऐसा तप करे जिससे शिवजी मिल जायें । अन्य किसी उपाय से यह क्लेश (दुःख) नहीं मिटेगा ।

नारद वचन सगर्भ सहेतू । सुन्दर सब गुन निधि वृषकेतू ॥
अस विचारि तुम्ह तजहु असंका । सबहि भांति संकर अकलंका ॥

व्याख्या :—नारदजी के वचन रहस्यमय और सकारण हैं । शिवजी सुन्दर और सब गुणों के भण्डार हैं । यह विचारकर तुम सन्देह को छोड़ दो, क्योंकि शिवजी सब प्रकार दोषरहित हैं ।

सुनि पति वचन हरषि मन माहीं । गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं ॥
उमहि विलोकि नयन भरे वारी । सहित सनेह गोद बैठारी ॥

व्याख्या :—पति के वचन सुन मन में प्रसन्न होती हुई मैना उठकर तुरन्त पार्वती के पास गईं । पार्वती को देखकर उनकी आँखों में आँसू भर आये (और उमड़ते हुए वात्सल्य के कारण) उसे स्नेह के साथ गोद में बैठा लिया ।

वारहिं वार लेति उर लाई । गदगद कंठ न कछु कहि जाई ॥
जगत मातु सर्वग्य भवानी । मातु सुखद बोलीं मृदु वानी ॥

व्याख्या :—(और) वार-वार उसे हृदय से लगाने लगीं, पर गला भर आने के कारण कुछ कहा नहीं जाता । जगत् की माता और सर्वज्ञ पार्वतीजी (माता के मन की दशा को जानकर) माता को सुख देने वाली कोमल वाणी से बोलीं—

दो०—सुनहि मातु मैं दीख अस, सपन सुनावउँ तोहि ।
सुन्दर गौर सुविप्रबर, अस उपदेसेउ मोहि ॥७२॥

व्याख्या :—हे माँ ! सुन, मैंने एक स्वप्न देखा है, वह तुझे सुनाती हूँ कि एक सुन्दर गौरवर्ण और श्रेष्ठ ब्राह्मण ने मुझे ऐसा उपदेश दिया है—

चौ०—करहि जाइ तप सैलकुमारी । नारद कहा सो सत्य विचारी ॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा । तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा ॥

व्याख्या :—हे पार्वती ! नारदजी ने जो कहा है उसे सत्य समझकर

तुम जाकर तप करो। फिर यह बात तुम्हारे माता-पिता को भी अच्छी लगी है, क्योंकि तप सुखदायक और दुःख-दोषों का नाश करने वाला है।

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता। तपबल बिष्नु सकल जग त्राता॥
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा॥

व्याख्या :—तप के बल से ही ब्रह्मा जगत् को रचते हैं और तप के बल से ही विष्णु सारे संसार का पालन करते हैं। तप के बल से ही शिवजी संहार करते हैं और तप के ही बल से शेषजी पृथ्वी का भार धारण करते हैं।

तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जियँ जानी॥
सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी॥

व्याख्या :—हे भवानी! सारी सृष्टि तप के ही आधार पर है। ऐसा मन में जानकर तुम जाकर तप करो। यह सुनकर माता को बड़ा अचरज हुआ और उसने हिमवान् को बुलाकर वह स्वप्न सुनाया।

मातु पितहि बहुबिधि समुझाई। चलीं उमा तप हित हरषाई॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए बिकल मुख आव न बाता॥

व्याख्या :—माता-पिता को अनेक प्रकार से समझाकर उमा प्रसन्न होकर तप करने के लिए चली। प्यारे कुटुम्बी, पिता और माता सब व्याकुल हो गये और किसी के मुँह से बात नहीं निकलती।

दो०—बेदसिरा मुनि आइ तब, सबहि कहा समुझाइ।
पारबती महिमा सुनत, रहे प्रबोधहि पाइ॥७३॥

व्याख्या :—तब वेदसिरा मुनि ने आकर सबको समझाकर कहा। पार्वती की महिमा सुनकर उनको ज्ञान हुआ और वे शान्त हुए।

चौ० उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू॥

व्याख्या :—प्राणपति (शिवजी) के चरणों को हृदय में धारण करके पार्वतजी वन में जाकर तप करने लगीं। उनका अत्यन्त सुकुमार शरीर तप के योग्य नहीं था, तो भी पति के चरणों का स्मरण करके उन्होंने (जगत् के) सब भोगों को छोड़ दिया।

नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा॥
संबत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत बरष गवाँए॥

व्याख्या :—(शिवजी के) चरणों में नित्य नया प्रेम उत्पन्न होने

लगा और तप में ऐसा मन लगा कि देह की सुध-बुध जाती रही। एक हजार वर्ष तक उन्होंने (तपस्या करते हुए) मूल-फल खाये और सौ वर्ष साग खाकर बिताये।

कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपवासा॥
बेल पाती महि परइ सुखाई। तीनि सहस संवत सोइ खाई॥

व्याख्या :—कुछ दिन जल और पवन का भोजन किया और फिर कुछ दिन कठोर उपवास किये। जो बेल-पत्र सूखकर पृथ्वी पर गिरते थे, तीन हजार वर्ष तक उन्हीं को खाया।

पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तव भयउ अपरना॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा। ब्रह्म गिरा भै गगन गंभीरा॥

व्याख्या :—फिर जब सूखे पर्णों अर्थात् पत्तों को भी छोड़ दिया तब उमा का नाम 'अपर्णा' हो गया। तप से उमा का शरीर क्षीण देखकर आकाश से गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई—

दो०—भयउ मनोरथ सुफल तव, सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहिं तिपुरारि॥७४॥

व्याख्या :—हे पर्वतराज की कुमारी पार्वती ! सुनो, तुम्हारा मनोरथ सफल हुआ। तुम सब असह्य कष्टों को छोड़दो, अब तुम्हें शिवजी मिलेंगे।

चौ०—अस तपु काहुँ न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ग्यानी॥
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी। सत्य सदा संतत सुचि जानी॥

व्याख्या :—हे भवानी ! धीर, मुनि और ज्ञानी बहुत हुए हैं, पर ऐसा कठोर तप किसी ने नहीं किया। अब तुम इस श्रेष्ठ ब्रह्मा की वाणी को सदा सच्ची और निरन्तर पवित्र जानकर अपने हृदय में धारण करो।

आवैं पिता बोलावन जबहीं। हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं॥
मिलहिं तुम्हहिं जब सप्त रिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा॥

व्याख्या :—जब पिता बुलाने आवें, तब हठ छोड़कर घर चली जाना और जब तुम्हें सप्त ऋषि मिलें तब इस वाणी की सचाई जान लेना।

सुनत गिरा बिधि गगन बखानी। पुलक गात गिरिजा हरषानी॥
उमा चरित सुन्दर मैं गावा। सुनहु संभु कर चरित सुहावा॥

व्याख्या :—आकाश से कही हुयी ब्रह्मा की वाणी को सुनते ही

पार्वतीजी प्रसन्न हो गयीं और हर्ष से उनका शरीर पुलकित हो गया। (याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज मुनि से बोले कि) मैंने उमा का सुन्दर चरित्र सुनाया, अब शिवजी का सुहावना चरित्र सुनो।

जब तें सतीं जाइ तनु त्यागा। तब तें सिव मन भयउ बिरागा॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा॥

व्याख्या :—जब से सती ने जाकर शरीर त्याग किया, तब से शिवजी के मन में वैराग्य हो गया (अर्थात् उन्होंने सब सांसारिक भोग छोड़ दिये)। वे सदा श्रीराम का नाम जपने लगे और जहाँ-तहाँ श्रीराम के गुणों की कथाएँ सुनने लगे।

दो०-- चिदानन्द सुखधाम सिव, बिगत मोह मद काम।
बिचरहिं महि धरि हृदयँ हरि, सकल लोक अभिराम॥७५॥

व्याख्या :—मोह, मद और काम से रहित, चिदानन्द, सुख के धाम शिवजी सब लोकों को आनन्द देने वाले भगवान् श्रीहरि (श्रीराम) को हृदय में धारण कर पृथ्वी पर विचरने लगे।

चौ०— कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। कतहुँ राम गुन करहिं बखाना॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना॥

व्याख्या :—वे कहीं तो मुनियों को ज्ञान का उपदेश करते और कहीं श्रीराम के गुणों का बखान करते थे। यद्यपि शिवजी ज्ञानी और कामनामुक्त हैं तो भी वे भगवान् अपने भक्त (सती) के विरह के दुःख से दुखी हो रहे हैं।

एहि बिधि गयउ कालु बहु बीती। नित नै होइ राम पद प्रीति॥
नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अबिचल हृदयँ भगति कै रेखा॥

व्याख्या :—इस भाँति बहुत सा समय बीत गया और शिवजी की श्रीराम के चरणों में नित्य नयी प्रीति होने लगी। शिवजी के कठोर नियम, अनन्य प्रेम और उनके हृदय में भक्ति की अटल रेखा देखकर—

प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला॥
बहु प्रकार संकरहि सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा॥

व्याख्या :—उपकार के मानने वाले (क्योंकि उनके कारण ही सती का त्याग हुआ था), कृपालु, रूप और शील के भण्डार, महान् तेजपुञ्ज भगवान् श्रीराम प्रगट हुए। उन्होंने अनेक प्रकार से शिवजी की सराहना की और कहा कि आपके बिना ऐसा कठिन व्रत कौन निभा सकता है।

बहुबिधि राम सिवहि समुझावा। पारबती कर जन्मु सुनावा।
अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी ॥

व्याख्या :—श्रीराम ने अनेक प्रकार से शिवजी को समझाया और पार्वती के जन्म का हाल सुनाया (कि सती ने हिमवान् के यहाँ जन्म लिया है) और फिर कृपानिधि श्रीराम ने पार्वतीजी की अत्यन्त पवित्र करनी (अर्थात् तपस्या) का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया।

दो०—अब बिनती मम सुनहु सिव, जौं मो पर निज नेहु ॥
जाइ बिबाहहु सैलजहि, यह मोहि मागें देहु ॥७६॥

व्याख्या :—हे शिवजी! अब मेरी विनती सुनिये—जो मुझ पर आपका प्रेम है तो जाकर पार्वती से विवाह कर लीजिये और यह बात मुझे माँगी दीजिये।

चौ०—कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं ॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा ॥

व्याख्या :—शिवजी ने कहा—यद्यपि ऐसा उचित नहीं है, परन्तु स्वामी का वचन भी टाला नहीं जा सकता। हे नाथ! मेरा यही परम धर्म है कि मैं आपकी आज्ञा को सिर पर रखकर उसका पालन करूँ।

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी ॥
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी। अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी ॥

व्याख्या :—माता, पिता, गुरु और स्वामी की वाणी को बिना ही विचारे शुभ समझकर मानना चाहिये। फिर आप तो सब भाँति मेरे परम हितकारी हैं। हे नाथ! आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है।

प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना ॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखेहु जो हम कहेऊ ॥

व्याख्या :—शिवजी के भक्ति, विवेक और धर्म से युक्त वचन सुनकर भगवान् श्रीराम को सन्तोष हुआ और उन्होंने कहा—हे हर! आपका (इस शरीर से अब सती के साथ भेंट न होने का) प्रण पूरा हुआ, अब हमने जो कहा है उसे हृदय में रखना।

अन्तरधान भए अस भाषी। संकर सोइ मूरति उर राखी।
तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। बोले प्रभु अति बचन सुहाए ॥

व्याख्या :—ऐसा कहकर श्रीराम अन्तर्ध्यान हो गये और शिवजी ने

उनकी उसी मूर्ति को हृदय में रख लिया। उसी समय सातों ऋषि शिवजी के पास आये। प्रभु महादेवजी उनसे अत्यन्त सुहावने वचन बोले—

दो०—पारबती पहिं जाइ तुम्ह, प्रेम परिच्छा लेहु।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन, दूरि करेहु संदेहु ॥७७॥

व्याख्या :—आप लोग पार्वती के पास जाकर उसके प्रेम की परीक्षा लीजिये और हिमाचल को कहकर पार्वती को घर भिजवाकर उसके (पार्वती के) संदेह को दूर कीजिये।

चौ०—रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी। मूरतिमंत तपस्या जैसी ॥
बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। करहु कवन कारन तपु भारी ॥

व्याख्या :—ऋषियों ने (वहाँ जाकर) पार्वती को कैसी देखा जैसे मूर्तिमान तपस्या ही हो। मुनि बोले—हे शैलकुमारी! सुनो, तुम किस कारण इतना भारी तप कर रही हो?

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु किन कहहू ॥
कहत बचन मनु अति सकुचाई। हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई ॥

व्याख्या :—तुम किसकी आराधना करती हो और क्या चाहती हो? अपना सच्चा भेद हमसे क्यों नहीं कहतीं? (पार्वती ने कहा) बात (मर्म) कहते मन बहुत सकुचाता है। मेरी मूर्खता सुनकर आप लोग हँसेंगे।

मनु हठ परा न सुनइ सिखावा। चहत बारि पर भीति उठावा ॥
नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिनु पंखन्ह हम चहहिं उड़ाना ॥
देखहु मुनि अबिबेकु हमारा। चाहिअ सदा सिवहि भरतारा ॥

व्याख्या :—मन को हठ जो हो गया है, वह किसी तरह की शिक्षा नहीं सुनता और पानी पर दीवार उठाना चाहता है (अर्थात् असम्भव कार्य करना चाहता है)। नारदजी ने जो कहा था उसे ही मैंने सत्य मान लिया है और मैं बिना पंख ही उड़ना चाहती हूँ। हे मुनियो! आप मेरा अज्ञान तो देखिये कि मैं सदा शिवजी को पति बनाना चाहती हूँ।

दो०—सुनत बचन बिहँसे रिषय, गिरिसंभव तव देह।
नारद कर उपदेसु सुनि, कहहु बसेउ किसु गेह ॥७८॥

व्याख्या :—पार्वती की बात सुनते ही ऋषि हँसे और बोले—तुम्हारा शरीर पर्वत से ही उत्पन्न हुआ है न! भला, कहो नारदजी का उपदेश सुनकर आज तक किस का घर बसा है?

चौ०—दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई। तिन्ह फिरि भवनु न देखा आई॥
चित्रकेतु कर घरु उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला॥

व्याख्या :—नारदजी ने जाकर दक्ष के पुत्रों को उपदेश दिया था, जिससे उन्होंने फिर (वन से) लौटकर घर का मुँह भी नहीं देखा। उसने ही चित्रकेतु का घर बिगाड़ा और (उनके उपदेशों से) हिरण्यकशिपु का फिर ऐसा ही हाल हुआ।

विशेष :—अन्तर्कथाएँ—१. दक्ष प्रजापति ने अपने पुत्रों से सृष्टि रचने के लिए कहा। वे इसके लिए तप करने वन में गये। वहाँ नारदजी के उपदेश से सब विरक्त हो गये और उनमें से एक भी घर नहीं लौटा। तब दक्ष ने नारद को शाप दिया कि तुम दो घड़ी से अधिक कहीं नहीं ठहरोगे।

२. चित्रकेतु के करोड़ रानियाँ थीं, पर पुत्र एक भी नहीं था। अंगिरा मुनि के आशीर्वाद से सबसे छोटी रानी के गर्भ से पुत्र हुआ, पर ईर्ष्यावश अन्य सब रानियों ने विष देकर पुत्र को मार डाला। नारदजी ने आकर उसे पुनर्जीवित कर दिया। बालक ने अपने पूर्व जन्म का हाल सुनाकर राजा को उपदेश दिया। इस तरह उसी के पुत्र से उपदेश कराकर नारद ने चित्रकेतु की बुद्धि बिगाड़ दी। वह विरक्त होकर वन में तप करने चला गया।

३, जब हिरण्यकश्यप की स्त्री गर्भवती थी तब एक दिन नारदजी ने आकर उसे ज्ञान का उपदेश दिया। इससे गर्भ के बालक को ज्ञान हो गया जो प्रह्लाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

नारद सिख जे सुनहिं नर नारी। अवसि होहिं तजि भवनु भिखारी॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा॥

व्याख्या :—जो स्त्री-पुरुष नारदजी की शिक्षा सुनते है वे घर-बार छोड़ अवश्य ही भिखारी हो जाते है। उनका मन तो कपटी है, पर शरीर संतजनों का सा दीखता है। वे सभी को अपने समान ( भिखारी ) बनाना चाहते हैं।

तेहि कें बचन मानि बिस्वासा। तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा॥
निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली॥

व्याख्या :—तुम उनके वचनों पर विश्वास करके ऐसा पति चाहती हो जो स्वभाव से ही उदासीन, गुण-रहित, निर्लज्ज, बुरे वेषवाला, नरकपालों

की माला पहनने वाला, कुलहीन, बिना घर का, नंग और शरीर पर साँपों को लपेटे रखने वाला है।

कहहु कवन सुखु अस वरु पाएँ। भल भूलिहु ठग के बौराएँ॥
पंच कहें सिवँ सती बिवाही। पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही॥

व्याख्या :—ऐसा पति पाने से कहो, तुम्हें क्या सुख मिलेगा? तुम उस ठग (नारद) के बहकावे में आकर खूब भूलीं। पहले पंचों के कहने से शिव ने सती से विवाह किया था, लेकिन फिर उसे त्यागकर मरवा डाला।

दो०—अब सुख सोवत सोचु नहिं, भीख मांगि भव खाँहि।
सहज एकाकिन्ह के भवन, कबहुँ कि नारि खटाँहि॥

व्याख्या :—अब शिव को कोई चिन्ता नहीं रही, वे भीख माँगकर खाते हैं और सुख से सोते हैं। ऐसे स्वभाव से ही अकेले रहने वालों के घर भी क्या कभी स्त्रियां टिक सकती हैं?

चौ०—अजहूँ मानहु कहा हमारा। हम तुम्ह कहुँ वरु नीक बिचारा॥
अति सुंदर सुचि सुखद सुसीला। गावहिं बेद जासु जस लीला॥

व्याख्या :—अब भी हमारा कहा मानो, हमने तुम्हारे लिए अच्छा वर सोचा है। वह बहुत ही सुन्दर, पवित्र, सुख का देने वाला और सुशील है, उसके यश और लीला को वेद भी गाते हैं।

दूषन रहित सकल गुन रासी। श्रीपति पुर बैकुंठ निवासी॥
अस वरु तुम्हहि मिलाउब आनी। सुनत बिहसि कह बचन भवानी॥

व्याख्या :—वह दोषों से रहित, सब गुणों की खान, संपत्तिशाली और बैकुण्ठ में रहने वाला है। हम ऐसे वर को लाकर तुम से मिला देंगे। यह सुनते ही पार्वतीजी हँसकर बोली—

सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा। हठ न छूट छूटै बरु देहा॥
कनकउ पुनि पषान तें होई। जारेहुँ सहजु न परिहर सोई॥

व्याख्या :—आपने सत्य ही कहा कि मेरा यह शरीर पर्वत से उत्पन्न हुआ है। इसलिये हठ नहीं छूटेगा, शरीर भले ही छूट जाय। सोना भी पत्थर से पैदा होता है, इसी कारण वह जलाये जाने पर भी अपने स्वभाव (सुवर्णत्व) को नहीं छोड़ता।

नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ॥
गुर के बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही॥

व्याख्या :—मैं नारदजी के वचनों को नहीं छोड़ूँगी; चाहे घर बसे या उजड़े, इससे मैं नहीं डरती। जिसको गुरु के वचनों में विश्वास नहीं होता, उसको सुख और सिद्धि स्वप्न में भी सुलभ नहीं होती।

दो०—महादेव अवगुन भवन, विष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम ॥८०॥

व्याख्या :—महादेव अवगुणों के घर हैं और विष्णु सब गुणों के धाम हैं, पर जिसका मन जिसमें रम गया, उसको तो उसी से काम है।

चौ०—जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा। सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा ॥
अब मैं जन्मु संभु हित हारा। को गुन दूषन करै विचारा ॥

व्याख्या :—हे मुनीश्वरो ! यदि आप पहले मिलते, तो आपकी शिक्षा सिर-माथे रखकर सुनती। परन्तु अब तो मैं अपना जन्म शिवजी के लिए हार चुकी। अब गुण-दोषों का विचार कौन करे ?

जौं तुम्हरे हठ हृदयँ बिसेषी। रहि न जाइ बिनु किएँ बरेषी ॥
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं। बर कन्या अनेक जग माहीं ॥

व्याख्या :—और यदि आपके हृदय में अधिक हठ है तथा विवाह की बातचीत (बरेखी) किये बिना रहा नहीं जाता, तो संसार में वर-कन्या बहुत हैं। खिलवाड़ करने वालों को आलस्य तो होता नहीं (कहीं और जाकर ही विवाह की चर्चा कीजिये)

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी ॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू ॥

व्याख्या :—मेरा तो करोड़ों जन्मों तक यही हठ रहेगा कि या तो शिवजी को वरूँगी, नहीं तो कुमारी ही रहूँगी। यदि स्वयं भगवान् शिवजी भी सौ बार कहें, तो भी नारदजी के उपदेश को नहीं छोड़ूँगी।

मैं पा परउँ कहइ जगदंबा। तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा ॥
देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी। जय जय जगदंबिके भवानी ॥

व्याख्या :—जगत् की माता पार्वतीजी कहने लगी—हे मुनीश्वरो ! मैं आपके पैरों पड़ती हूँ। आप अपने घर जाइये, बड़ी देर हो गई। शिवजी में पार्वती का ऐसा प्रेम देखकर ज्ञानी मुनि बोले—हे जगत् की माता भवानी ! तुम्हारी बार-बार जय हो।

दो०—तुम्ह माया भगवान सिव, सकल जगत पितु मातु ।
नाइ चरन सिर मुनि चले, पुनि पुनि हरषत गातु ॥८१॥

व्याख्या :—आप माया और शिवजी ईश्वर हैं । आप दोनों सकल विश्व के माता-पिता हैं । (यों कहकर) मुनि पार्वती के चरणों में सिर नवाकर चल दिये । उनके शरीर बार-बार पुलकित हो रहे थे ।

चौ०—जाइ मुनिन्ह हिमवंतु पठाए । करि बिनती गिरजहिं गृह ल्याए ॥
बहुरि सप्तरिषि सिव पहिं जाई । कथा उमा कै सकल सुनाई ॥

व्याख्या —मुनियों ने जाकर हिमवान् को भेजा और वे विनती करके पार्वती को घर ले आये; फिर सप्तऋषियों ने शिवजी के पास जाकर उमा की सारी कथा सुनायी ।

भए मगन सिव सुनत सनेहा । हरषि सप्तरिषि गवने गेहा ॥
मनु थिर करि तब संभु सुजाना । लगे करन रघुनायक ध्याना ॥

व्याख्या :—पार्वती का प्रेम सुनते ही शिवजी आनन्दमग्न हो गये और सप्तर्षि प्रसन्न होकर अपने घर चले गये । तब सुजान शिवजी मनको स्थिर करके श्रीराम का ध्यान करने लगे ।

## कामदेव का शिवजी के पास जाना और भस्म होना

तारकु असुर भयउ तेहि काला । भुज प्रताप बल तेज बिसाला ॥
तेहिं सब लोक लोकपति जीते । भए देव सुख संपति रीते ॥

व्याख्या :—उसी समय तारक नाम का असुर हुआ, जिसकी भुजाओं का प्रताप, बल और तेज बहुत बड़ा था । उसने सब लोक और लोकपालों को जीत लिया तथा सब देवता सुख और सम्पत्ति से विहीन हो गये ।

अजर अमर सो जीति न जाई । हारे सुर करि बिबिध लराई ॥
तब बिरंचि सन जाइ पुकारे । देखि बिधि सब देव दुखारे ॥

व्याख्या :—वह अजर-अमर था, इसलिये किसी से जीता नहीं जाता था । जब देवता उससे अनेक प्रकार से युद्ध करके हार गये, तब उन्होंने ब्रह्माजी के पास जाकर पुकार मचायी । ब्रह्माजी ने सभी देवताओं को दुखी देखा ।

दो०—सब सन कहा बुझाइ बिधि, दनुज निधन तब होई ।
संभु सुक्र संभूत सुत, एहि जीतइ रन सोइ ॥८२॥

व्याख्या :—ब्रह्माजी ने सब देवताओं को समझाकर कहा—इस दैत्य

की मृत्यु तब होगी जब शिवजी के वीर्य से पुत्र उत्पन्न हो। वही इसको लड़ाई में जीतेगा।

चौ०—मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करिहि सहाई॥
सतीं जो तजी दच्छ मख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा॥

व्याख्या :—मेरा कहा सुनकर उपाय करो। ईश्वर सहायता करेंगे तो काम हो जायेगा। सती ने जो दक्ष के यज्ञ में शरीर त्याग दिया था, उन्होंने अब हिमाचल के घर जकर जन्म ले लिया है।

तेहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी। सिव समाधि बैठे सबु त्यागी॥
जदपि अहइ असमंजस भारी। तदपि बात एक सुनहु हमारी"

व्याख्या :—उसने शिवजी को पति बनाने के लिए तप किया है और इधर शिवजी सब त्यागकर समाधि में बैठे हैं। यद्यपि इससे बड़ी भारी दुविधा है (क्योंकि महादेवजी की समाधि का छूटना कठिन है), तो भी हमारी एक बात सुनो।

पठवहु कामु जाइ सिव पाहीं। करै छोभु संकर मन माहीं॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवाउब बिवाहु बरिआई॥

व्याख्या :—तुम जाकर कामदेव को शिवजी के पास भेजो। वह जाकर शिवजी के चित्त को चलायमान करे। तब हम जाकर शिवजी के चरणों में सिर नवाकर हठपूर्वक (उन्हें प्रसन्न करके) विवाह करा देंगे।

एहि बिधि भलेहिं देवहित होई। मत अति नीक कहइ सबु कोई॥
अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू। प्रगटेउ बिषमबान झषकेतू॥

व्याख्या :—इस रीति से देवताओं का हित भले ही हो जाय। (यह सुन) सबने कहा—यह विचार बहुत अच्छा है। फिर देवताओं ने बड़े प्रेम से स्तुति की और विषम (पाँच बाण धारण करने वाला तथा मछली के चिह्न-युक्त ध्वजा वाला कामदेव प्रगट हुआ।

विशेष :—कामदेव के पाँच बाण इस प्रकार हैं :—

कमल अशोक, आम, अमेली और नीलकमल।

दो०—सुरन्ह कही निज बिपति सब, सुनि मन कीन्ह बिचार।
संभु बिरोध न कुसल मोहि, बिहसि कहेउ अस मार॥८३॥

व्याख्या :—देवताओं ने अपनी विपत्ति कही। उसे सुन कामदेव ने मन में विचार किया और हँसकर देवताओं से यों कहा कि शिवजी से विरोध

करने में मेरी कुशल नहीं है।

चौ०—तदपि करब मैं काजु तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा॥
पर हित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही॥

व्याख्या :—तो भी मैं तुम्हारा काम करूँगा, क्योंकि वेद उपकार को परम धर्म कहते हैं। जो दूसरों की भलाई के लिए अपना शरीर त्याग करते हैं, उनकी संतजन सदा प्रशंसा किया करते हैं।

अस कहि चलेउ सबहि सिरु नाई। सुमन धनुष कर सहित सहाई॥
चलत मार अस हृदयँ बिचारा। सिव बिरोध ध्रुव मरनु हमारा॥

व्याख्या :—यों कह और सबको सिर नवाकर कामदेव अपने फूलों के धनुष को हाथ में लेकर अपने सहायक (वसन्तादि) के साथ (कैलाश पर्वत को) चला। चलते समय कामदेव ने हृदय में ऐसा विचार किया कि शिवजी के साथ विरोध करने में मेरा नि:संदेह मरण होगा।

तब आपन प्रभाउ विस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा॥
कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू॥

व्याख्या :—तब (कामदेव ने) अपना प्रभाव फैलाया और समस्त संसार को अपने वश में कर लिया। जब मछली के चिह्न की ध्वजावाले कामदेव ने कोप किया, तब क्षण-भर में ही वेदों की सारी मर्यादा मिट गयी।

ब्रह्मचर्य ब्रत संयम नाना। धीरज धरम ग्यान बिग्याना॥
सदाचर जप जोग बिरागा। सभय बिवेक कटकु सबु भागा॥

व्याख्या :—ब्रह्मचर्य, भाँति-भाँति के व्रत, संयम, धीरज, धर्म, ज्ञान, विज्ञान; सदाचार, जप, योग, वैराग्य और विवेक की सारी सेना डरकर भाग गयी (अर्थात् चेतन जीवों में ब्रह्मचर्य आदि का विवेक जाता रहा)।

छं०—भागेउ बिबेकु सहाय सहित सो सुभट संजुग महि मुरे।
सदग्रन्थ पर्वत कंदरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे॥
होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि करधनु सरु धरा।

व्याख्या :—विवेक अपने (ब्रह्मचर्य आदि) सहायकों सहित भाग गया, क्योंकि उसके (सन्तोष आदि) अच्छे-अच्छे योद्धा संग्राम-भूमि में पीठ दिखाकर, बड़े-बड़े ग्रन्थरूपी पर्वतों की कन्दरा (रूप अध्यायों) में उस समय जा छिपे

(अर्थात् ज्ञान, वैराग्य, संयम, नियम, सदाचार आदि सब नष्ट होकर पुस्तकों में लिखे रह गये, उनका आचरण छूट गया)। सारे संसार में खलबली मच गयी (और सब कहने लगे) हे विधाता! क्या होने वाला है? कौन हमारा रखवाला है? ऐसा दो सिर वाला कौन है (अर्थात् किसके एक सिर फालतू है), जिसके लिए रति के पति कामदेव ने कोप करके धनुष-बाण हाथ में लिया हैं।

दो०—जे सजीव जग अचर चर, नारि पुरुष अस नाम।
ते निज-निज मरजाद तजि, भए सकल बस काम ॥८४॥

व्याख्या :—संसार में स्त्री-पुरुष संज्ञा वाले जितने चर-अचर प्राणी थे, वे सब अपनी-अपनी मर्यादा छोड़कर काम के वश हो गये।

चौ०—सबके हृदयँ मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु साखा॥
नदीं उमगि अंबुधि कहुँ धाईं। संगम करहिं तलाव तलाईं॥

व्याख्या :—सबके हृदय में काम की इच्छा है। लताओं को देखकर वृक्षों की डालियाँ झुकने लगीं। नदियाँ उमड़-उमड़ कर समुद्र की ओर दौड़ चलीं और ताल-तलैयाँ भी आपस में संगम करने (मिलने जुलने) लगे।

जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी। को कहि सकइ सचेतन करनी॥
पसु पच्छी नभ जल थलचारी। भए कामबस समय बिसारी॥

व्याख्या :—जब जड़ (वृक्ष, नदी आदि) की यह दशा कही जाती है, तब चेतन जीवों की करनी कौन कह सकता है? आकाश, जल और पृथ्वी पर विचरने वाले समस्त पशु-पक्षी अपने संयोग का समय भूलकर काम के वश हो गये।

मदन अन्ध व्याकुल सब लोका। निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका॥
देव दनुज नर किंनर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला॥
इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥
सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी। तेपि कामबस भए बियोगी॥

व्याख्या :—सभी लोक (के जड़-चेतन जीव) कामान्ध होकर व्याकुल हो गये। चकवा-चकवी रात-दिन नहीं देखते। देवता दैत्य, मनुष्य, किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत बेताल, इनको सदा काम के गुलाम समझकर मैंने इनकी दशा विस्तारपूर्वक नहीं कही है। सिद्ध, वैरागी, महामुनि और महान् योगी भी काम के वश होकर योगरहित या स्त्री के विरही हो गये।

छं०—भए कामबस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं॥
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं॥

व्याख्या :— जब योगीश्वर और तपस्वी भी काम के वश हो गये, तब पामर मनुष्यों की कौन कहे? (वे किस गिनती में है। जो समस्त चराचर को ब्रह्ममय देखते थे वे अब उसे स्त्रीमय देखने लगे। स्त्रियाँ सारे जगत् को पुरुषमय और पुरुष उसे स्त्रीमय देखने लगे। दो घड़ी तक ब्रह्माण्ड में कामदेव का रचा हुआ यह कौतुक (तमाशा) होता रहा।

सो०—धरी न काहूँ धीर, सबके मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर, ते उबरे तेहि काल महुँ॥८५॥

व्याख्या :—किसी ने भी हृदय में धैर्य धारण नहीं किया क्योंकि कामदेव ने सबके मन हर लिये। उस समय जिनकी रक्षा श्रीराम ने की, वे ही बचे रहे।

चौ०—उभय घरी अस कौतुक भयउ। जौ लगि कामु संभु पहिं गयऊ॥
सिवहि बिलोकि ससंकेउ मारू। भयउ जथाथिति सबु संसारू॥

व्याख्या :—जब तक कामदेव शिवजी के पास पहुँचा तब तक दो घड़ी ऐसा ही खेल होता रहा। शिवजी को देखकर कामदेव डर गया, तब सारा संसार फिर ज्यों का त्यों स्थिर हो गया।

भए तुरत सब जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गएँ मतवारे।
रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना॥

व्याख्या :—तुरन्त ही सब जीव ऐसे सुखी हो गये, जैसे मतवाले (नशा पिये हुए) लोग मद उतर जाने पर सुखी होते हैं। शिवजी को देखकर कामदेव भयभीत हो गया, क्योंकि शिव दुराधर्ष (जिसको पराजित करना अत्यनत ही कठिन) और दुर्गम (जिनको पार करना कठिन है ऐसे) भगवान् हैं।

फिरत लाज कछु करि नहिं जाई। मरनु ठानि मन रचेसि उपाई॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नव तरु राजि बिराजा॥

व्याख्या :—यदि कुछ न करके लौटा जाता है तो बड़ी लज्जा मालूम होती है, और करते कुछ बनता नहीं। अन्त में मन में मरने का निश्चय करके उसने उपाय रचा। तुरन्त सुन्दर वसन्त ऋतु को प्रकट किया जिससे वृक्षों की

कतारें नये-नये फूलों से लद गयीं।

वन उपवन बापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा बिभागा॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा॥

व्याख्या :—वन, उपवन, बावड़ी-तालाब और सब दिशाओं के विभाग परम सुन्दर लगने लगे। जहाँ-तहाँ मानो प्रेम उमड़ रहा है, जिसे देखकर मरे हुओं के (अर्थात् जिन्होने शम, दम आदि से इन्द्रियों को रोक रक्खा था उनके) मन में भी काम जाग उठा।

विशेष :—उत्प्रेक्षा अलंकार।

छं०—जागइ मनोभव मुएहुँ मन वन सुभगता न परै कही।
सीतल सुगन्ध सुमन्द मारुत मदन अनल सखा सही॥
विकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा॥

व्याख्या :—मरे हुए मनों में भी काम जाग उठा, वन की सुन्दरता कही नहीं जाती। कामाग्नि का सच्चा मित्र शीतल-मन्द-सुगन्धित पवन चलने लगा। तालाबों में तरह-तरह के कमल खिल गये, जिन पर सुन्दर भौंरो के समूह गुंजार करने लगे। राजहंस, कोयल और तोते रसीली बोली बोलने लगे और अप्सराएँ गा-गाकर नाचने लगीं।

दो०—सकल कला करि कोटि विधि, हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव, कोपेउ हृदयनिकेत॥८६॥

व्याख्या :—कामदेव करोड़ों प्रकार की सब युक्तियाँ करके अपनी सेना सहित हार गया, पर शिवजी की अचल समाधि नहीं डिगी। इससे कामदेव क्रोधित हो उठा।

चौ०—देखि रसाल बिटप बर साखा तेहि पर चढ़ेउ मदनु मन माखा॥
सुमन चाप निज सर संधाने। अति रिस ताकि श्रवन लगि ताने॥

व्याख्या :—आम के वृक्ष की एक सुन्दर डाली देखकर मन में क्रोध से भरा हुआ कामदेव उस पर चढ़ गया। उसने अपने फूलों के धनुष पर बाण चढ़ाये और बड़े क्रोध से तक कर उन्हें कान तक ताना।

छाड़े बिषम बिसिख उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥
भयउ ईस मन छोभु बिसेषी। नयन उघारि सकल दिसि देखी॥

व्याख्या :—कामदेव ने तीक्ष्ण पाँच बाण छोड़े, जो शिवजी के हृदय

में लगे। तब उनकी समाधि टूट गयी और वे जग गये। भगवान् शिवजी के मन में बहुत क्षोभ हुआ और वे आँखें खोलकर सब दिशाओ में देखने लगे।

सौरभ पल्लव मदनु बिलोका। भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका॥
तब सिवँ तीसर नयन उघारा। चितवत कामु भयउ जरि छारा॥

व्याख्या :—आम के पत्तों में (छिपे हुए) कामदेव को देखकर शिवजी क्रोध हुआ, जिससे तीनों लोक काँप उठे। तब शिवजी ने तीसरा नेत्र खोला जिससे देखते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया।

हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भए असुर सुखारी।
समुझि कामसुखु सोचहिं भोगी। भए अकंटक साधक जोगी॥

व्याख्या :—संसार भर में भारी हाहाकार मच गया। देवता डर गये और दैत्य सुखी हुए। भोगीजन काम सुख को याद करके चिन्ता करने लगे और साधक योगी निष्कंटक हो गये।

छं०—जोगी अकंटक भए पति गति सुनत रति मुरुछित भई।
रोदति बदति बहु भाँति करुना करति संकर पहिं गई॥
अति प्रेम करि बिनती बिबिध बिधि जोरि कर सन्मुख रही।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही॥

व्याख्या :—योगी निष्कंटक हो गये। पति की दशा सुनकर रति मूर्छित हो गयी। बहुत भाँति से रोती-चिल्लाती और करुणा करती हुयी वह शिवजी के पास गयी और अत्यन्त प्रेम से अनेक भाँति विनती कर हाथ जोड़कर सामने खड़ी रही। तब शीघ्र प्रसन्न होने वाले, दयालु शिवजी अपने सामने अबला को देखकर सुन्दर वचन बोले कि—

दो०—अब तें रति तव नाथ कर, होइहि नामु अनंगु।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि, सुनु निज मिलन प्रसंगु॥८७॥

व्याख्या :—हे रति! अब से तेरे स्वामी का नाम 'अनङ्ग' होगा और वह बिना ही शरीर के सबमें व्यापेगा। अब तू अपने पति से फिर मिलने का प्रसंग सुन।

चौ०—जब जदुबंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा॥
कृष्न तनय होइहि पति तोरा। बचनु अन्यथा होइ न मोरा॥

व्याख्या :—जब पृथ्वी का बड़ा भारी भार उतारने के लिए यदुवंश में श्रीकृष्ण का अवतार होगा, तब तेरा पति कृष्णजी का पुत्र (प्रद्युमन)

होगा। मेरा यह वचन असत्य नहीं होगा।

रति गवनी सुनि संकर बानी। कथा अपर अब कहउँ बखानी॥
देवन्ह समाचार सब पाए। ब्रह्मादिक बैकुण्ठ सिधाए॥

व्याख्या :—शिवजी की वाणी सुनकर रति लौट गयी। अब मैं दूसरी कथा विस्तारपूर्वक कहता हूँ। जब देवताओं ने सब समाचार पाये तो ब्रह्मा आदि सब वैकुण्ठ को चले गये।

## शिवजी की बरात और विवाह

सब सुर विष्नु बिरंचि समेता। गए जहां सिव कृपानिकेता॥
पृथक पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा। भए प्रसन्न चन्द्र अवतंसा॥

व्याख्या :—फिर वहाँ से ब्रह्मा, विष्णु सहित सब देवता, जहाँ दयानिधान शिवजी थे वहाँ (कैलाश पर) गये। उन सबने शिवजी की अलग-अलग स्तुति की तब, चन्द्रशेखर शिवजी प्रसन्न हो गये।

बोले कृपासिन्धु वृषकेतू। कहहु अमर आए केहि हेतू॥
कह बिधि तुम्ह प्रभु अंतरजामी। तदपि भगति बस बिनवउँ स्वामी॥

व्याख्या :—कृपा के सागर शिवजी ने कहा—हे देवताओ! कहो आप लोग किसलिये आये हैं? (यह सुन) ब्रह्माजी ने कहा—हे प्रभु! आप अन्तर्यामी हैं, तो भी हे स्वामी! भक्तिवश मैं आपसे विनती करता हूँ।

दो०—सकल सुरन्ह के हृदयँ अस, संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहहिं, नाथ तुम्हार बिबाहु॥८८॥

व्याख्या :—हे शंकर! सब देवताओं के मन में ऐसा परम उत्साह है कि हे नाथ! वे अपने नेत्रों से आपका विवाह देखना चाहते हैं।

चौ०—यह उत्सव देखिअ भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदन मद मोचन॥
कामु जारि रति कहुँ बरु दीन्हा। कृपासिन्धु यह अति भल कीन्हा॥

व्याख्या :—हे कामदेव के मद को चूर करने वाले शंकर! आप ऐसा कुछ यत्न कीजिये जिससे सब लोग इस उत्सव को नेत्र भरकर देखें। हे कृपा-सिन्धु! कामदेव को भस्म करके आपने रति को जो वरदान दिया सो बहुत ही अच्छा किया।

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ॥
पारबतीं तपु कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा॥

व्याख्या :—हे नाथ! श्रेष्ठ स्वामियों का यह सहज स्वभाव होता है

कि वे दण्ड देकर फिर दया भी करते हैं। पार्वतीजी ने बहुत अधिक तप किया है, अब उन्हें अंगीकार कीजिये।

सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी। ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी॥
तब देवन्ह दुंदुभीं बजाईं। बरषि सुमन जय-जय सुर साईं॥

व्याख्या :—ब्रह्माजी की विनती सुनकर और भगवान् (श्रीराम) की वाणी याद करके, शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा—'ऐसा ही हो'। तब देवताओं ने नगाड़े बजाये और वे फूल वर्षा-वर्षा कर कहने लगे कि हे देवताओं के स्वामी! आपकी बार-बार जय हो।

अवसरु जानि सप्तरिषि आए। तुरतहिं बिधि गिरिभवन पठाए॥
प्रथम गए जहँ रहीं भवानी। बोले मधुर बचन छल सानी॥

व्याख्या :—उचित अवसर समझकर सप्तर्षि वहाँ आये और ब्रह्माजी ने तुरन्त ही उन्हें हिमाचल के घर भेज दिया। वे पहले वहाँ गये जहाँ पार्वतीजी थी और उनसे छलपूर्ण मधुर वचन बोले—

दो०—कहा हमार न सुनेहु तब, नारद कें उपदेस।
अब भा झूठ तुम्हार पन, जारेउ कामु महेस॥८९॥

व्याख्या :—नारदजी के उपदेश के कारण तुमने उस समय हमारी बात नहीं सुनी। अब तुम्हारा प्रण झूठा हो गया है, क्योंकि महादेवजी ने कामदेव को ही भस्म कर डाला है।

चौ०—सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी। उचित कहेहु मुनिबर बिग्यानी॥
तुम्हरें जान कामु अब जारा। अब लगि संभु रहे सबिकारा॥

व्याख्या :—यह सुन भवानी मुसकराकर बोली—हे विज्ञानी मुनिवरो! आपने उचित ही कहा। तुम्हारी समझ में शिवजी ने कामदेव को अब जलाया है, तो अब तक क्या वे कामी (विकारयुक्त) ही रहे?

हमरें जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी॥
जौं मैं सिव सेये अस जानी। प्रीति समेत कर्म मन बानी॥

व्याख्या :—हमारी समझ में तो शिवजी सदा से ही योगी हैं और अजन्मा, निन्दा-रहित, काम-रहित और भोग-हीन हैं। जो मैंने ऐसा ही जानकर प्रीति-सहित, कर्म, मन और वाणी से शिवजी की सेवा की है—

तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा॥
तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा। सोइ अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा॥

व्याख्या :—तो हे मुनिश्वरों ! सुनो, कृपानिधान भगवान् मेरे प्रण को अवश्य ही सत्य करेंगे और तुमने जो कहा कि शिव ने काम को जला दिया है यही तुम्हारा बड़ा भारी अज्ञान है।

तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ ॥
गएँ समीप सो अवसि नसाई। असि मन्मथ महेस की नाई ॥

व्याख्या :—हे तात ! अग्नि का तो यह सहज स्वभाव ही है कि पाला उसके समीप कभी नहीं जाता और जो पास जाय तो वह अवश्य ही नष्ट हो जाता है। महादेवजी और काम के विषय में यही समझना चाहिये।

दो०—हियँ हरषे मुनि बचन सुनि, देखि प्रीति बिस्वास।
चले भवानिहि नाइ सिर, गए हिमाचल पास ॥९०॥

व्याख्या :—पार्वतीजी के वचन सुनकर और उनका प्रेम तथा विश्वास देखकर मुनि हृदय में बड़े प्रसन्न हुए। वे भवानी को सिर झुकाकर चल दिये और हिमाचल के पास पहुँचे।

चौ०—सबु प्रसंगु गिरिपतिहि सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुखु पावा ॥
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना। सुनि हिमवंत बहुत सुखु माना ॥

व्याख्या :—मुनियों ने पर्वतराज हिमाचल को सब हाल सुनाया। कामदेव का भस्म होना सुनकर पर्वतराज बहुत दुखी हुए। फिर मुनियों ने रति के वरदान की बात कही, जिसे सुनकर हिमवान् ने बहुत सुख माना।

हृदयँ बिचारि संभु प्रभुताई। सादर मुनिवर लिए बोलाई ॥
सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। बेगि बेदबिधि लगन धराई ॥

व्याख्या :—हृदय में शिवजी की प्रभुता का विचार कर हिमाचल ने श्रेष्ठ मुनियों को आदरपूर्वक बुला लिया और उनसे शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ घड़ी शोधवाकर वेद की विधि के अनुसार शीघ्र ही लग्न निश्चय कराकर लिखवा लिया।

पत्री सप्तरिषिन्ह सोइ दीन्ही। गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही ॥
जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती। बाचत प्रीति न हृदयँ समाती ॥

व्याख्या :—फिर वह लग्न-पत्रिका सप्तर्षियों को दे दी और हिमाचल ने चरण पकड़ कर उनकी विनती की। उन्होंने जाकर वह पत्रिका ब्रह्माजी को दी, जिसको पढ़ते समय उनके हृदय में प्रेम समाता न था।

लगन बाचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई ।।
सुमन वृष्टि नभ बाजन बाजे। मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे ।।

व्याख्या :—ब्रह्माजी ने लग्न पढ़कर सबको सुनाया। उसे सुनकर सब मुनि और देवताओं के समूह बड़े प्रसन्न हुए। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी, बाजे बजने लगे और दसों दिशाओं में मंगल-कलस सजने लगे।

दो०—लगे सँवारन सकल सुर, वाहन विविध विमान।
होंहि सगुन मंगल सुभद, करहिं अपछरा गान ।।९१।।

व्याख्या :—सब देवता अपने भाँति-भाँति के विमान और वाहन सजाने लगे। सुन्दर मांगलिक शकुन होने लगे और अप्सराएँ गाने लगीं।

चौ०—सिवहि संभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा ।।
कुण्डल कंकन पहिरे व्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला ।।

व्याख्या :—शिवजी के गण उनका शृंगार करने लगे। उन्होंने जटाओं का मुकुट बनाकर उस पर साँपों का मौर सजाया। शिवजी ने साँपों के ही कुण्डल और कंकण पहने, शरीर में भबूत रमाई और बाघम्बर के वस्त्र पहिने।

ससि ललाट सुन्दर सिर गंगा। नयन तीनि उपवीत भुजंगा ।।
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला ।।

व्याख्या :—शिवजी के ललाट पर सुन्दर चन्द्रमा और सिर पर गंगाजी शोभायमान थी। उनके तीन नेत्र थे और साँपों का जनेऊ था, कंठ में विष और छाती पर नरमुण्डों की माला थी। इस प्रकार शिवजी का वेष अशुभ होने पर भी वे कृपालु कल्याण के धाम हैं।

कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा ।।
देखि सिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं ।।

व्याख्या :—उनके एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में डमरू सुशोभित है। (इस पर सब शृंगार कर) शिवजी बैल पर चढ़कर चले, तब बाजे बजने लगे। शिवजी को देखकर देवताओं की स्त्रियाँ मुसकरा रही हैं (और कहती हैं कि) इस सुन्दर दूल्हे के योग्य दुलहिन संसार भर में नहीं है।

विशेष :—भाषा की व्यंजना द्रष्टव्य है।

बिष्नु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि-चढ़ि बाहन चले बराता ।।
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा ।।

व्याख्या :—विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओं के समूह अपनी-अपनी सवारियो पर चढ़कर बरात में चले। देवताओं का समाज सब प्रकार से अनुपम (परम सुन्दर) था, तो भी दूल्हे के योग्य बरात नहीं थी।

दो०—बिष्नु कहा अस बिहसि तब, बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज-निज सहित समाज ॥९२॥

व्याख्या :—तब विष्णु भगवान् ने सब दिक्पालों को बुलाकर और हँसकर कहा—सब अपने-अपने समाज (दल) सहित अलग-अलग चलो।

चौ०—बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई॥
बिष्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने॥

व्याख्या :—हे भाई! हम लोगों की यह बरात वर के योग्य नहीं है। क्या दूसरों के शहर में जाकर हँसी कराओगे? विष्णु भगवान् की बात सुनकर देवता मुसकराये और अपनी-अपनी सेनासहित अलग हो गये।

मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं। हरि के बिंग्य बचन नहिं जाहीं॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥

व्याख्या :—यह सुन शिवजी मन-ही-मन मुसकराये, उनके मन से भगवान् के व्यंग वचन नहीं जाते। अपने प्रिय के अत्यन्त प्रिय वचन सुनते ही महादेवजी ने भृंगी को भेजकर अपने गणों को बुलवा लिया।

सिव अनुसासन सुनि सब आए। प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाए॥
नाना बाहन नाना बेषा। बिहसे सिव समाज निज देखा॥

व्याख्या :—शिवजी की आज्ञा सुनकर सब गण चले आये और उन्होंने स्वामी के चरण-कमलों में सिर नवाया; भाँति-भाँति के वेष वाले अपने समाज को देखकर शिवजी हँसे।

कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू॥
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्टपुष्ट कोउ अति तन खीना॥

व्याख्या :—किसी के मुख ही नहीं और किसी के बहुत से मुख हैं, कोई बिना हाथ-पैर का है तो किसी के कई हाथ-पैर हैं। किसी के बहुत सी आँखें हैं तो कोई नेत्रहीन ही है। कोई बहुत मोटा-ताजा है तो कोई बहुत ही दुबला-पतला है।

छं०—तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।
भूषण कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें॥

खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन वेष अगनित को गनै।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगी जमात बरनत नहिं बनै ॥

व्याख्या :—कोई दुबला और कोई बहुत मोटा, कोई पवित्र और कोई अपवित्र वेप धारण किये हुए है। उनके भयंकर आभूषण हैं और सबके हाथों में कपाल हैं। वे सब ताजा खून अपने पर लगाये हुए हैं और गधे, कुत्ते, सूअर और सियार के से उनके मुख हैं। इस तरह गणों के अनगिनत वेषों को कौन. गिन सकता है ? बहुभांति के भूत, प्रेत, पिशाच और योगनियों की जमात थीं, जिनका वर्णन करते नहीं बनता।

सो०—नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब।
देखत अति विपरीत, बोलहिं वचन विचित्र बिधि ॥९३॥

व्याख्या :—सब भूत बड़े मौजी हैं, वे नाचते और गीत गाते हुए चल रहे हैं। वे देखने में बड़े बेढगे जान पड़ते हैं और बडे ही विचित्र ढग से बोलते हैं।

चौ०—जस दूलहु तसि बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता ॥
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना ॥

व्याख्या :—जैसा दूल्हा है वैसी ही बरात सजी है। मार्ग में तरह तरह के खेल-तमाशे होते जाते हैं। यहाँ हिमाचल ने ऐसा विचित्र मण्डप बनाया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

सैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं ॥
बन सागर सब नदीं तलावा। हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा ॥

व्याख्या :—संसार में जितने छोटे-बड़े पर्वत थे, जिनका वर्णन नहीं हो सकता और जितने वन, समुद्र, नदियाँ और तालाब थे, सबको हिमाचल ने निमन्त्रण भिजवाया।

कामरूप सुन्दर तनधारी। सहित समाज सहित बर नारी ॥
गए सकल तुहिनाचल गेहा। गावहिं मगल सहित सनेहा ॥

व्याख्या :—वे सब अपनी इच्छानुसार सुन्दर शरीर धारण करके, अपने समाज और सुन्दर स्त्रियों के साथ हिमाचल के घर गये और बड़े प्रेम से मंगलगीत गाने लगे।

प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए। जथाजोगु तहँ तहँ सब छाए ॥
पुर सोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु बिरंचि निपुनाई ॥

व्याख्या :—हिमाचल ने पहले से ही बहुत से घर सजवा रखे थे। उनमें इधर-उधर जो जिस लायक था उसको ठहराया। नगर की सुन्दर शोभा को देखकर ब्रह्माजी की रचना-चातुरी भी तुच्छ लगती थी।

छं०—लघु लाग बिधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही।
बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही॥
मंगल बिपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं।
बनिता पुरुष सुन्दर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं॥

व्याख्या :—नगर की शोभा देखकर ब्रह्माजी की निपुणता सचमुच तुच्छ लगती है। वन, बाग, कुएँ, तालाब और नदियों की सुन्दरता कौन कह सकता है? घर-घर में बड़े मांगलिक तोरण और ध्वजा-पताकाएँ सुशोभित हो रही हैं। वहाँ के सुन्दर और चतुर स्त्री-पुरुषों की छवि देखकर मुनियों के मन भी मोहित हो जाते हैं।

दो०—जगदंबा जहँ अवतरी, सो पुरु बरनि कि जाइ।
रिद्धि-सिद्धि संपत्ति सुख, नित नूतन अधिकाइ॥९४॥

व्याख्या :—जहाँ स्वयं जगम्बा ने अवतार लिया है, उस नगर का वर्णन कैसे हो सकता है? क्योंकि वहाँ ऋद्धि-सिद्धि, सम्पत्ति और सुख नित्य नये बढ़ते जाते हैं।

चौ०—नगर निकट बरात सुनि आई। पुर खरभरु सोभा अधिकाई॥
करि बनाव सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना॥

व्याख्या :—नगर के निकट बरात को आयी सुनकर नगर में चहल-पहल मच गयी, जिससे वहाँ की शोभा और भी बढ़ गयी। खूब बनाव-शृंगार करके और नाना प्रकार की सवारियों को सजाकर लोग बड़े आदर से बरात को लेने चले।

हियँ हरषे सुर सेन निहारी। हरिहि देखि अति भए सुखारी॥
सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे॥

व्याख्या :—वे देवताओं की सेना देखकर मन में प्रसन्न हुए और भगवान् विष्णु को देखकर बहुत ही सुखी हुए, पर जब शिवजी के समाज को देखने लगे तब तो उनके सब वाहन डरकर भाग चले।

धरि धीरजु तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने॥
गएँ भवन पूछहिं पितु माता। कहहिं बचन भय कंपित गाता॥

**व्याख्या :**—जो चतुर थे वे धीरज धरकर वहाँ डटे रहे, पर बालक तो सब अपने प्राण लेकर भागे। उनके घर जाने पर जब माता-पिता उनसे बरात का समाचार पूछते हैं, तब वे भय से काँपते हुए शरीर से ऐसे वचन कहते हैं—

**कहिअ काह कहि जाइ न बाता। जम कर धार किधौं बरिआता ॥**
**बरु बौराह बसहँ असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा ॥**

**व्याख्या :**—क्या कहें, कोई बात कही नहीं जाती। यह बरात है या यमराज की सेना? दूल्हा पागल है और बैल पर सवार है तथा सर्प, कपाल और राख ही उसके गहने हैं।

**छं०—तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा।**
**सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा ॥**
**जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही।**
**देखिहि सो उमा बिबाहु घर घर बात असि लरिकन्ह कही ॥**

**व्याख्या :**—दूल्हे के शरीर पर राख लगी है, साँप और कपाल के गहने हैं। वह नंगा, जटाधारी और भयंकर है। उसके साथ भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनियाँ और भयंकर मुख वाले राक्षस हैं। जो बरात देखकर जीते रहेंगे, सचमुच उनके बड़े पुण्य हैं और वे ही उमा का विवाह भी देखेंगे। लड़कों ने घर-घर यही बात कही।

**दो०—समुझि महेसा समाज सब, जननि जनक मुसुकाहिं।**
**बाल बुझाए बिबिध बिधि, निडर होहु डरु नाहिं ॥९५॥**

**व्याख्या :**—शिवजी का समाज जानकर सब लड़कों के माता-पिता मुसकराते हैं। उन्होंने अनेक प्रकार से लड़कों को समझाया कि निडर हो जाओ डर की कोई बात नहीं है।

**चौ०—लै अगवान बरातहि आए। दिए सबहि जनवास सुहाए ॥**
**मैनाँ सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी ॥**

**व्याख्या :**—अगवानी लोग बरात लिवा लाये और सभी को सुन्दर जनवासे ठहरने के लिये दिये। मैना ने शुभ आरती सजायी और उनके साथ की स्त्रियाँ मंगलगीत गाने लगी।

**कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी ॥**
**बिकट बेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा ॥**

व्याख्या :—उनके सुन्दर हाथों में सोने का थाल शोभायमान था। वे उसे लेकर प्रसन्न होती हुयी शिवजी का परछन करने चलीं। जब उन्होंने शिवजी का भयानक रूप देखा, तब स्त्रियों के हृदय में बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया।

भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गए महेसु जहाँ जनवासा॥
मैना हृदयँ भयउ दुखु भारी। लीन्ही बोलि गिरीस कुमारी॥

व्याख्या :—बड़े भारी डर के मारे वे भाग कर घरों में जा घुसीं और शिवजी जहाँ जनवासा था, वहाँ गये। उस समय मैना के हृदय में बड़ा भारी दु:ख हुआ और उन्होंने पार्वतीजी को अपने पास बुला लिया।

अधिक सनेहँ गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी॥
जेहिं बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥

व्याख्या :—उसे बड़े प्रेम से गोद में बैठाकर और नीलकमल के समान नेत्रों में आँसू भरकर बोली कि जिस विधाता ने तुम्हें ऐसा (अनुपम) रूप दिया, उसी मूर्ख ने तुम्हारा वर बावला कैसे बनाया?

छं०—कस कीन्ह बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुन्दरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं।
घरु जाउ अपजसु होइ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं॥

व्याख्या :—जिस विधाता ने तुम्हें सुन्दरता दी, उसने तुम्हारा वर बावला कैसे बनाया? जो फल कल्पवृक्ष में लगना चाहिये था, वह जबरदस्ती बबूल में लग रहा है। (हाय! मन में तो ऐसा आता है कि) मैं तुम्हें लेकर पहाड़ से गिर पड़ूँ, आग में जल मरूँ या समुद्र में डूब मरूँ। चाहे घर उजड़ जाय, संसार में अपकीर्ति हो, पर मैं जीते जी इस बावले वर से तुम्हारा विवाह नहीं करूँगी।

दो०—भईं बिकल अबला सकल, दुखित देखि गिरिनारि।
करि बिलापु रोदति बदति, सुता सनेहु सँभारि॥९६॥

व्याख्या :—हिमाचल की स्त्री मैना को दुखी देखकर सभी स्त्रियाँ व्याकुल हो गयीं। वह बेटी के प्रेम का विचार कर विलाप करती, रोती और कहती थीं—

चौ०—नारद कर मैं काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा॥

व्याख्या :- मैंने नारद का क्या बिगाड़ा था, जो उन्होंने मेरा बसा-बसाया घर उजाड़ दिया। उसने उमा को ऐसा उपदेश दिया कि जिससे उसने बावले पति के लिए तप किया।

साचेहुँ उन्ह कें मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया॥
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा॥

व्याख्या :—सचमुच उनको मोह-माया नहीं है। उनके न धन है, न घर है और न स्त्री ही है; वे सबसे उदासीन हैं; वे पराये घर को उजाड़ने वाले हैं, उन्हें न लाज है और न ही किसी का डर, इसीलिये ऐसे काम करते हैं। भला, बाँझ स्त्री प्रसव की पीड़ा को क्या जाने? (अगर उनके यहाँ लकड़ी होती और उसे ऐसा वर मिलता, तब वे जानते)।

विशेष :—"बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा", कहावत का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

जननिहि बिकल बिलोकि भवानी। बोली जुत बिबेक मृदु बानी॥
अस बिचारि सोचहि मति माता। सो न टरइ जो रचइ बिधाता॥

व्याख्या :—माता को दुखी देखकर पार्वतीजी विवेकयुक्त कोमल वाणी बोली—हे माता! जो विधाता ने रचा है, वह टल नहीं सकता। यह विचारकर आप सोच मत करो।

करम लिखा जौं बाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका॥

व्याख्या :—जो मेरे भाग्य में बावला ही पति लिखा है तो किसी को दोष क्यों लगाया जाय? क्या विधाता के अङ्क तुमसे मिट सकते है? हे माता! वृथा अपने सिर कलक मत लो।

छं०—जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं॥
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीं।
बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं॥

व्याख्या :—हे माता! अपने सिर कलंक मत लो, शोक का त्याग करो; उसके लिए यह अवसर नहीं है। जो कुछ सुख और दुःख मेरे भाग्य में

लिखा है उसे मैं जहाँ जाऊँगी; वहीं पाऊँगी। पार्वतीजी के ऐसे विनीत और कोमल वचन सुनकर सब स्त्रियाँ सोच करने लगीं और अनेक प्रकार से विधाता को दोष लगाकर आँखों से आँसू बहाने लगीं।

दो०—तेहि अवसर नारद सहित, अरु रिषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि, गवने तुरत निकेत ॥९७॥

व्याख्या :—इस समाचार को सुनते ही हिमाचल उसी समय नारद एवं सप्तर्षि को साथ लेकर शीघ्र ही अपने घर गये।

चौ०—तब नारद सबही समुझावा। पूरुब कथा प्रसंगु सुनावा॥
मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी॥

व्याख्या :—तब नारदजी ने सबको समझाया और उमा के पूर्व जन्म की कथा को सुनाया (और कहा) कि हे मैना! तुम मेरी सच्ची बात सुनो, तुम्हारी यह लड़की साक्षात् जगज्जननी भवानी है।

अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि॥
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला वपु धारिनी॥

व्याख्या :—ये अजन्मा, अनादि और अविनाशिनी शक्ति हैं और सदा शिवजी के अर्द्धाङ्ग में रहने वाली हैं। ये जगत् की उत्पत्ति, पालन और नाश करने वाली हैं और अपनी इच्छा से ही लीला-शरीर धारण करती हैं।

जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई। नामु सती सुन्दर तनु पाई॥
तहँहुँ सती संकरहि बिबाहीं। कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं॥

व्याख्या :—पहले ये दक्षराज के घर जन्मी थीं, इनका नाम सती था और इन्होंने अति सुन्दर शरीर भी पाया था। वहाँ भी सती शंकरजी को ब्याही गयी थी। यह कथा सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है।

एक बार आवत सिव संगा। देखेउ रघुकुल कमल पतंगा॥
भयउ मोहु सिव कहा न कीन्हा। भ्रम बस बेषु सीय कर लीन्हा॥

व्याख्या :—एक बार शिवजी के साथ आते हुए इन्होंने रघुकुलरूपी कमल के सूर्य श्रीराम को देखा, तब इन्हें मोह हो गया और शिवजी का कहना न मानकर भ्रमवश सीताजी का वेष धारण कर लिया।

छ०—सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं।
हर बिरहँ जाइ बहोरि पितु कें जग्य जोगानल जरीं॥

अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया ॥
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्वदा संकर प्रिया ॥

व्याख्या :—सतीजी ने जो सीता का वेष धारण किया उसी अपराध के कारण शिवजी ने उनको त्याग दिया। शिवजी से वियोग हो जाने के कारण वे फिर अपने पिता के घर यज्ञ में गयीं और वहीं योगाग्नि में जल गयीं। अब इन्होंने तुम्हारे घर जन्म लेकर अपने पति के लिए कठिन तप किया है। यह जानकर सन्देह दूर करो क्योंकि पार्वतीजी तो सदा ही शिवजी की प्रिया हैं।

दो०—सुनि नारद के बचन तब, सबकर मिटा बिषाद।
छन महुँ ब्यापेउ सकल पुर, घर घर यह संबाद ।९८॥

व्याख्या :—तब नारदजी के वचन सुनकर सबका दुःख मिट गया और क्षण भर में यह समाचार सारे नगर में घर-घर फैल गया।

चौ०—तब मयना हिमवंतु अनंदे। पुनि-पुनि पारवती पद बन्दे ॥
नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने। नगर लोग सब अति हरषाने ॥

व्याख्या :—उस समय मैना और हिमवान् प्रसन्न हुए और उन्होंने बार-बार पार्वती के चरणों की वन्दना की। नगर के सभी लोग स्त्री, पुरुष, युवा, बालक और वृद्ध बहुत प्रसन्न हुए।

लगे होन पुर मंगलगाना। सजे सबहिं हाटक घट नाना ॥
भाँति अनेक भई जेवनारा। सूपसास्त्र जस कछु व्यवहारा ॥

व्याख्या :—नगर में मंगलगीत गाये जाने लगे और सभी ने भाँति-भाँति के सुवर्ण के कलश सजाये। पाकशास्त्र में जैसी रीति है, उसके अनुसार अनेक भाँति की ज्योनार हुयी।

सो जेवनार कि जाइ बखानी। बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी ॥
सादर बोले सकल बराती। बिष्नु बिरंचि देव सब जाती ॥

व्याख्या :—जिस घर में माता भवानी रहती हैं, वहाँ की ज्योनार का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? ब्रह्मा, विष्णु, सब जाति के देवताओं और सब बरातियों को राजा हिमवान् ने आदरपूर्वक बुलवाया।

बिबिध पाँति बैठी जेवनारा। लागे परुसन निपुन सुआरा ॥
नारिबृन्द सुर जेवँत जानी। लगीं देन गारीं मृदु बानी ॥

व्याख्या :—भोजन करने वालों की बहुतसी पंगतें बैठीं। चतुर रसोइये परोसने लगे। स्त्रियों ने जब देवताओं को जीमते हुए जाना तो वे

कोमल वाणी सें गालियाँ देने लगीं।

छं०—गारीं मधुर स्वर देहिं सुन्दरि विंग्य वचन सुनावहीं।
भोजनु करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सचु पावहीं॥
जेवँत जो बढ़्यो अनंदु सो मुख कोटिहू न परै कह्यो।
अचवाँइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रह्यो॥

व्याख्या :—सुन्दरी स्त्रियाँ मीठे स्वर में गालियाँ देने लगीं और व्यंग्यभरे वचन सुनाने लगीं। देवगण विनोद-वचन सुनकर सुख पाते हैं और इसीलिये भोजन करने में बड़ी देर लगा रहे हैं। भोजन के समय जो आनन्द बढ़ा, वह करोड़ों मुखों से भी कहते नहीं बनता। (भोजन करने के बाद) सबके हाथ धुलाकर पान दिये गये। फिर सब लोग, जो जहाँ ठहरे थे वहाँ चले गये।

दो०—बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहुँ, लगन सुनाई आइ।
समय बिलोकि बिवाह कर, पठए देव बोलाइ॥९९॥

व्याख्या :—फिर मुनियों ने आकर हिमाचल को लगन (लगन-पत्रिका) सुनायी और विवाह का समय देखकर देवताओं को बुला भेजा।

चौ०—बोलि सकल सुर सादर लीन्हे। सबहि जथोचित आसन दीन्हे॥
बेदी बेद बिधान सँवारी। सुभग सुमंगल गावहिं नारी॥

व्याख्या :—सब देवताओं को आदर-सहित बुलाकर सबको यथा-योग्य आसन दिये। वेद की रीति से वेदी सजाई गयी और सुन्दर स्त्रियाँ मंगल-गीत गाने लगीं।

सिंघासनु अति दिव्य सुहावा। जाइ न बरनि बिरंचि बनावा॥
बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई। हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई॥

व्याख्या :—वेदिका पर एक अति सुन्दर दिव्य सिंहासन था, जिसकी विचित्र बनावट का वर्णन नहीं किया जा सकता, उसे स्वयं ब्रह्माजी ने बनाया था। अपने स्वामी श्रीराम का स्मरण कर और ब्राह्मणों को सिर नवाकर शिवजी उस सिंहासन पर बैठ गये।

बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं। करि सिंगारु सखीं लै आईं॥
देखत रूपु सकल सुर मोहे। बरनै छबि अस जग कबि को है॥

व्याख्या :—फिर मुनीश्वरों ने उमा को बुलाया। सखियाँ शृंगार करके उन्हें लिवा लाईं। पार्वतीजी के रूप को देखते ही सब देवता मोहित हो

गये। (जहाँ देवताओं का यह हाल था फिर भला) संसार में ऐसा कौनसा कवि है जो उस छवि (सुन्दरता) का वर्णन कर सके।

जगदंबिका जानि भव भामा। सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा॥
सुन्दरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी॥

व्याख्या :—पार्वतीजी को जगदम्बा और शिवजी की पत्नी समझकर सब देवताओं ने मन-ही-मन प्रणाम किया। पार्वतीजी सुन्दरता की मर्यादा हैं, उनकी शोभा का बखान करोड़ों मुखों से भी नहीं हो सकता।

छं०—कोटिहुँ बदन नहिं बनै बरनत जग जननि सोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद मंदमति तुलसी कहा॥
छवि खानि मातु भवानी गवनीं मध्य मण्डप सिव जहाँ।
अवलोकि सकहिं न सकुच पति पद कमल मनु मधुकरु तहाँ॥

व्याख्या :— जगज्जननी पार्वतीजी की महान् शोभा का वर्णन करोड़ों मुखों से भी करते नहीं बनता। वेद, शेषनाग और सरस्वती तक उसे कहते सकुचाते हैं। तब मन्दबुद्धि तुलसी क्या है? सुन्दरता की खान माता भवानी मंडप के बीच में जहाँ शिवजी थे, वहाँ गयी। वे पति के चरणकमलों को जहाँ उनका मनरूपी भ्रमर रसपान कर रहा था, सकोच के मारे देख नहीं सकतीं।

दो०—मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि, सुर अनादि जियँ जानि॥१००॥

व्याख्या :—मुनियों की आज्ञा से शिवजी और पार्वती ने गणेशजी की पूजा की। इस बात को सुनकर कोई अपने मन में सन्देह न करे (कि गणेशजी तो शिव-पार्वती की ही सन्तान हैं, फिर उनकी पूजा क्यों) क्योंकि देवता अनादि हैं, ऐसा ही मन में समझना चाहिये।

चौ०—जसि बिबाह कै बिधि श्रुति गाई। महामुनिन्ह सो सब करवाई॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहि समरपीं जानि भवानी॥

व्याख्या :—विवाह की जैसी रीति वेदों में कही गई है, महामुनियों ने वह सभी रीति करवायी। पर्वतराज हिमाचल ने हाथ में कुश लेकर तथा कन्या का हाथ पकड़कर उसे भवानी (शिव-पत्नी) जान शिवजी को समर्पण किया।

पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हियँ हरषे तब सकल सुरेसा॥
बेदमंत्र मुनिबर उच्चरहीं। जय जय जय संकर सुर करहीं॥

व्याख्या :—जब महादेवजी ने पार्वती का पाणिग्रहण किया, तब सब देवता हृदय में बहुत ही प्रसन्न हुए। श्रेष्ठ मुनिगण वेदमन्त्रों का उच्चारण करने लगे और देवगण शिवजी की जय-जयकार करने लगे।

बाजहिं बाजन विविध विधाना। सुमनवृष्टि नभ भै विधि नाना।।
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू।।

व्याख्या :—अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे और आकाश से नाना भाँति के पुष्पों की वर्षा होने लगी। शिव-पार्वती का विवाह हो गया, (इससे) सब लोकों में आनन्द छा गया।

दासीं दास तुरग रथ नागा। धनु बसन मनि वस्तु बिभागा।।
अन्न कनकभाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना।।

व्याख्या :—दासी, दास, घोड़े रथ, हाथी, गाय, वस्त्र, मणि आदि अनेक प्रकार की चीजें, अन्न एवम् सोने के बर्तन गाड़ियों में लदवाकर दहेज में दिये, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

छं०—दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो।
का देउँ पूरनकाम संकर चरन पंकज गहि रह्यो।।
सिवँ कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहिं कियो।
पुनि गहे पद पाथोज मयनाँ प्रेम परिपूरन हियो।।

व्याख्या :—अनेक प्रकार का दहेज देकर और फिर हाथ जोड़कर पर्वतराज हिमाचल ने कहा—हे शंकर ! आप पूर्ण काम हैं, मैं आपको क्या दे सकता हूँ ? इतना कहकर वे शिवजी के चरणकमल पकड़ कर रह गये। तब कृपा के सागर शिवजी ने सब प्रकार से अपने ससुर का समाधान किया। फिर प्रेम से परिपूर्णहृदय मैनाजी ने शिवजी के चरणकमल पकड़े।

दो०—नाथ उमा मम प्रान सम, गृहकिंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब, होइ प्रसन्न बर देहु।।१०१।।

व्याख्या :—(और कहा) हे नाथ ! उमा मुझे प्राणों के समान प्यारी है, आप इसे अपने घर की टहलनी बनाइयेगा और आप इसके सब अपराध क्षमा करते रहेंगे। प्रसन्न होकर मुझे यह वर दीजिये।

चौ०—बहु बिधि संभु सासु समुझाई। गवनी भवन चरन सिरु नाई।।
जननीं उमा बोलि तब लीन्ही। लै उछंग सुन्दर सिख दीन्ही।।

व्याख्या :—बहुत तरह से शिवजी ने सास को समझाया और तब वे चरणों में सिर नवाकर घर गयीं। तब माता ने पार्वती को बुलाया और उसे गोद में बैठाकर सुन्दर शिक्षा दी।

करेहु सदा संकर पद पूजा। नारिधरमु पति देउ न दूजा॥
बचन कहत भरे लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी॥

व्याख्या :—हे उमा! तू सदा शिवजी के चरणों की पूजा करना, स्त्रियों का यही धर्म है। उनके लिए पति को छोड़कर दूसरा देवता नहीं है। इस प्रकार की बातें कहते-कहते उनकी आंखों में आंसू भर आये और फिर उन्होंने बेटी को छाती से लगा लिया।

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहु सुखु नाहीं॥
भै अति प्रेम बिकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी॥

व्याख्या :—(और कहने लगीं कि हाय!) विधाता ने संसार में स्त्री को क्यों पैदा किया? (क्योंकि वह सदा पराधीन रहती है और) पराधीन को (यों तो क्या) सपने में भी सुख नहीं मिलता। ऐसा कहते हुए माता प्रेम में अत्यन्त विकल हो गयी, परन्तु कुसमय जानकर उन्होंने धीरज धरा।

पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेमु कछु जाइ न बरना॥
सब नारिन्ह मिलि भेटि भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी॥

व्याख्या :— मैना बार-बार मिलती है और पार्वतीजी के चरणों को पकड़ कर गिर पड़ती है (क्या कहूं) इतना अधिक प्रेम है कि उसका कुछ बखान नहीं हो सकता। भवानी सब स्त्रियों से मिल-भेंटकर फिर अपनी माता के हृदय से जा लिपटीं।

छंद—जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहूँ दईं।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखीं लै सिव पहिं गईं॥
जाचक सकल संतोषि संकरु उमा सहित भवन चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले॥

व्याख्या :—पार्वतीजी माता से फिर मिलकर चलीं, तब सबने उन्हें योग्य आशीर्वाद दिये। वे बार-बार फिर-फिरकर माता की ओर देखती जाती थीं, तब सखियां उन्हें लेकर शिवजी के पास गयीं। शिवजी सब याचकों को सन्तुष्ट कर उमा को विदा कराकर घर चले। उस समय सब देवता प्रसन्न हुए, फूलों की वर्षा हुयी और आकाश में सुन्दर नगाड़े बजने लगे।

दो०—चले संग हिमवंतु तव, पहुँचावन अति हेतु ।
विविध भाँति परितोषु करि, विदा कीन्ह वृषकेतु ॥१०२॥

व्याख्या :—तब हिमवान् अत्यन्त प्रेम से पहुँचाने के लिए साथ चले, पर शिवजी ने उन्हें बहुत तरह से समझा-बुझाकर विदा किया ।

चौ०—तुरत भवन आए गिरिराई । सकल सैल सर लिए बोलाई ॥
आदर दान विनय बहुमाना । सब कर विदा कीन्ह हिमवाना ॥

व्याख्या :—पर्वतराज हिमाचल तुरन्त घर को लौट आए और उन्होंने सब पर्वतों और सरोवरों को बुला लिया । हिमवान् ने आदर, दान, विनय और बहुत अधिक सम्मान-सहित सबको विदा किया ।

जबहिं संभु कैलासहिं आए । सुर सब निज-निज लोक सिधाए ॥
जगत मातु पितु संभु भवानी । तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी ॥

व्याख्या :—जब शिवजी कैलास पर आए तब सब देवता अपने-अपने लोको को चले गये । ( तुलसीदासजी कहते है कि ) पार्वतीजी और शिवजी जगत् के माता-पिता हैं, इसीलिये मैं उनके शृंगार का वर्णन नहीं करता ।

करहिं विविध बिधि भोग विलासा । गनन्ह समेत वसहिं कैलासा ॥
हर गिरिजा विहार नित नयऊ । एहि विधि विपुल काल चलि गयऊ ॥

व्याख्या :—वे अनेक प्रकार से भोग-विलास करते हुए अपने गणों सहित कैलाश पर रहने लगे । शिव-पार्वती का नित्य नया विहार होने लगा । इस प्रकार बहुत समय बीत गया ।

तब जनमेउ षटवदन कुमारा । तारकु असुर समर जेहिं मारा ॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । षन्मुख जन्मु सकल जग जाना ॥

व्याख्या :—तब छः मुखवाले पुत्र (स्वामिकार्तिक) का जन्म हुआ, जिन्होंने (बड़े होने पर) युद्ध में तारकासुर को मारा । स्वामिकार्तिक के जन्म की कथा वेदों, शास्त्रों और पुराणों में प्रसिद्ध है और सारा संसार उसे जानता है ।

छंद—जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा ।
तेहि हेतु मैं वृषकेतु सुत कर चरित संछेपहि कहा ॥
यह उमा संभु बिबाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं ।
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्वदा सुखु पावहीं ॥

व्याख्या :—स्वामिकार्तिक के जन्म, कर्म, प्रताप और महान् पुरुषार्थ

को सारा संसार जानता है। इसी कारण मैंने वृषकेतु शिवजी के पुत्र का चरित्र संक्षेप में ही कहा है। जो स्त्री-पुरुष शिव-पार्वती के विवाह की इस कथा को कहेंगे और गायेंगे वे कल्याण के कार्यों और विवाहादि मगलों में सदा सुख पावेंगे।

**दो०—चरित सिंधु गिरिजा रमन, बेद न पावहिं पारु।**
**बरनै तुलसीदास किमि, अति मतिमंद गवाँरु ॥१०३॥**

**व्याख्या :**—गिरिजापति शिवजी का चरित्र समुद्र के समान अपार है, वेद भी उसका पार नहीं पाते। फिर अत्यन्त मन्दबुद्धि और गँवार तुलसीदास उसका वर्णन कैसे कर सकता है ?

**चौ०—संभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा ॥**
**बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी ॥**

**व्याख्या :**—शिवजी के सरस और सुहावने चरित्र को सुनकर भरद्वाज मुनि ने बहुत ही सुख पाया। कथा पर उनकी लालसा बहुत बढ़ गयी, नेत्रों में जल भर आया और (हर्ष के कारण) रोमावली खड़ी हो गयी।

**प्रेम बिबस मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी ॥**
**अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा। तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा ॥**

**व्याख्या :**—अति प्रेम के कारण मुख से वाणी नही निकलती। उनकी यह दशा देखकर ज्ञानी मुनि याज्ञवल्क्यजी बहुत प्रसन्न हुए (और बोले) हे मुनीश ! अहा हा ! तुम्हारा जन्म धन्य है, क्योंकि गौरीपति शिवजी तुम्हें प्राणों के समान प्रिय हैं।

**विशेष** —'प्रान सम प्रिय गौरीसा' में उपमा अलंकार है।

**सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं ॥**
**बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू ॥**

**व्याख्या :**—जिनकी शिवजी के चरणकमलों में प्रीति नहीं है, वे श्रीराम को स्वप्न में भी अच्छे नहीं लगते। शिवजी के चरणों में निष्कपट प्रेम होना ही रामभक्त का लक्षण है।

**विशेष :**—'सिव पद कमल' मे रूपक अलंकार है।

**सिवसम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी ॥**
**पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई ॥**

**व्याख्या :**—शिवजी के समान श्रीराम की भक्ति का व्रत धारण करने

वाला कौन है ? जिन्होंने विना किसी पाप के सती जैसी स्त्री को त्याग दिया और प्रण करके श्री रघुनाथजी की भक्ति को दिखा दिया। हे भाई ! श्रीराम को शिवजी के समान और कौन प्रिय हो सकता है ?

दो०—प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित, बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के, रहित समस्त विकार ॥१०४॥

व्याख्या :—मैंने पहले शिवजी का चरित्र कहकर तुम्हारा मर्म समझ लिया है कि तुम श्रीराम के पवित्र सेवक हो और सब दोषों से रहित हो।

चौ०—मैं जाना तुम्हार गुन सीला। कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला॥
सुनु मुनि आजु समागम तोरें। कहि न जाइ जस सुखु मन मोरें॥

व्याख्या :—मैंने तुम्हारे गुण और शील को जान लिया है। इसीलिये अब मैं तुम से श्रीराम की लीला कहता हूँ, सुनो। हे मुनि ! सुनो, आज तुम्हारे मिलने से मेरे मन में जो सुख हुआ है, वह कहा नहीं जाता।

रामचरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा॥
तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी॥

व्याख्या :—हे मुनीश्वर ! रामचरित्र अत्यन्त अपार है। सौ करोड़ शेषनाग भी उसे कह नहीं सकते। तो भी जैसा मैंने सुना है वैसा, वाणी के स्वामी और धनुषधारी श्रीराम का स्मरण करके कहता हूँ।

सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी॥
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कवि उर अजिर नचावहिं बानी॥

व्याख्या :—सरस्वतीजी कठपुतली के समान हैं और अन्तर्यामी प्रभु श्रीराम सूत्रधार हैं। अपना भक्त जानकर वे जिस पर कृपा करते हैं उसी कवि के हृदय रूपी आँगन में सरस्वती को नचाते हैं।

विशेष :—उपमा एवं रूपक अलंकार।

प्रनवउँ सोइ कृपाल रघुनाथा। बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा॥
परम रम्य गिरिवरु कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू॥

व्याख्या :—उन्हीं कृपालु श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ और उन्हीं की निर्मल गुण-गाथा का वर्णन करता हूं। कैलास पर्वतों में श्रेष्ठ और परम रमणीक है, जहाँ शिव-पार्वतीजी सदा निवास करते हैं।

दो०—सिद्ध तपोधन जोगिजन, सुर किंनर मुनिवृंद।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल, सेवहिं सिव सुखकंद ॥१०५॥

व्याख्या :—सिद्ध, तपस्वी, योगीगण, देव, किन्नर और मुनियों के समूह, ये सब पुण्यात्मा वहाँ रहते हैं और आनन्दकन्द शिवजी की सेवा करते हैं।

चौ०—हरि हर विमुख धर्म रति नाहीं। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं॥
तेहि गिरि पर वट विटप बिसाला। नित नूतन सुंदर सब काला॥

व्याख्या :—जो भगवान् विष्णु और महादेवजी से विमुख हैं तथा जिनकी धर्म में प्रीति नहीं है, वे मनुष्य वहाँ स्वप्न में नहीं जा सकते। उसी पर्वत पर एक विशाल बरगद का पेड़ है, जो नित्य नया और सब ऋतुओं में सुन्दर बना रहता है।

त्रिविध समीर सुसीतलि छाया। सिव बिश्राम विटप श्रुति गाया॥
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु बिलोकि उर अति सुखु भयऊ॥

व्याख्या :—वहाँ तीनों प्रकार की—शीतल, मन्द और सुगन्धित पवन बहती रहती है और उसकी छाया बहुत शीतल रहती है। वही शिवजी के विश्राम करने का वृक्ष है, जिसे वेदों ने गाया है। एक बार प्रभु शंकर उसी वृक्ष के नीचे गये और उसे देखकर उनके हृदय में अत्यन्त सुख हुआ।

निज कर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहिं संभु कृपाला॥
कुंद इंदु दर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा॥

व्याख्या :—अपने हाथ से बाघम्बर बिछाकर कृपालु शिवजी स्वभाव से ही (बिना किसी विशेष प्रयोजन के) वहाँ बैठ गये। उनका शरीर कुन्द के पुष्प, चन्द्रमा और शंख के समान गोरा था, बड़ी लम्बी भुजाएँ थीं और वे मुनियों के से वस्त्र पहिने हुए थे।

तरुन अरुन अंबुज सम चरना। नख दुति भगत हृदय तम हरना॥
भुजग भूति भूषण त्रिपुरारी। आननु सरद चंद छबी हारी॥

व्याख्या :—हाल में खिले हुए लाल कमल के समान उनके चरन थे और नखों की ज्योति भक्तों के हृदय के अँधेरे को दूर करने वाली थी। सर्प और भस्म ही उन त्रिपुरारि के भूषण थे और उनका मुख शरद् के चन्द्रमा की सुन्दरता को भी हरने वाला था।

विशेष :—उपमा एवम् व्यतिरेक अलंकार।

दो०—जटा मुकुट सुरसरित सिर, लोचन नलिन बिसाल।
नीलकंठ लावन्यनिधि, सोह बालबिधु भाल॥१०६॥

व्याख्या :—उनके सिर पर जटाओं का मुकुट और गंगाजी थीं, कमल के समान बड़े-बड़े नेत्र थे, उनका नीला कण्ठ था और मस्तक पर दूज का चन्द्रमा शोभायमान था। (इस प्रकार) वे सुन्दरता के भण्डार थे।

## शिव-पार्वती-संवाद

चौ०—बैठे सोह कामरिपु कैसें। धरें सरीरु सांतरसु जैसें॥
पारवती भल अवसरु जानी। गईं संभु पहिं मातु भवानी॥

व्याख्या :—वहाँ बैठे हुए कामदेव के शत्रु शिवजी ऐसे शोभित हो रहे थे, जैसे शान्त रस ही शरीर धारण किये बैठा हो। अच्छा अवसर जानकर शिवपत्नी माता भवानी उनके पास गयी।

जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बाम भाग आसनु हर दीन्हा॥
बैठीं सिव समीप हरषाई। पूरुब जन्म कथा चित आई॥

व्याख्या :—शिवजी ने उन्हें अपनी प्रिया जानकर बहुत आदर किया और अपनी बाँई ओर बैठने के लिए आसन दिया। शिवजी के पास बैठकर पार्वतीजी प्रसन्न हुयीं। ( उसी समय ) उन्हें पूर्व जन्म की कथा स्मरण हो आयी।

पति हियँ हेतु अधिक अनुमानी। बिहसि उमा बोलीं प्रिय बानी॥
कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी॥

व्याख्या :—पति के हृदय में बड़ा प्रेम जानकर पार्वतीजी हँसकर प्रिय वचन बोलीं। ( याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि ) जो कथा सम्पूर्ण संसार का भला करने वाली है, उसे ही पार्वतीजी पूछना चाहती हैं।

बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी॥
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पंकज सेवा॥

व्याख्या :—हे संसार के स्वामी! मेरे पति और त्रिपुरासुर का नाश करने वाले! आपकी महिमा तीनों लोकों में विख्यात है। जितने चर, अचर नाग, मनुष्य और देवता हैं, सब आपके चरणकमलों की सेवा करते हैं।

दो०—प्रभु समरथ सर्बग्य सिव, सकल कला गुन धाम॥
जोग ग्यान बैराग्य निधि, प्रनत कलपतरु नाम॥१०७॥

व्याख्या :—हे प्रभो! आप समर्थ, सर्वज्ञ और कल्याणरूप हैं। सब कलाओं और गुणों के धाम हैं और योग, ज्ञान और वैराग्य के भण्डार हैं। शरणागतों के लिए आपका नाम कल्पवृक्ष है।

चौ०—जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिअ सत्य मोहि निज दासी॥
तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना॥

व्याख्या :—हे आनन्दस्वरूप ! जो आप मुझ पर प्रसन्न हैं और सचमुच मुझे अपनी दासी जानते हैं, तो हे प्रभो ! श्रीराम की नाना प्रकार की कथा कहकर मेरा अज्ञान दूर कीजिये।

जासु भवनु सुरतरु तर होई। सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई॥
ससिभूषन अस हृदयँ बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी॥

व्याख्या :—जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो, वह क्या दरिद्रता से उत्पन्न दुःख को सहेगा ! हे शशिभूषण ! हृदय में ऐसा विचारकर, हे नाथ ! मेरी बुद्धि के भारी भ्रम को दूर कीजिये।

प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी॥
सेस सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना॥

व्याख्या :—हे प्रभो ! जो मुनि परमार्थवादी हैं, वे श्रीराम को अनादि ब्रह्म कहते हैं और शेषनाग, सरस्वती, वेद और पुराण सभी श्रीरघुनाथजी के गुणों का गान करते हैं।

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई॥

व्याख्या :—और हे कामदेव के शत्रु ! आप भी दिन-रात आदरपूर्वक राम-राम जपा करते हैं। ये राम वही अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र हैं या कोई और अजन्मा, निर्गुण, निराकार ब्रह्म राम हैं।

दो०—जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि, नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥१०८॥

व्याख्या :—यदि वे राजपुत्र हैं और स्त्री के विरह में उनकी मति भोली (बावली) हो गयी, तो वे परब्रह्म कैसे हो सकते हैं ! उनके ऐसे चरित्र देखकर और उनकी महिमा सुनकर मेरी बुद्धि बड़े भ्रम में पड़ गयी है।

चौ०—जौं अनीह ब्यापक बिभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ॥
अग्य जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू॥

व्याख्या :—जो इच्छा-रहित, सर्वव्यापक ब्रह्म कोई और है, तो हे स्वामी ! उसे समझाकर कहिए। मुझे नादान समझकर हृदय में क्रोध नहीं करना और जिस तरह से मेरा मोह दूर हो, वही कीजिये।

मैं बन दीखि राम प्रभुताई। अति भय विकल न तुम्हहि सुनाई॥
तदपि मलिन मन बोधु न आवा। सो फलु भली भाँति हम पावा॥

व्याख्या :—मैंने बन में श्रीराम की प्रभुता देखी थी, लेकिन भय से अत्यन्त व्याकुल होने के कारण मैंने उसे आपको नहीं सुनाया। तो भी मेरे मलिन मन में ज्ञान नहीं हुआ और उसका फल भी मैंने अच्छी तरह पा लिया।

अजहूँ कछु संसउ मन मोरें। करहु कृपा बिनवउँ कर जोरें॥
प्रभु तव मोहि बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा॥

व्याख्या :—अब भी मेरे मन में कुछ सन्देह है। आप कृपा कीजिये, मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। हे प्रभो! तब आपने मुझे बहुत तरह से समझाया था (फिर भी मैं नहीं समझी), हे नाथ! उस बात को यादकर क्रोध मत करना।

तब कर अस बिमोह अब नाहीं। राम कथा पर रुचि मन माहीं॥
कहहु पुनीत राम गुन गाथा। भुजगराज भूषन सुरनाथा॥

व्याख्या :—मुझे अब पहले जैसा मोह नहीं है तथा श्रीराम की कथा पर अब हृदय में प्रेम है। (इसीलिये) हे शेषनाग को अलंकार रूप में धारण करने वाले देवताओं के नाथ! आप श्रीराम के गुणों की पवित्र कथा कहिये।

दो०— बंदउँ पद धरि धरनि सिरु, बिनय करउँ कर जोरि।
धरनहु रघुबर बिसद जसु, श्रुति सिद्धान्त निचोरि॥१०९॥

व्याख्या :—मैं पृथ्वी पर सिर टेक आपके चरणों की वन्दना करती हूँ और हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि आप वेदों के सिद्धान्त को निचोड़कर श्रीरघुनाथजी के निर्मल यश का वर्णन कीजिये।

चौ०—जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी॥
गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥

व्याख्या :—यद्यपि स्त्री होने के कारण मैं उसे सुनने की अधिकारिणी नही हूँ, तो भी मैं मन, कर्म और वचन से आपकी दासी हूँ। साधु जन जहाँ आर्त अधिकारी पाते हैं, वहाँ गूढ़ तत्त्व को भी उनसे नहीं छिपाते।

अति आरति पूछउँ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपुधारी॥

व्याख्या :—हे देवताओं के स्वामी! मैं बहुत ही दीनता से पूछती

हूँ, आप मुझ पर दया करके श्रीरघुनाथजी की कथा कहिये। पहले तो वह कारण विचार के कहिये जिससे निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है।

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिबाहीं। राज तजा सो दूषन काहीं॥

व्याख्या :—हे प्रभो! फिर श्रीराम के अवतार की कथा कहिये (कि क्यों हुआ) और उनका उदार बालचरित्र सुनाइये। फिर जिस प्रकार उन्होंने जानकीजी से विवाह किया, वह कथा कहिये और बतलाइये कि किस दोष के कारण उन्होंने राज्य छोड़ा?

बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला। सकल कहहु संकर सुखसीला॥

व्याख्या :—फिर उन्होंने वन में रहकर जो अपार चरित्र किये और जिस तरह रावण को मारा, हे नाथ! वह सब कहिये। हे सुखस्वरूप शंकर! राज्य-सिंहासन पर बैठकर भी जो उन्होंने बहुत सी लीलाएँ करीं, उन सबको कहिये।

दो०—बहुरि कहहु करुनायतन, कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुबंसमनि, किमि गवने निज धाम॥११०॥

व्याख्या :—फिर, हे दया-निधान! श्रीराम ने जो अद्भुत चरित्र किये उन्हें भी कहिये। वे रघुकुल शिरोमणि प्रजा-सहित अपने धाम वैकुण्ठ को कैसे गये?

चौ०--पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥

व्याख्या :—हे प्रभो! फिर आप उस तत्त्व को समझाकर कहिये, जिसकी अनुभूति में ज्ञानी मुनिगण सदा मग्न रहते हैं; फिर भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य का विभाग सहित वर्णन कीजिये।

औरउ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई॥

व्याख्या :—हे नाथ! श्रीराम के और भी जो अनेक रहस्य हैं, उनको कहिये, जिससे अति निर्मल विवेक (उत्पन्न) हो। हे प्रभो! जो बात मैंने न भी पूछी हो, उसे हे दयालु! आप छिपा न रखियेगा।

तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना। आन जीव पाँवर का जाना।।
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई।।

व्याख्या :—वेदों ने आपको तीनों लोकों का गुरु कहा है। दूसरे नीच जीव इस रहस्य को क्या जान सकते हैं? पार्वतीजी के सहज, सुन्दर और छलरहित प्रश्न शिवजी के मन को बहुत ही अच्छे लगे।

हर हियँ रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए।।
श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानन्द अमित सुख पावा।।

व्याख्या :—(पार्वती की मृदु वाणी सुनकर) महादेवजी के हृदय में श्रीराम के सब चरित्र आ गये, प्रेम से उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में जल भर आया। श्रीरामजी का रूप उनके हृदय में आ गया (अर्थात् उन्हें साक्षात् श्रीराम के दर्शन होने लगे), जिससे स्वयं परमानन्द-स्वरूप शिवजी ने भी अपार सुख पाया।

दो०—मगन ध्यान रस दंड जुग, पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब, हरषित बरनै लीन्ह।।१११।।

व्याख्या :—दो घड़ी तक शिवजी ध्यान के आनन्द में मग्न रहे, फिर मन को ध्यान से हटाकर, महादेवजी ने प्रसन्न होकर रामचरित कहना आरम्भ किया।

चौ०—झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें। जिमि भुजग बिनु रजु पहिचानें।।
जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन भ्रम जाई।।

व्याख्या :—जिनको बिना जाने झूठा (संसार) भी सच्चा मालूम होता है जैसे रस्सी को पहिचाने बिना साँप का भ्रम हो जाता है, और जिनके जान लेने से संसार इस प्रकार छूट जाता है, जैसे जागने पर स्वप्न का भ्रम जाता रहता है।

बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू।।
मंगलभवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी।।

व्याख्या :—मैं उन्हीं श्रीराम के बालरूप की वन्दना करता हूँ जिनका नाम जपने से सभी सिद्धियाँ सहज में ही मिल जाती हैं। मंगल के धाम और अमंगल के हरने वाले तथा दशरथ के आँगन में खेलने वाले श्रीराम मुझ पर दया करें।

करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी ॥
धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी ॥

व्याख्या :—शिवजी श्रीराम को प्रणाम कर और प्रसन्न होकर अमृत के समान वाणी बोले कि हे गिरिराजकुमारी ! तुम धन्य हो ! धन्य हो !! तुम्हारे समान अन्य कोई उपकारी नहीं है।

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा ॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी ॥

व्याख्या —तुमने श्रीरघुनाथजी की कथा का प्रसंग पूछा है, जो समस्त लोकों को गंगाजी के समान पवित्र करने वाली है। तुम श्रीराम के चरणों में प्रेम रखने वाली हो। तुमने केवल ससार के हित के लिए ही प्रश्न किये हैं।

दो०—रामकृपा तें पारबति, सपनेहुँ तव मन माहिं।
सोक मोह संदेह भ्रम, मम बिचार कछु नाहिं ॥११२॥

व्याख्या :—हे पार्वती ! श्रीराम की कृपा से मेरे विचार में तो तुम्हारे मन में स्वप्न में भी शोक, मोह, सन्देह और भ्रम कुछ भी नहीं है।

चौ०—तदपि असंका कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सब कर हित होई ॥
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना ॥

व्याख्या :—फिर भी तुमने वही (पुरानी) शङ्का की है, जिससे इस प्रसंग के कहने-सुनने से सबका हित होगा। जिन्होंने अपने कानों से भगवान् की कथा नहीं सुनी, उनके कानों के छेद सांप के बिलों के समान हैं।

विशेष :— उपमा अलंकार।

नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा ॥
सिर कटु तुंबरि समतूला। जो न नमत हरि गुर पद मूला ॥

व्याख्या :— जिन्होंने अपने नेत्रों से संतों के दर्शन नहीं किये, उनकी वे आँखें मोरपंख पर दीखने वाली आँखों के समान वृथा हैं। जो सिर भगवान् और गुरु के चरणों में नहीं झुकते वे कड़वी तूंबी के समान हैं।

जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी ॥
जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना ॥

व्याख्या :—जिनके हृदय में भगवान् की भक्ति का प्रादुर्भाव नहीं हुआ, वे प्राणी जीते हुए भी मृतक के समान हैं। जो जीभ श्रीराम के गुणों का गान

नहीं करती, वह मेंढक की जीभ के समान है।

विशेष :—उपमा अलंकार।

कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती।।
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुरहित दनुज बिमोहनसीला।।

व्याख्या :—वह हृदय वज्र के समान कठोर और निष्ठुर है, जो भगवान् श्रीराम के चरित्र सुनकर प्रसन्न नहीं होता। हे पार्वती! श्रीराम की लीला सुनो, जो देवताओं का हित करने वाली और दैत्यों को विशेष रूप से मोहित करने वाली है।

दो०—रामकथा सुरधेनु सम, सेवत सब सुख दानि।
सतसमाज सुरलोक सब को न सुनै अस जानि।।११३।।

व्याख्या :—श्रीराम की कथा कामधेनु के समान सेवा करने से सब सुखों को देने वाली है और सतों के समाज ही सब देवताओ के लोक हैं, ऐसा जानकर इसे कौन न सुनेगा?

चौ०—रामकथा सुंदर कर तारी। ससय विहग उड़ावनिहारी।।
रामकथा कलि विटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी।।

व्याख्या :- श्रीराम की कथा हाथों की सुन्दर ताली के समान सन्देह-रूपी पक्षियों को उड़ाने वाली है। फिर रामकथा कलियुग रूपी पेड़ को काटने के लिए कुल्हाड़ी के समान है। हे पार्वती! इसे श्रद्धापूर्वक सुनो।

रामनाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए।।
जथा अनत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना।।

व्याख्या :—वेदों में श्रीराम के नाम, गुण, सुन्दर चरित्र, जन्म और कर्म सभी अनगिनत कहे गये हैं। जैसे भगवान् श्रीराम अनन्त हैं अर्थात् उनका अन्त नहीं है, वैसे ही उनकी कथा, कीर्ति और गुणों का भी अन्त नहीं है।

तदपि जथा श्रुत जसि मति मोरी। कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी।।
उमा प्रस्न तव सहज सुहाई। सुखद संतसंमत मोहि भाई।।

व्याख्या :—तो भी जैसा मैंने सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसी के अनुसार तुम्हारी अत्यन्त प्रीति देखकर कहूँगा। हे पार्वती! तुम्हारे प्रश्न स्वाभाविक ही सुन्दर, सुखदायक और संतों के मत के अनुकूल हैं, और मुझे भी अच्छे लगने वाले हैं।

एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥

व्याख्या :— परन्तु हे पार्वती ! एक बात मुझे नहीं सुहाई, यद्यपि वह तुमने मोह के वश होकर ही कही है। तुमने जो यह कहा कि वे राम क्या कोई और हैं, जिनको वेद गाते है और जिनका मुनिजन ध्यान करते हैं—

दो०—कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिसाच॥
पाषंडी हरि पद विमुख, जानहिं झूठ न साच॥११४॥

व्याख्या :— ऐसी बात नीच मनुष्य ही कहा-सुना करते हैं जो अज्ञान-रूपी पिशाच के द्वारा ग्रस्त हैं, पाखण्डी है और भगवान् के चरणों से विमुख हैं तथा झूठ-सच में कुछ भी भेद नहीं जानते।

चौ०— अग्य अकोविद अंध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी॥
लंपट कपटी कुटिल विसेषी। सपनेहुँ संतसभा नहीं देखी॥

व्याख्या :—जो अज्ञानी, मूर्ख, (शास्त्रीरूपी नेत्रों से) अन्धे और अभागे है और जिनके मनरूपी दर्पण पर विषयरूपी काई जमी हुयी है; जो व्यभिचारी, कपटी और बड़े कुटिल हैं और जिन्होंने कभी स्वप्न में भी संतसभा के दर्शन नहीं किये—।

कहहिं ते वेद असंमत वानी। जिन्ह के सूझ लाभु नहिं हानी॥
मुकुर मलिन अरु नयन विहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना॥

व्याख्या :—और जिन्हें अपना हानि-लाभ नहीं सूझता, वे ही ऐसे वेद विरुद्ध वचन कहा करते हैं। जिनका हृदयरूपी दर्पण मलिन है और जो (शास्त्ररूपी) नेत्रों से हीन हैं, वे वेचारे श्रीराम के रूप को कैसे देख सकते हैं !

जिन्ह के अगुन न सगुन विवेका। जल्पहिं कल्पित वचन अनेका॥
हरिमाया वस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं॥

व्याख्या :—जिनको निर्गुण और सगुण का कुछ भी ज्ञान नहीं है, वे बहुत सी मनगढंत बातें बका करते हैं। जो भगवान् की माया के वश में होकर संसार में (जन्म-मृत्यु के चक्र में) भटकते फिरते हैं, उनके लिए कुछ भी कह डालना असम्भव नहीं है।

वातुल भूत विवस मतवारे। ते नहिं वोलहिं वचन विचारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना॥

व्याख्या :—जिन्हें सन्निपात हो गया है जो भूत के वश हैं या मतवाले

हो रहे हैं, ऐसे लोग विचार कर वचन नहीं बोलते । जिन्होंने महामोहरूपी मदिरा का पान किया हुआ हो, उनके कहने पर कान नहीं देना चाहिये ।

सो०—अस निज हृदयँ विचारि, तजु संसय भजु राम पद ।
सुनु गिरिराज कुमारि, भ्रम तम रवि कर वचन मम ॥११५॥

व्याख्या :—अपने हृदय में ऐसा विचारकर सन्देह को छोड़ दो और श्रीराम के चरणों को भजो । हे पार्वती ! भ्रमरूपी अन्धकार के नाश करने के लिए सूर्य की किरणों के समान मेरे वचनों को सुनो ।

चौ०—सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥

व्याख्या :—सगुण और निर्गुण ब्रह्म में कुछ भी भेद नहीं है, ऐसा मुनि, पुराण, पंडित और वेद सभी कहते हैं। जो निराकार, अव्यक्त और अजन्मा निर्गुण ब्रह्म है, वही भक्तों के प्रेम के वश सगुण हो जाता है ।

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें । जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें ॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा । तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा ॥

व्याख्या :—जो निर्गुण है वही सगुण कैसे है ? जैसे जल और ओले में भेद नहीं है (अर्थात् दोनों एक ही हैं । ओले पानी से ही बनते हैं और जल ही उनकी सत्ता है । देखने में वे दो प्रतीत होते हैं, पर वस्तुतः हैं एक ही । ऐसे ही निर्गुण और सगुण ब्रह्म हैं) । जिसका नाम भ्रमरूपी अन्धकार को मिटाने के लिए सूर्य है, उनको तुम मोह के वश हुआ कैसे कहती हो ?

राम सच्चिदानंद दिनेसा । नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥
सहज प्रकासरूप भगवाना । नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥

व्याख्या :—श्रीराम सच्चिदानन्दरूप सूर्य हैं । वहाँ मोहरूपी रात्रि का लवलेश भी नहीं है । भगवान् जो स्वभाव से ही प्रकाशरूप हैं (अर्थात् उनका प्रकाश उत्पन्न और नष्ट नहीं होता) इसी कारण उनके पास विज्ञान-रूपी सवेरा भी नहीं होता ।

विशेष :—भाव यह है कि सूर्य के सामने कभी रात्रि नहीं होती, इसी कारण सूर्य के लिए सवेरा भी नहीं होता । वह सदा प्रकाशमान है । इसी प्रकार श्रीराम सहज प्रकाशरूप हैं और उनमें अज्ञान का लवलेश भी नहीं) उनमें ज्ञान भी नहीं, क्योंकि ज्ञान तो अज्ञान के दूर होने को कहते हैं; और जहाँ अज्ञान नहीं, वहाँ ज्ञान क्या होगा ? वस्तुतः श्रीराम तो ज्ञान और

अज्ञान दोनों से परे प्रकाशरूप हैं। जैसा कि 'अध्यात्मरामायण' में भी कहा गया है—

"नाहो न रात्रिः सवितुर्यथा भवेत प्रकाशरूपाव्यभिचारतः क्वचित्।
ज्ञानं तथाज्ञानमिद हृपे हरौ रामे कथं स्थास्यति शुद्धचिद्घने॥"

× × ×

हरष विषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥

व्याख्या :—हर्ष, शोक, ज्ञान, अज्ञान, अहंभाव और अभिमान–ये सब जीव के धर्म हैं अर्थात् जीव में रहते हैं। लेकिन श्रीराम तो परब्रह्म, घट-घट व्यापक, परमानन्द-स्वरूप, परमेश्वर और पुराणपुरुष हैं, इस बात को सारा संसार जानता है।

दो०—पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि, प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ, कहि सिवँ नायउ माथ॥११६॥

व्याख्या :—जो ( पुराण ) पुरुष प्रसिद्ध हैं, प्रकाश के निधि हैं, सब रूपों में प्रकट हैं तथा जीव, माया और जगत् सबके स्वामी हैं, वे ही रघुवंश-मणि श्रीराम मेरे स्वामी हैं। यों कहकर शिवजी ने उनको मस्तक नवाया।

चौ०—निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी॥
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी॥

व्याख्या :—अज्ञानी मनुष्य अपने भ्रम को तो समझते नहीं और वे मूर्ख प्रभु श्रीराम पर मोह धरते हैं (कि उनको दुःख हुआ)। जैसे आकाश में बादलों का पुंज देखकर अज्ञानी कहते हैं कि बादलों ने सूर्य को ढक लिया।

चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ॥
उमा राम बिषइक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥

व्याख्या :—और जो लोग आँख के आगे खड़ी उँगली लगाकर (चन्द्रमा को) देखते हैं, उनके लिए तो दो चन्द्रमा प्रत्यक्ष हैं। हे पार्वती! इस प्रकार श्रीराम के विषय में मोह की कल्पना करना वैसा ही है जैसा आकाश में अन्धकार, धूँए और धूल को मानना (क्योंकि आकाश तो निर्मल और निर्लेप है, फिर उसे धूएँ या धूल का स्पर्श कैसे हो सकता है। इसी प्रकार श्रीराम परब्रह्म परमात्मा हैं, वहाँ मोह का क्या काम!)

विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

व्याख्या :—( इन्द्रियों के ) विषय, इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के देवता और जीव ये—सब एक से एक चेतन होते हैं अर्थात् जीव से देवता, देवताओं से इन्द्रियाँ और इन्द्रियों से विषय चेतन होते हैं। पर जो इन सबका परम प्रकाशक है, जिनसे ये सब चेतन होते हैं, वे ही अनादि परब्रह्म अयोध्या-नरेश श्रीराम हैं।

विशेष :—१. इन्द्रियों के विषय—रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श।
२. इन्द्रियाँ—नेत्र, त्वचा, जीभ, कान, नाक।
३. देवता—सूर्य, वायु, दिशा, वरुण, अश्विनीकुमार।

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥

व्याख्या :—यह जगत् प्रकाश्य (प्रकाश प्राप्त करने वाला) है और श्रीराम प्रकाश करने वाले हैं। वे माया के स्वामी और ज्ञान तथा गुणों के भण्डार हैं जिनकी सत्ता से मोह की सहायता पाकर जड़ माया भी सत्य भी भासित होती है।

दो०—रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि॥११७॥

व्याख्या :—जैसे सीप में चाँदी और सूर्य की किरणों में (मृग) जल की प्रतीति होती है। यद्यपि यह प्रतीति तीनों कालों में झूठी है, तो भी इस भ्रम को कौन मिटा सकता है।

चौ०—एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
जौं सपनें सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुख होई॥

व्याख्या :—इस प्रकार यह जगत् भगवान् के आश्रित रहता है। यद्यपि यह असत्य है, तथापि दुःख देता ही है। जैसे कोई स्वप्न में सिर काटले तो बिना जागे उसका दुःख दूर नहीं होता।

जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई।
आदि अन्त कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥

व्याख्या :—हे पार्वती! जिनकी कृपा से ऐसा भ्रम मिट जाता है, वे ही कृपालु श्रीराम हैं। जिनका आदि और अन्त किसी ने नहीं पाया, लेकिन

वेदों ने अपनी बुद्धि के अनुमान से ऐसा कहा है—

विनु पद चलइ सुनइ विनु काना । कर विनु करम करइ विधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी । विनु वानी वकता वड़ जोगी ॥

व्याख्या :—वह ब्रह्म विना पैर के चलता है, विना कान के सुनता है, विना हाथ के तरह-तरह के काम करता है, विना मुख के सब रसों का आनन्द लेता है और विना ही वाणी के बोलने वाला तथा बडा योगी है ।

विशेष :—विना कारण ही कार्य के होने का वर्णन होने से यहाँ पर विभावना अलंकार है ।

तन विनु परस नयन विनु देखा । ग्रहइ घ्रान विनु वास असेषा ॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहिं वरनी ॥

व्याख्या :—वह विना ही शरीर (त्वचा) के स्पर्श करता है, विना आँख के देखता है और विना ही नाक के सब गन्धों को ग्रहण करता है । इस तरह सब प्रकार से उस ब्रह्म की करनी ऐसी अलौकिक है कि जिसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

विशेष :—विभावना अलंकार ।

दो०—जेहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोइ दसरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान ॥११८॥

व्याख्या :—जिन्हें वेद और पण्डित इस प्रकार गाते हैं और मुनिजन जिनका ध्यान धरते हैं, वे ही महाराज दशरथ के पुत्र, भक्तों के हितकारी, अयोध्या के स्वामी भगवान् श्रीराम हैं ।

चौ०—कासीं मरत जंतु अवलोकी । जासु नाम वल करउँ विसोकी ॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी । रघुवर सव उर अन्तरजामी ॥

व्याख्या :—जिनके नाम के बल से काशी में मरते हुए प्राणी को देखकर मैं शोक-रहित कर देता हूँ (अर्थात् संसार के आवागमन से छुड़ाकर मोक्ष देता हूँ) । वे ही चर-अचर के स्वामी, सबके घट-घट की जानने वाले भगवान् श्रीराम मेरे प्रभु हैं ।

विवसहुँ जासु नाम नर कहहीं । जनम अनेक रचित अघ दहहीं ।
सादर सुमिरन जे नर करहीं । भव वारिधि गोपद इव तरहीं ॥

व्याख्या :—विवश होकर (विना इच्छा के) भी जिनका नाम लेने से मनुष्यों के अनेक जन्मों के इकट्ठे हुए पाप जल जाते हैं । फिर जो मनुष्य

श्रद्धापूर्वक उनका स्मरण करते हैं, वे संसाररूपी समुद्र को गाय के खुर से बने हुए गड्ढे के समान (बिना किसी परिश्रम के) पार कर जाते हैं।

राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अविहित तव बानी॥
अस संसय आनत उर माहीं। ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं॥

व्याख्या :—हे पार्वती ! वे ही राम परमात्मा हैं। उनके विषय में तुमने जो भ्रम प्रकट किया वह अत्यन्त ही अनुचित है। ऐसा सन्देह हृदय लाते ही ज्ञान, वैराग्य और सारे सद्‌गुण चले जाते हैं।

सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना। मिटि गै सब कुतरक कै रचना॥
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती॥

व्याख्या :—शिवजी के भ्रम को नाश करने वाले वचनों को सुनकर (पार्वतीजी के) सब कुतर्कों की रचना मिट गयी और श्रीराम के चरणों में उनका प्रेम और विश्वास हो गया तथा कठिन असम्भावना जाती रही।

दो०—पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि, जोरि पकरुह पानि।
बोलीं गिरिजा बचन बर, मनहुँ प्रेम रस सानि॥११९॥

व्याख्या :—बार-बार भगवान् शिवजी के चरणकमलों को छूकर और अपने कमल समान हाथों को जोड़कर पार्वतीजी मानो प्रेम-रस में सानकर सुन्दर वचन बोलीं।

विशेष :—पुनरुक्ति, रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलकार।

चौ०—ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥
तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ॥

व्याख्या :—(हे स्वामी !) आपकी शीतलवाणी सुनकर मेरा भारी भ्रम इस प्रकार मिट गया जैसे चन्द्रमा की किरणों से शरद्‌ऋतु की तपन मिट जाती है। हे कृपालु ! आपने मेरा सब सन्देह हर लिया और अब मुझे श्रीराम का यथार्थ स्वरूप जान पड़ा।

नाथ कृपाँ अब गयउ बिषादा। सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी॥

व्याख्या :—हे नाथ ! आपकी कृपा से अब मेरे मन का सब दुख मिट गया और हे प्रभो ! आपके चरणों के प्रसाद से मैं सुखी हुयी। यद्यपि स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख और ज्ञानहीन होती है, तो भी अब आप मुझे अपनी दासी जानकर—

प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जौं मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू ॥
राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी ॥

व्याख्या :—हे प्रभो ! जो आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो पहले जो बात मैं पूछ चुकी हूँ, उसे कहिये। जो श्रीराम ब्रह्म, ज्ञानस्वरूप नाश-रहित हैं, सबसे परे और सबके हृदयरूपी नगरी में निवास करने वाले हैं—

नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू ॥
उमा वचन सुनि परम बिनीता। रामकथा पर प्रीति पुनीता ॥

व्याख्या :—तो हे नाथ ! उन्होंने मनुष्य शरीर किस कारण से धारण किया ? सो हे शिवजी ! आप मुझे समझाकर कहिये। पार्वतीजी के परम विनीत वचन सुनकर और उनकी श्रीराम की कथा पर सच्ची प्रीति देख—

दो०—हियँ हरषे कामारि तब, संकर सहज सुजान।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि, बोले कृपानिधान ॥१२०(ख)॥

व्याख्या :—कामदेव के शत्रु, स्वभाव से ही चतुर और कृपालु शिवजी मन में बहुत ही प्रसन्न हुए और अनेक प्रकार से पार्वतीजी की बड़ाई करके बोले कि—

सो०—सुनु सुभ कथा भवानि। रामचरितमानस बिमल।
कहा भुसुंडि बखानि, सुना बिहग नायक गरुड़ ॥१२०(ख)॥

व्याख्या :—हे भवानी ! पावन रामचरित मानस की वह मंगलमयी कथा सुनो, जिसे काकभुशुण्डिजी ने विस्तार से कहा और पक्षियों के राजा गरुड़जी ने सुना।

सो संवाद उदार जेहि बिधि भा आगें कहब।
सुनहु रामअवतार चरित परम सुंदर अनघ ॥१२०(ग)

व्याख्या :— वह सुन्दर संवाद जिस तरह हुआ उसे मैं आगे कहूँगा। अभी तुम श्रीराम के अवतार का परम सुन्दर और पाप-हारी चरित्र सुनो।

हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित।
मैं निज मति अनुसार, कहउँ उमा सादर सुनहु ॥१२०(घ)॥

व्याख्या :—भगवान् श्रीराम के गुण, नाम, कथा और रूप-सभी अपार, अगणित और असीम हैं (उनका वर्णन कौन कर सकता है ?), फिर भी हे पार्वती ! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ, तुम श्रद्धापूर्वक सुनो।

चौ०-- सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। बिपुल बिसद निगमागम गाए॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥

व्याख्या :— हे पार्वती ! भगवान् के विस्तृत और निर्मल चरित्रों को सुनो, जिनको वेदों और शास्त्रों में कहा गया है। भगवान् का अवतार जिस कारण से होता है, वह कारण 'बस यही है' ऐसा नहीं कहा जा सकता। (क्योंकि भगवान् के अवतार के अनेक कारण हो सकते हैं और ऐसे भी हो सकते हैं जिन्हें कोई जान ही नहीं पाता।)

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥
तदपि संत मुनि वेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना॥

व्याख्या :-- हे सयानी ! सुनो, हमारा विचार तो ऐसा है कि बुद्धि, मन और वाणी से श्रीराम के विषय में किसी तरह की तर्कना नहीं हो सकती। तो भी संत, मुनि, वेद और पुराण अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा कुछ कहते हैं,

तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। समुझि परइ जस कारन मोही॥
जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

व्याख्या :— और जैसा कारण मेरी समझ में आता है वैसा ही हे सुमुखी ! मैं तुम्हें सुनाता हूँ। जब-जब (पृथ्वी पर) धर्म की हानि होती है और नीच, अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं, और वे ऐसी अनीति करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता तथा ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते हैं, तब-तब वे कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँति के शरीर धारण करते हैं और संतजनों की पीड़ा हरते हैं।

विशेष :—श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से यही कहा है :—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥"

× × ×

दो०—असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस, राम जन्म कर हेतु ॥१२१॥

व्याख्या :—वे असुरों को मारकर देवताओं को (अपने-अपने पद पर पुन:) स्थापित करते हैं, अपने (श्वास रूप) वेदों की मर्यादा रखते हैं और संसार में अपना निर्मल यश फैलाते हैं । यही श्रीराम के जन्म लेने का कारण है ।

चौ०—सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपासिंधु जनहित तनु धरहीं ॥
राम जनम के हेतु अनेका । परम बिचित्र एक तें एका ॥

व्याख्या :—उसी यश को गाकर भक्त-जन संसार से तर जाते हैं, क्योंकि कृपासिन्धु भगवान् भक्तों के लिए ही शरीर धारण करते हैं । श्रीराम के जन्म लेने के अनेक कारण हैं, जो एक से एक बढ़कर विचित्र हैं ।

जनम एक दुइ कहहुँ बखानी । सावधान सुनु सुमति भवानी ॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ । जय अरु विजय जान सब कोऊ ॥

व्याख्या :—हे सुन्दर बुद्धिवाली ! तुम सावधान होकर सुनो—मैं उनके एक-दो जन्मों का विस्तार से वर्णन करता हूँ । भगवान् श्रीहरि के जय और विजय दो प्यारे द्वारपाल हैं, जिनको सब कोई जानते हैं ।

बिप्र श्राप तें दूनउ भाई । तामस असुर देह तिन्ह पाई ॥
कनककसिपु अरु हाटकलोचन । जगत बिदित सुरपति मद मोचन ॥

व्याख्या :—उन दोनों भाइयों ने ब्राह्मणों (सनकादि) के शाप से तामसी असुरों का शरीर पाया और वे हिरण्य-कश्यप तथा हिरण्याक्ष नाम के दैत्य जगत् में देवराज इन्द्र के गर्व को नाश करने वाले प्रसिद्ध हुए ।

विशेष :—एक बार सनकादि ऋषि भगवान् के दर्शनों के लिए बैकुण्ठ गये । द्वारपाल-जय और विजय ने किसी को भी अन्दर नहीं जाने दिया । ऋषि इस पर नाराज़ हो गये और उन्होंने शाप दिया कि तुम राक्षस होंगे तथा तीसरे जन्म में जाकर तुम्हारी मुक्ति होगी ।

बिजयी समर बीर बिख्याता । धरि बराह बपु एक निपाता ॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा । जब प्रहलाद सुजस बिस्तारा ॥

व्याख्या :—वे युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले नामी वीर थे । भगवान् ने उनमें से एक (हिरण्याक्ष) को शूकर का शरीर धारण करके मारा, फिर नरसिंह रूप धारण करसे दूसरे (हिरण्यकश्यप) को मारा और अपने भक्त प्रहलाद का सुन्दर यश फैलाया ।

दो०—भए निसाचर जाइ तेइ, महावीर बलवान।
कुंभकरन रावन सुभट, सुर विजई जग जान ॥१२२॥

व्याख्या :—वे ही जाकर देतवाओं को जीतने वाले संसार-प्रसिद्ध राक्षस रावण और कुम्भकर्ण हुए जो महान् योद्धा और बड़े बलवान थे।

चौ०—मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज वचन प्रवाना॥
एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥

व्याख्या :—भगवान् के द्वारा मार दिये जाने पर भी वे मुक्त नहीं हुए, क्योंकि ब्राह्मण का शाप तीन जन्म का था। इसलिये एक बार फिर उनके कल्याण के लिये, भक्त-वत्सल भगवान् ने शरीर धारण किया था।

कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥
एक कलप एहि विधि अवतारा। चरित पवित्र किए संसारा॥

व्याख्या :—वहाँ कश्यप और अदिति उनके माता-पिता हुए जो दशरथ और कौशल्या के नाम से प्रसिद्ध थे। एक कल्प में इस तरह अवतार लेकर भगवान् ने संसार में पवित्र चरित्र किये।

एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे॥
संभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा॥
परम सती असुराधिप नारी। तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी॥

व्याख्या :—एक कल्प में सब देवताओं को जलन्धर दैत्य से लड़ाई में हार जाने के कारण दुखी देखकर शिवजी ने उससे बड़ा भारी युद्ध किया, पर वह महाबली दैत्य मारे नहीं मरता था। उस दैत्यराज की स्त्री बड़ी पतिव्रता थी। उसके बल के कारण ही शिवजी उसे नहीं जीत सके।

दो०—छल करि टारेउ तासु ब्रत, प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह ॥१२३॥

व्याख्या :—प्रभु ने छल करके उस स्त्री का व्रत भंगकर देवताओं का काम किया। जब उस स्त्री ने यह भेद जाना, तब क्रोध करके उसने भगवान् को शाप दिया।

चौ०—तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ॥

व्याख्या :—कौतुकनिधि दयालु भगवान् ने उस स्त्री के शाप को अंगीकार किया। वहाँ (दूसरे जन्म में) जलंधर रावण हुआ, जिसे श्रीराम ने युद्ध

में मारकर मोक्ष प्रदान किया।

एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नर देहा॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी॥

व्याख्या :—एक जन्म का यही कारण है, जिसके लिए श्रीराम ने मनुष्य-देह धारण की। हे भरद्वाज मुनि! सुनो, कवियों ने भगवान् के हर एक अवतार की बहुत सी कथाओं का वर्णन किया है।

नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा॥
गिरिजा चकित भईं सुनि बानी। नारद बिष्नुभगत पुनि ग्यानी॥

व्याख्या :—एक बार नारदजी ने (भगवान् को) शाप दिया, इसलिये एक कल्प में उसके लिए अवतार हुआ। शिवजी की इस बात को सुनकर पार्वतीजी बड़ी चकित हुईं और बोलीं कि नारदजी तो ज्ञानी और भगवान् विष्णु के भक्त हैं।

कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी॥

व्याख्या :—मुनि ने किस कारण से भगवान् को शाप दिया? लक्ष्मी-पति भगवान् ने उनका ऐसा क्या अपराध किया? हे शिवजी! इस प्रसंग को आप मुझे सुनाइये, क्योंकि मुनि के मन में मोह (अज्ञान) होना बड़े आश्चर्य की बात है।

दो०—बोले बिहसि महेस तब, ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होइ॥१२४॥(क)

व्याख्या :—तब महादेवजी हँसकर बोले कि न कोई ज्ञानी है, न कोई मूर्ख। श्रीराम जब जिसको जैसा कर देते हैं वह उस क्षण वैसा ही हो जाता है।

सो०—कहउँ राम गुन गाथ, भरद्वाज सादर सुनहु।
भव भंजन रघुनाथ, भजु तुलसी तजि मान मद॥१२४॥ (ख)

व्याख्या :—(याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि) हे भरद्वाज! मैं श्रीराम के गुणों की कथा कहता हूँ, तुम आदर से सुनो। (गोस्वामीजी कहते हैं) हे तुलसी! मान और घमण्ड को छोड़ श्रीरघुनाथजी को भज। वे संसार के आवागमन से छुड़ाने वाले हैं।

चौ०—हिमगिरि गुहा एक अति पावनि । बह समीप सुरसरी सुहावनि ।।
आश्रम परम पुनीत सुहावा । देखि देवरिषि मन अति भावा ।।

व्याख्या :—हिमालय पर्वत में एक बड़ी पवित्र गुफा है, जिसके समीप ही गंगाजी बहती हैं । ऐसे परम पवित्र और सुन्दर आश्रम को जब मुनि नारद ने देखा तो वह उन्हें बहुत ही अच्छा लगा ।

निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा । भयउ रमापति पद अनुरागा ।।
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी । सहज बिमल मन लागि समाधी ।।

व्याख्या :—पर्वत, नदी और भाँति-भाँति के वनों को देखकर नारदजी का भगवान् के चरणों में प्रेम उत्पन्न हुआ (कि इस परम रमणीय स्थान पर बैठकर तप करना चाहिये ।) भगवान् का स्मरण करते ही उनके शाप (जो शाप उन्हें दक्षराज ने दिया था, जिसके कारण वे एक स्थान पर नहीं ठहर सकते थे) की गति रुक गयी और स्वभाव से ही उनका निर्मल मन समाधि में लग गया ।

मुनि गति देखि सुरेस डेराना । कामहि बोलि कीन्ह सनमाना ।।
सहित सहाय जाहु मम हेतू । चलेउ हरषि हियँ जलचरकेतू ।।

व्याख्या :—नारद मुनि की तपोमयी स्थिति देखकर देवराज इन्द्र भयभीत हो गया । उसने कामदेव को बुलाकर उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और कहा—मेरे हित के लिए तुम अपने सहायकों सहित (नारद की समाधि भंग करने को ) जाओ । (यह सुनकर) कामदेव मन में प्रसन्न होता हुआ चला दिया ।

सुनासीर मन महुँ असि त्रासा । चहत देवरिषि मम पुर बासा ।।
जे कामी लोलुप जग माहीं । कुटिल काक इव सबहि डेराहीं ।।

व्याख्या :—इन्द्र के मन में यह बड़ा डर था कि नारदजी मेरी पुरी अमरावती में निवास (राज्य) करना चाहते हैं । जगत् में जो कामी और लालची है, वे कुटिल कौए की तरह सबसे डरते हैं ।

दो०—सूख हाड़ लै भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज ।
छीनि लेइ जनि जान जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज ।।१२५।।

व्याख्या :—जैसे मूर्ख कुत्ता सिंह को देख सूखा हाड़ ले भागता है और समझता है कि कहीं सिंह उसे छीन न ले, वैसे ही इन्द्र को लाज नहीं आई (उन्होंने यह नहीं सोचा कि नारदजी को मेरा सिंहासन लेकर क्या करना है?) ।

चौ०—तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज मायाँ बसंत निरमयऊ॥
कुसुमति विविध विटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा॥

व्याख्या :—उस आश्रम में जब कामदेव गया, तब उसने अपनी माया से वहाँ वसन्त की रचना की। तरह-तरह के वृक्षों में रंग-बिरंगे फूल खिल गये, कोयलें कूकने लगीं और भौरे गुंजारने लगे।

चली सुहावनि त्रिविध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनिहारी॥
रंभादिक सुरनारि नवीना। सकल असमसर कला प्रवीना॥

व्याख्या :—तीन तरह की (शीतल, मन्द और सुगन्धित) सुहावनी हवा चलने लगी जो काम की अग्नि को बढ़ाने वाली थी। रम्भा आदि नवयुवती देवांगनाएँ, जो सबकी सब कामकला में निपुण थीं—

करहिं गान बहु तान तरंगा। बहुबिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना॥

व्याख्या :—वे बहुत सी तानों की तरंग में आकर गान करने लगीं और हाथ में गेंद लेकर नाना प्रकार से खेलने लगीं। अपने ऐसे सहायकों को देख कामदेव प्रसन्न हुआ और फिर तरह-तरह की माया रचने लगा।

काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भयँ डरेउ मनोभव पापी॥
सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥

व्याख्या :—पर जब कामदेव की कोई भी कला मुनि पर असर न कर सकी, तब पापी कामदेव अपने ही भय से डर गया (कि मेरा कुछ अनर्थ न हो जाय)। (शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती!) लक्ष्मीपति भगवान् जिसके बड़े रक्षक हैं, उसकी सीमा (मर्यादा) को कौन दबा सकता है?

दो०—सहित सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब, कहि सुठि आरत बैन॥१२६॥

व्याख्या :—अपने सभी सहायकों-सहित मन में हार मानकर कामदेव बड़ा भयभीत हुआ और उसने जाकर बहुत ही आर्त वचन कहते हुए नारदजी के चरण पकड़ लिये।

## नारद को अभिमान और माया का प्रभाव

चौ०—भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय बचन काम परितोषा॥
नाइ चरन सिरु आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई॥

व्याख्या :—पर नारदजी के मन में कुछ भी क्रोध न हुआ वरन्

उन्होंने प्रिय वचन कहकर सब तरह कामदेव का समाधान किया। तब मुनि के चरणों में सिर नवाकर और उनकी आज्ञा पाकर कामदेव अपने सहायकों सहित विदा हुआ।

**मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभाँ जाइ सब बरनी॥**
**सुनि सब कें मन अचरजु आवा। मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा॥**

**व्याख्या :**—देवराज इन्द्र की सभा में जाकर उसने मुनि की सुशीलता और अपनी करतूत को कहा, जिसे सुनकर सबके मन में आश्चर्य हुआ और उन्होने मुनि की प्रशंसा करके भगवान् को सिर नवाया।

**तब नारद गवने सिव पाहीं। जिता काम अहमिति मन माहीं॥**
**मार चरित संकरहि सुनाए। अतिप्रिय जानि महेस सिखाए॥**

**व्याख्या :**—तब नारदजी शिवजी के पास गये। उनके मन में इस बात का अहङ्कार था कि हमने कामदेव को जीत लिया। उन्होंने कामदेव का चरित्र महादेवजी को सुनाया, तब शिवजी ने उन्हें अपना अत्यन्त प्रिय जानकर यह शिक्षा दी—

**बार बार बिनवउँ मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥**
**तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ। चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ॥**

**व्याख्या :**—हे मुनिराज! मैं तुमसे बार-बार विनती करता हूँ कि जिस तरह तुमने यह कथा मुझे सुनायी है, उसी तरह भगवान् को कभी मत सुनाना और जो चर्चा चले तब भी इसको छिपा जाना।

**दो०—संभु दीन्ह उपदेस हित, नहिं नारदहि सोहान।**
**भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरि इच्छा बलवान॥१२७॥**

**व्याख्या :**—शिवजी ने तो यह हित की शिक्षा दी थी लेकिन नारदजी को वह अच्छी नहीं लगी। (याज्ञवल्क्यजी कहते हैं) हे भरद्वाजजी! अब जो तमाशा हुआ उसे सुनो, भगवान् की इच्छा बड़ी बलवान् है।

**चौ०—राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥**
**संभु बचन मुनि मन नहिं भाए। तब बिरंचि के लोक सिधाए॥**

**व्याख्या :**—श्रीराम जो किया चाहें, वही होता है, ऐसा कोई नहीं जो उसके विरुद्ध कर सके। शिवजी के वचन नारदजी के मन को अच्छे नहीं लगे, तब वे वहाँ से ब्रह्मलोक को गये।

एक बार करतल बर बीना। गावत हरि गुन गान प्रबीना ॥
छीरसिन्धु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा ॥

व्याख्या :—एक बार हाथ में सुन्दर वीणा लिये, भगवान् का यश गाते गाते, गानविद्या में निपुण मुनिनाथ नारदजी क्षीरसागर को गये, जहाँ लक्ष्मी के पति और वेदों के स्वामी रहते थे।

हरषि मिले उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहि समेता ॥
बोले बिहसि चराचर राया। बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया ॥

व्याख्या :—(मुनि को देख) लक्ष्मीपति प्रसन्न हो उठकर मिले और ऋषि के साथ आसन पर बैठ गये। चराचर के स्वामी भगवान् हँसकर बोले—हे मुनि ! आज आपने बहुत दिनों में कृपा की।

काम चरित नारद सब भाषे। जद्यपि प्रथम बरजि सिवँ राखे ॥
अति प्रचंड रघुपति की माया। जेहि न मोह अस को जग जाया ॥

व्याख्या :—यद्यपि शिवजी ने उन्हें पहले ही मना कर दिया था, तो भी नारदजी ने कामदेव का सारा चरित्र भगवान् को कह सुनाया। रामजी की माया बड़ी ही प्रबल है। जगत् में ऐसा कौन पैदा हुआ है, जिसे वह मोहित न कर लेती हो।

दो०—रूख बदन करि बचन मृदु बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं, मोह मार मद मान ॥१२८॥

व्याख्या :—भगवान् रूखा मुँह करके कोमल वचन बोले कि (हे मुनिराज !) तुम्हारे स्मरण करने से तो (दूसरों के) मोह, काम, मद और अभिमान मिट जाते हैं (फिर आपके लिए तो कहना ही क्या !)

विशेष :—'तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं' पंक्ति का एक अर्थ यह भी लिया जा सकता है कि तुम्हारे स्मरण करने पर ही तुम्हारे मोह, काम, मद और मान छूटेंगे, अभी नहीं छूटे।

## नारद का मोह-भंग

चौ०—सुनु मुनि मोह होइ मन ताकें। ग्यान बिराग हृदय नहिं जाकें ॥
ब्रह्मचरज ब्रत रत मतिधीरा। तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा ॥

व्याख्या :—हे मुनिराज ! सुनिये, मोह तो उसके मन में होता है जिसके हृदय में ज्ञान और वैराग्य नहीं है। आप तो ब्रह्मचर्य-व्रत में तत्पर और स्थिरबुद्धि हैं। फिर आपको कामदेव क्या दुःख दे सकता है !

नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥
करुनानिधि मन दीख विचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी॥

व्याख्या :—नारद ने अभिमान के साथ कहा—हे भगवान् ! यह सब आपकी ही कृपा है। करुणानिधान भगवान् ने मन में विचारकर देखा कि मुनि के हृदय में गर्व के भारी वृक्ष का अंकुर पैदा हो गया है।

वेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मैं सोई॥

व्याख्या :—मैं उसे शीघ्र ही उखाड़ डालूँगा, क्योंकि मेरा प्रण भक्तों की भलाई करने का है। मैं अवश्य ही वह उपाय करूँगा जिससे मुनि का कल्याण और मेरा खेल हो।

तब नारद हरिपद सिर नाई। चले हृदयँ अहमिति अधिकाई॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी॥

व्याख्या :—तब नारदजी भगवान् के चरणों में सिर नवाकर विदा हुए। उस समय उनके हृदय में बड़ा भारी अहंकार था। तब भगवान ने अपनी माया को प्रेरित किया। अब उसकी कठिन करनी को सुनो।

दो०—बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं, सत जोजन विस्तार।
श्रीनिवासपुर तें अधिक, रचना विविध प्रकार॥१२९॥

व्याख्या :—उस (हरिमाया) ने रास्ते में सौ योजन विस्तार का एक नगर बनाया। उसकी तरह-तरह की रचना विष्णु के नगर (वैकुण्ठ) से अधिक सुन्दर थी।

चौ०—बसहिं नगर सुन्दर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति धनुधारी॥
तेहिं पुर बसइ सीलनिधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा॥

व्याख्या :—उस नगर में ऐसे सुन्दर स्त्री-पुरुष बसते थे मानो बहुत से कामदेव और रति ही शरीर धारण किये हुए हों। उस नगर में शीलनिधि नामक राजा रहता था, जिसके पास अनगिनती घोड़े, हाथी और सेना के समूह थे।

सत सुरेस सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति निवासा॥
बिस्वमोहनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी॥

व्याख्या :—उसका वैभव और विलास सौ इन्द्रों के समान था। वह बड़ा रूपवान, तेजस्वी, बली और नीतिमान् था। उसके विश्वमोहिनी नाम

की एक (ऐसी रूपवती) कन्या थी, जिसके रूप को देखकर लक्ष्मीजी भी मोहित हो जायँ।

विशेष :—उपमा अलंकार

सोइ हरि माया सब गुन खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी॥
करइ स्वयंबर सो नृप बाला। आए तहँ अगनित महिपाला॥

व्याख्या :—वह सब गुणों (सत्, रज, तम) की खान भगवान् की माया ही थी। फिर उसकी सुन्दरता का क्या वर्णन किया जा सकता है? वह राजकुमारी स्वयंवर करना चाहती थी, जिसके लिए वहाँ अनगिनती राजा आये हुए थे।

मुनि कौतुकी नगर तेहिं गयऊ। पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ॥
सुनि सब चरित भूपगृहँ आए। करि पूजा नृप मुनि बैठाए॥

व्याख्या :—खेल के शौकीन मुनि नारदजी उस नगर में गये और नगर-निवासियों से उन्होंने सब हाल पूछा। सब समाचार सुनकर वे राजा के महल में आये। राजा ने मुनि की पूजा कर (आसन पर) बैठाया।

दो०—आनि देखाई नारदहि, भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुन दोष सब, एहिके हृदयँ बिचारि॥१३०॥

व्याख्या :—राजा ने राजकुमारी को लाकर नारदजी को दिखाया और कहा—हे नाथ! हृदय में विचारकर इसके सब गुण और दोष कहिए।

चौ०—देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदयँ हरष नहिं प्रगट बखाने॥

व्याख्या :—उसका रूप देख नारद मुनि वैराग्य भूल गये और बड़ी देर तक उसकी ओर ही देखते रहे। उसके लक्षण देखकर मुनि अपने आपको भी भूल गये और हृदय में प्रसन्न हुए, लेकिन प्रकट में उन लक्षणों को नहीं कहा।

जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समरभूमि तेहि जीत न कोई॥
सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ सीलनिधि कन्या जाही॥

व्याख्या :—(मुनि मन में सोचने लगे कि) जो इसे व्याहेगा, वह अमर हो जायगा और युद्धभूमि में उसे कोई जीत नहीं सकेगा। जिसका वरण शीलनिधि की कन्या करेगी, उसकी सेवा चर-अचर सब जीव करेंगे।

लच्छन सब विचारि उर राखे । कछुक बनाइ भूप सन भाषे ।।
सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं । नारद चले सोच मन माहीं ।।

व्याख्या :—सब लक्षणों को विचारकर मुनि ने उन्हें अपने हृदय में रख लिया और राजा को कुछ अपनी ओर से बनाकर कह दिया । लड़की के लक्षण सुन्दर हैं—राजा से ऐसा कहकर नारदजी अपने मग में सोचते हुए चले ।

करौं जाइ सोइ जतन विचारी । जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी ।।
जप तप कछु न होइ तेहिकाला । हे विधि मिलइ कवन विधि बाला ।।

व्याख्या :—अब मैं जाकर सोच-विचार कर वही उपाय करूँ जिससे यह राजकुमारी मुझे ही वरे । इस समय जप-तप तो कुछ हो नहीं सकता । हे विधाता ! यह कन्या मुझे किस प्रकार मिलेगी ?

दो०—एहि अवसर चाहिअ परम, सोभा रूप बिसाल ।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि, तब मेलै जयमाल ।।१३१।।

व्याख्या :—इस समय तो बड़ी भारी शोभा और विशाल स्वरूप चाहिये, जिसे देखकर राजकुमारी मुझे पर मोहित हो जाय और तब मेरे गले में जयमाला डाल दे ।

चौ०—हरि सन मागौं सुंदरताई । होइहि जात गहरु अति भाई ।।
मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ । एहि अवसर सहाय सोइ होऊ ।।

व्याख्या :—जो मैं जाकर भगवान् से सुन्दरता माँगता हूँ, तो भाई ! उनके पास जाने में बहुत देर हो जायगी । लेकिन मेरा भगवान् के समान ऐसा कोई हितैषी भी नहीं है, जो इस अवसर पर सहायक हो ।

बहु बिधि बिनय कीन्हि तेहिकाला । प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला ।।
प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने । होइहि काजु हियँ हरषाने ।।

व्याख्या :—उस समय नारदजी ने भगवान् की अनेक प्रकार से विनती की, जिससे लीलामय दयानिधान भगवान् वहीं प्रकट हो गये । भगवान् को देखकर मुनि नारदजी के नेत्र शीतल हो गये और वे यह सोचकर हृदय में प्रसन्न हुए कि अब तो काम बन ही जायगा ।

अति आरति कहि कथा सुनाई । करहु कृपा करि होहु सहाई ।।
आपन रूप देहु प्रभु मोही । आन भाँति नहिं पावौं ओही ।।

व्याख्या :—नारदजी ने अत्यन्त दीन होकर सब कथा कह सुनायी और बोले कि हे भगवान् ! मेरे ऊपर कृपा कीजिये और मेरे सहायक बनिये। हे प्रभो ! आप अपना रूप मुझे दे दीजिये; क्योंकि मैं अन्य किसी भाँति उस (राजकन्या) को नहीं पा सकता।

जेहि विधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा ॥
निज माया बल देखि बिसाला। हियँ हँसि बोले दीनदयाला ॥

व्याख्या :—हे नाथ ! जिस तरह मेरा हित हो, वही आप शीघ्र कीजिये; मैं आपका दास हूँ। अपनी माया का अति प्रबल प्रभाव देखकर दीनदयालु भगवान् मन-ही-मन हँसकर बोले—

दो०—जेहि विधि होइहि परमहित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार ॥१३२॥

व्याख्या :—हे नारद ! सुनो, जिस तरह तुम्हारा परम हित होगा, हम वही करेंगे, कुछ और नहीं। हमारा वचन असत्य नहीं होता।

चौ०—कुपथ माग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥
एहि विधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ ॥

व्याख्या :—हे योगी मुनि ! सुनो, रोग से व्याकुल रोगी यदि कुपथ्य माँगे तो वैद्य उसे नहीं देता; इसी प्रकार मैंने भी तुम्हारा हित करने का निश्चय किया है। ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

माया बिबस भए मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा ॥
गवने तुरत तहाँ रिषिराई। जहाँ स्वयंबर भूमि बनाई ॥

व्याख्या :—माया के वशीभूत हुए मुनि नारद ऐसे मूढ़ हो गये कि वे भगवान् के बड़े गूढ़ वचन नहीं समझे। ऋषिराज नारद शीघ्र ही वहाँ गये, जहाँ स्वयंवर की भूमि बनायी गयी थी।

निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा ॥
मुनि मन हरष रूप अति मोरें। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें ॥

व्याख्या :—राजा लोग अपने-अपने सिंहासनों पर खूब सजधजकर अपने समाज-सहित बैठे थे। मुनि नारद अपने मन में प्रसन्न हो रहे थे कि मेरा रूप बड़ा सुन्दर है। राजकन्या मुझे छोड़कर किसी दूसरे को भूलकर भी नहीं वरेगी।

मुनि हित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना॥
सो चरित्र लखि काहुँ न पावा। नारद जानि सबहिं सिर नावा॥

व्याख्या :—कृपानिधान भगवान् ने मुनि के हित के लिए उन्हें ऐसा बुरा रूप दिया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। लेकिन यह चरित्र कोई भी नहीं जान सका, सबने उन्हें नारद मुनि जानकर सिर नवाया।

दो०—रहे तहाँ दुइ रुद्र गन, ते जानहिं सब भेउ।
विप्रवेष देखत फिरहिं, परम कौतुकी तेउ॥१३३॥

व्याख्या :—वहाँ महादेवजी के दो गण भी थे। वे सब भेद जानते थे और ब्राह्मण का वेष बनाकर सब लीला देखते-फिरते थे, क्योंकि वे बड़े विनोदी थे।

विशेष :—इन गणों को नारदजी का चरित्र देखने के लिए शिवजी ने तभी से उनके पीछे लगा दिया था कि जब नारदजी उन्हें अपनी कीर्ति सुनाकर ब्रह्मलोक को चले गये थे।

चौ०—जेहिं समाज बैठे मुनि जाई। हृदयँ रूप अहमिति अधिकाई॥
तहँ बैठे महेस गन दोऊ। बिप्रबेष गति लखइ न कोऊ॥

व्याख्या :—जिस समाज में नारद मुनि अपने हृदय में रूप का बड़ा अभिमान लेकर बैठे थे, वहीं शिवजी के ये दोनों गण भी बैठे थे। लेकिन ब्राह्मण के वेष में होने के कारण उनकी गति कोई नहीं देख सका।

करहिं कूटि नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुन्दरताई॥
रीझिहि राजकुँअरि छबि देखी। इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी॥

व्याख्या :—वे नारदजी को सुना-सुनाकर व्यंग्य वचन कहते थे—भगवान् ने इनको अच्छी सुन्दरता दी है। राजकुमारी छवि देखते ही रीझ जायेगी और 'हरि' (बानर) समझकर विशेष कर इन्हें ही वरेंगी।

मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ। हँसहिं संभु गन अति सचु पाएँ॥
जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। समुझि न परइ बुद्धि भ्रम सानी॥

व्याख्या :—नारद मुनि मोह के वश थे, उनका मन बिराने (माया के) हाथ था और शिवजी के गण अति सुख (मनोरंजन का अच्छा साधन) पाकर हँस रहे थे। यद्यपि मुनि उनकी अटपटी वाणी सुनते थे, पर बुद्धि भ्रम में सनी होने के कारण कुछ समझ में नहीं आता था।

काहुँ न लखा सो चरित विसेषा। सो सरूप नृपकन्यां देखा॥
मर्कट वदन भयंकर देही। देखत हृदयँ क्रोध भा तेही॥

व्याख्या :—जो विशेष चरित्र (नारदजी का रूप) किसी ने नहीं देखा था, उस विशिष्ट स्वरूप को राजकुमारी ने देखा। उनका बदर के समान मुँह और भयंकर शरीर देखते ही उसके हृदय में क्रोध उत्पन्न हो गया।

दो०—सखीं संग लै कुअँरि तब, चलि जनु राजमराल।
देखत फिरइ महीप सब, कर सरोज जयमाल॥

व्याख्या :—तब राजकुमारी सखियों को संग लेकर इस तरह चली मानो राजहंसिनी चल रही हो। वह अपने कमल समान हाथों में जयमाल लिए सब राजाओं को देखते हुई घूमने लगी।

चौ०—जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसुकाहीं॥

व्याख्या :—जिस ओर नारदजी (रूप के गर्व में) फूले बैठे थे, उस ओर उसने भूलकर भी नहीं देखा। नारद मुनि बार-बार अकुला कर उचकते थे। उनकी यह दशा देखकर शिवजी के गण हँसते थे।

धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला। कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला॥
दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा। नृप समाज सब भयउ निरासा॥

व्याख्या :—कृपालु भगवान् भी राजा का रूप धरकर वहाँ गये। राजकुमारी ने प्रसन्न होकर उनके गले में जयमाला डाल दी। लक्ष्मीनिवास भगवान् दुल्हिन को ले गये। इससे राजाओं का समाज निराश हो गया।

मुनि अति बिकल मोहँ मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी॥
तब हर गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई॥

व्याख्या :—मोह ने मुनि की बुद्धि बिगाड़ दी थी, इस कारण वे ऐसे व्याकुल हो गए मानो गाँठ में से छुटकर उनकी मणि गिर गई हो। तब शिवजी के गण हँसकर बोले—जरा दर्पण में अपना मुँह तो देखिये।

अस कहि दोउ भागे भयँ भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी॥
बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा॥

व्याख्या :—ऐसा कहकर के वे दोनों बहुत ही भयभीत होकर भागे और मुनि ने पानी देख उसमें अपना मुँह देखा। अपना वेष देखते ही उनका क्रोध बहुत बढ़ गया और उन्होंने शिवजी के उन गणों को अत्यन्त कठोर

शाप दिया।

दो०—होहु निसाचर जाइ तुम्ही, कपटी पाप दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल, बहुरि हँसेहु मुनि कोउ ॥१३५॥

व्याख्या :—अरे! तुम दोनों बड़े कपटी और पापी हो, तुम जाकर राक्षस हो जाओ। तुम जो हम पर हँसे हो उसका फल लो, फिर किसी मुनि की हँसी मत करना।

चौ०—पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदयँ संतोष न आवा॥
फरकत अधर कोप मन माहीं। सपदि चले कमलापति पाहीं॥

व्याख्या :—फिर जल में देखा तो उन्हें अपना (असली) रूप प्राप्त हो गया, फिर भी मुनि के हृदय में सन्तोष नहीं हुआ। उनके होंठ फड़कने लगे, मन में क्रोध भर गया और वे शीघ्र ही भगवान् कमलापति के पास चले।

देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥
बीचहिं पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी॥

व्याख्या :—(वे मन में सोचते जाते थे) या तो जाकर शाप दूँगा या प्राण दे दूँगा (क्योंकि उन्होंने) जगत् में ही मेरी बड़ी हँसी करायी है। दैत्यों के शत्रु भगवान् उन्हें रास्ते में ही मिल गये। उनके साथ लक्ष्मीजी और वही राजकुमारी थी।

बोले मधुर वचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं॥
सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। माया बस न रहा मन बोधा॥

व्याख्या :—(मुनि को देख) देवताओं के स्वामी मीठे वचन बोले कि हे मुनि! घबराये हुए से कहाँ चले? ये शब्द सुनते ही नारद को बड़ा क्रोध आया। माया के वशीभूत होने के कारण मन में ज्ञान नहीं रहा।

पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरें इरिषा कपट बिसेषी॥
मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु। सुरन्ह प्रेरि बिष पान करायहु॥

व्याख्या :—(मुनि ने कहा) तुम दूसरों की बढ़ती नहीं देख सकते हो, तुम्हारे में बहुत ही कपट और ईर्ष्या भरी है। समुद्र मथते समय तुमने शिवजी को बावला बना दिया और देवताओं को प्रेरित कर उन्हें विषपान कराया।

दो०—असुर सुरा बिष, संकरहि आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह, सदा कपट व्यवहारु ॥१३६॥

व्याख्या :—दैत्यों को सुरा पिलाई और शिवजी को विष पिलाया तथा तुमने स्वयं लक्ष्मी और सुन्दर (कौस्तुभ) मणि को ले लिया। तुम बड़े स्वार्थी और कुटिल हो, तुम्हारा व्यवहार सदा कपट का है।

चौ०—परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई ॥
भलेहि मंद मंदेहि भल करहू। बिसमय हरष न हियँ कछु धरहू ॥

व्याख्या :—तुम बड़े स्वतन्त्र हो, सिर पर कोई है नहीं, इससे जब जो मन में आता है, वही करते हो। भले को बुरा और बुरे को भला कर देते हो और अपने हृदय में हर्ष-विषाद कुछ नहीं मानते।

डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू ॥
करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा। अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा ॥

व्याख्या :- सब को ठग-ठग कर तुम ( ठगी के काम में ) परिचित (निपुण) हो गये हो, बड़े निडर हो, इसी से ( ठगने के काम में ) मन में सदा उत्साह रहता है। तुम्हें भले-बुरे काम की बाधा नहीं है (तुम यह नहीं सोचते कि यह काम अच्छा है या बुरा) और फिर अभी तक तुम्हें किसी ने सीधा भी नहीं किया है।

भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा ॥
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा ॥

व्याख्या :—अब तुमने अच्छे घर वायना (निमन्त्रण) दिया है, सो जैसा तुमने किया है, वैसा ही फल पाओगे। जिस शरीर को धारण करके तुमने मुझे ठगा है, वही शरीर धारण करो, यही मेरा शाप है।

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी ॥

व्याख्या :— (सहायता के बदले) तुमने मेरी बन्दर की मुखाकृति बना दी, इससे बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे। तुमने (मुझे नारी-वियोगी बनाकर) मेरा बड़ा भारी अपकार किया है, इससे तुम भी स्त्री के वियोग में दुःखी होंगे।

दो०—श्राप सीस धरि हरषि हियँ, प्रभु बहु बिनती कीन्हि।
निज माया कै प्रबलता, करषि कृपानिधि लीन्हि ॥१३७॥

व्याख्या :—मुनि के शाप को सिर पर धारण कर कृपानिधान भगवान् ने हृदय में हर्षित होते हुए अनेक प्रकार से विनती की और अपनी प्रबल माया

को खेंच लिया।

**चौ०—जब हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी॥**

**तब मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना॥**

**व्याख्या :**—जब भगवान् ने अपनी माया को दूर हटा लिया, तो वहाँ न लक्ष्मी रही न राजकुमारी। तब मुनि ने अत्यन्त भयभीत होकर भगवान् के चरण पकड़ लिये और कहा—हे शरणागत के दुःखों को हरने वाले भगवान्! मेरी रक्षा कीजिये।

**मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला॥**

**मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे॥**

**व्याख्या :**—हे कृपालु! मेरा शाप झूठा हो जाय। तब दीनों पर दया करने वाले भगवान् ने कहा कि यह सब मेरी ही इच्छा से हुआ है (तुम चिन्ता मत करो)। मुनि ने कहा – मैंने आपको बहुत से वचन कहे हैं, मेरा यह पाप किस मिटेगा?

**जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा॥**

**कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें॥**

**व्याख्या :**—(भगवान् ने कहा) जाकर शिवजी के शतनाम का जाप करो इससे हृदय में तुरन्त शान्ति होगी। शिवजी के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है। इस विश्वास को भूलकर भी नहीं छोड़ना।

**जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥**

**अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुम्हहि माया निअराई॥**

**व्याख्या :**—हे मुनि! जिस पर शिवजी कृपा नहीं करते, वह मेरी भक्ति नहीं पाता। ऐसा हृदय में धारण करके तुम पृथ्वी पर विचरण करते रहो। अब मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं आवेगी।

**दो०—बहुबिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु, तब भए अन्तरधान।**

**सत्यलोक नारद चले, करत राम गुन गान॥१३८॥**

**व्याख्या :**—तब मुनि को अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर प्रभु अन्तर्धान हो गये और नारदजी श्रीराम के गुण गाते हुए सत्यलोक को चले।

**चौ०—हर गन मुनिहि जात पथ देखी। बिगत मोह मन हरष बिसेषी॥**

**अति सभीत नारद पहिं आए। गहि पद आरत बचन सुनाए॥**

**व्याख्या :**—शिवजी के गणों ने जब मुनि को मोहरहित और मन में

बहुत प्रसन्न होकर रास्ते में जाते हुए देखा, तो (वे दोनों) डरते-डरते नारदजी के पास आये और उनके चरण छूकर दीन वचन बोले—

हर गन हम न विप्र मुनिराया। बड़ अपराध कीन्ह फल पाया ॥
श्राप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीनदयाला ॥

व्याख्या :—हे मुनिराज ! हम शिवजी के गण हैं, ब्राह्मण नहीं हैं, (हमने आपका) बड़ा अपराध किया और उसका फल भी पा लिया। हे कृपालु ! अब शाप दूर करने की कृपा कीजिये। दीनदयालु नारदजी ने कहा—

निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। वैभव विपुल तेज बल होऊ ॥
भुजबल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ। धरिहहिं विष्णु मनुज तनु तहिआ ॥

व्याख्या :—तुम दोनों जाकर राक्षस होओ और तुम्हारा बल, प्रताप और तेज खूब हो। तुम अपनी भुजाओं के बल से जब सारे संसार को जीत लोगे, तब भगवान् विष्णु मनुष्य का शरीर धारण करेंगे।

समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा ॥
चले जुगल मुनि पद सिर नाई। भए निसाचर कालहि पाई ॥

व्याख्या :—युद्ध में भगवान् के हाथ से तुम्हारा मरण होगा और तुम मुक्त हो जाओगे। तुम्हें संसार में फिर जन्म नहीं लेना पड़ेगा। यह सुन वे दोनों मुनि के चरणों में सिर नवाकर चले और समय आने पर राक्षस हुए।

दो०—एक कलप एहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रंजन सज्जन सुखद, हरि भंजन भुवि भार ॥१३९॥

व्याख्या :—एक कल्प में प्रभु ने इस कारण मनुष्य का अवतार लिया था, क्योंकि प्रभु देवताओं को प्रसन्न करने वाले, सज्जनों को सुख देने वाले और पृथ्वी का भार उतारने वाले हैं।

चौ०—एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुन्दर सुखद बिचित्र घनेरे ॥
कलप-कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना विधि करहीं ॥

व्याख्या :—इस प्रकार भगवान् के जन्म और कर्म, सुन्दर, सुखदाई और बड़े विचित्र हैं। प्रत्येक कल्प में भगवान् अवतार लेते हैं और तरह-तरह के अच्छे-अच्छे चरित्र करते हैं।

तब-तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबन्ध बनाई ॥
बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने ॥

**व्याख्या :**—तब-तब की कथाओं को मुनीश्वरों ने बड़े-बड़े पवित्र ग्रन्थ रचकर गाया है और भाँति-भाँति के अनुपम प्रसंगों का वर्णन किया है, जिनको सुनकर विवेकीजन आश्चर्य नहीं करते ।

**हरि अनंत हरि कथा अनंता । कहहिं सुनहिं बहुविधि सब संता ॥**
**रामचन्द्र के चरित सुहाए । कलप कोटि लगि जाहिं न गाए ॥**

**व्याख्या :**—भगवान् अनन्त हैं और उनकी कथा भी अनन्त हैं । सब सन्तलोग उसे बहुत तरह से कहते-सुनते हैं । श्रीराम के सुन्दर चरित्र करोड़ों कल्पों में भी गाये नहीं जा सकते ।

**यह प्रसंग मैं कहा भवानी । हरिमायाँ मोहहिं मुनि ग्यानी ॥**
**प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी । सेवत सुलभ सकल दुख हारी ॥**

**व्याख्या :**—(महादेवजी कहते हैं) हे पार्वती ! यह प्रसंग मैं तुमसे कह चुका हूँ कि ज्ञानी मुनि भी भगवान् की माया से मोहित हो जाते हैं, प्रभु लीलामय हैं और शरणागत का हित चाहने वाले हैं । वे सेवा करने से बहुत सुलभ हैं और सब प्रकार के दुःखों को हरने वाले हैं ।

**सो०—सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रबल ।**
**अस बिचारि मन माहिं, भजिअ महामाया पतिहि ॥१४०॥**

**व्याख्या :**—कोई ऐसा देवता, मनुष्य और मुनि नहीं है, जिसे भगवान् की प्रबल मोहमाया ने मोहित न किया हो । मन में ऐसा विचार कर महामाया के स्वामी भगवान् का ही भजन करना चाहिये ।

**चौ०—अपर हेतु सुनु सैलकुमारी । कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी ॥**
**जेहि कारन अज अगुन अरूपा । ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा ॥**

**व्याख्या :**—हे पार्वती ! अब भगवान् के अवतार का दूसरा कारण सुनो, उसकी विचित्र कथा मैं विस्तारपूर्वक कहता हूँ—जिस कारण से जन्म-रहित, निर्गुण और रूपरहित ब्रह्म अयोध्या के राजा हुए ।

**जो प्रभु बिपिन फिरत तुम्ह देखा । बंधु समेत धरें मुनि बेषा ॥**
**जासु चरित अवलोकि भवानी । सती सरीर रहिहु बौरानी ॥**

**व्याख्या :**—जिन भगवान् को तुमने भाई के साथ मुनियों का सा वेष धारण किये वन में फिरते देखा था और हे भवानी ! जिनके चरित्र को देखकर सती के शरीर में तुम बावली-सी हो गयी थी—

अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी । तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी ॥
लीला कीन्हि जो तेहिं अवतारा । सो सब कहिहउँ मति अनुसारा ॥

व्याख्या :—और अभी भी तुम्हारे उस बावलेपन की छाया मिटी नहीं है। उन्हीं श्रीराम के भ्रमरूपी रोग के हरण करने वाले चरित्र सुनो। उस अवतार में श्रीराम ने जो-जो लीलाएँ की हैं, वह सब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हें कहूँगा।

भरद्वाज सुनि संकर बानी । सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी ॥
लगे बहुरि बरनै वृषकेतू । सो अवतार भयउ जेहि हेतू ॥

व्याख्या :—(याज्ञवल्क्य ने कहा) हे भारद्वाज! शिवजी की वाणी सुनकर पार्वतीजी संकोच और प्रेम से मुसकराईं। फिर शिवजी जिस कारण से भगवान् का वह अवतार हुआ था, उसका वर्णन करने लगे।

दो०—सो मैं तुम्ह सन कहउँ सबु, सुनु मुनीस मन लाइ।
राम कथा कलि मल हरनि, मंगल करनि सुहाइ ॥१४१॥

व्याख्या :—वही सब मैं तुमसे कहता हूँ। हे मुनीश्वर भरद्वाज! मन लगाकर सुनो। श्रीराम की कथा कलियुग के पापों को हरने वाली, कल्याण करने वाली और बड़ी सुन्दर है।

## मनु-शतरूपा-तप एवं वरदान

चौ०—स्वायंभू मनु अरु सतरूपा । जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा ॥
दंपति धरम आचरन नीका । अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका ॥

व्याख्या :—स्वायम्भुव मनु और उनकी पत्नी शतरूपा जिनसे मनुष्यों की यह अनोखी सृष्टि पैदा हुई, उन दोनों के धर्म और आचरण बहुत सुन्दर थे। आज भी वेद उनकी मर्यादा को गाते चले जाते हैं।

नृप उत्तानपाद सुत तासू । ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू ॥
लघु सुत नाम प्रियब्रत ताही । बेद पुरान प्रसंसहिं जाही ॥

व्याख्या :—उनके पुत्र राजा उत्तानपाद थे, जिनके पुत्र प्रसिद्ध हरि-भक्त ध्रुवजी हुए। उन (मनुजी) के छोटे पुत्र का नाम प्रियव्रत था, जिसकी वेद और पुराण प्रशंसा करते हैं।

देवहूति पुनि तासु कुमारी । जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी ॥
आदिदेव प्रभु दीनदयाला । जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला ॥

व्याख्या :—फिर उनकी पुत्री देवहूति हुई, जो मुनि कर्दम की प्रिय

पत्नी थी और जिसने आदिदेव, दीनदयालु भगवान् कपिल को गर्भ में धारण किया।

सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्त्व विचार निपुन भगवाना॥
तेहिं मनु राज कीन्ह बहुकाला। प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला॥

व्याख्या :—तत्त्वों का विचार करने में अत्यन्त चतुर जिन कपिल भगवान् ने सांख्यशास्त्र का स्पष्टरूप से वर्णन किया। उन स्वायम्भुव मनु ने बहुत दिनों तक राज्य किया और सब तरह से भगवान् की आज्ञा का पालन किया।

सो०—होइ न बिषय बिराग, भवन बसत भा चौथपन।
हृदयँ बहुत दुखु लाग, जनम गयउ हरिभगति बिनु॥१४२॥

व्याख्या :—घर में रहते-रहते बुढ़ापा आ गया, परन्तु विषयों से वैराग्य नहीं होता, (इस बात को सोचकर) हृदय में बड़ा भारी दुःख हुआ कि भगवान् की भक्ति बिना मेरा जन्म यों ही बीत गया।

चौ०—बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥
तीरथ बर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता॥

व्याख्या :—तब मनुजी ने विवश हो अपने पुत्र को राज्य दे दिया और स्वयं पत्नी-सहित वन को चले गये; नैमिषारण्य एक बड़ा प्रसिद्ध और सुन्दर तीर्थ है, जो अत्यन्त पवित्र और साधकों को सिद्धि देने वाला है।

विशेष :—भगवान् ने निमिषभर में यहाँ एक बड़े दैत्य को मारा था, इसीसे इस स्थान का नाम नैमिषारण्य प्रसिद्ध हुआ।

बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हियँ हरषि चलेउ मनु राजा॥
पंथ जात सोहहिं मतिधीरा। ग्यान भगति जनु धरें सरीरा॥

व्याख्या :—वहाँ मुनियों और सिद्धों का समाज रहता था। राजा मनु हृदय में प्रसन्न होकर वहीं चले। ये धीरबुद्धि वाले रास्ते में जाते हुए ऐसे शोभित हो रहे थे मानो ज्ञान और भक्ति ही शरीर धारण किये जा रहे हों।

पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। हरषि नहाने निरमल नीरा॥
आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी। धरम धुरंधर नृपरिषि जानी॥

व्याख्या :—चलते-चलते वे गोमती नदी के किनारे पहुँचे और हर्षित होकर उन्होंने निर्मल जल में स्नान किया। राजा मनु को धर्म-धुरंधर राजर्षि

जानकर सिद्ध, मुनि और ज्ञानी उनसे मिलने आये।

जहँ-जहँ तीरथ रहे सुहाए। मुनिन्ह सकल सादर करवाए॥
कृस सरीर मुनिपट परिधाना। सत समाज नित सुनहिं पुराना॥

व्याख्या:—जहाँ-जहाँ सुन्दर तीर्थ थे, उन सबके दर्शन मुनियों ने उन्हें आदर से करा दिये। उनका शरीर दुबला हो गया था, वे मुनियों के से वस्त्र पहिनते थे तथा संतो के समाज में नित्य पुराण सुनते थे।

दो०—द्वादस अच्छर मंत्र पुनि, जपहिं सहित अनुराग।
वासुदेव पद पंकरुह, दंपति मन अति लाग॥१४३॥

व्याख्या:—वे भगवान् के द्वादशाक्षर मन्त्र (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) को प्रेम से जपा करते थे और उन दोनों का मन भगवान् वासुदेव के चरण-कमलो में भली भाँति लग गया।

चौ०—करहिं अहार साक फल कन्दा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा॥
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूल फल त्यागे॥

व्याख्या:—वे साग, फल और कंद का आहार करते और सच्चिदानंद ब्रह्म का स्मरण करते थे। फिर वे भगवान् श्रीहरि के लिए तप करने लगे और मूल-फल को त्यागकर केवल पानी के आधार पर रहने लगे।

उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनन्त अनादि। जेहि चितहिं परमारथवादी॥

व्याख्या:—उनके हृदय में सदा यही कामना रहा करती थी कि हम उन परम प्रभु को आँखों से देखें, जो निर्गुण, अखण्ड, अनन्त और अनादि हैं, और जिनका परमार्थवादी चिन्तन किया करते हैं।

नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥

व्याख्या:—जिनका वेद ने नेति-नेति कहकर निरूपण किया है और जो आनन्दस्वरूप, उपाधिरहित और अनुपम है एवं जिनके अंश से अनेकों शिव, ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न होते हैं।

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई॥
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥

व्याख्या:—ऐसे (महान्) प्रभु भी अपने दास के वश में रहते हैं और भक्तों के लिए लीला से शरीर धारण करते हैं। यदि वेदों का यह वचन सत्य

है, तो हमारी अभिलाषा भी अवश्य पूरी होगी।

दो०—एहि विधि बीते बरष षट, सहस बारि आहार।
संवत सप्त सहस्र पुनि, रहे समीर अधार ॥१४४॥

व्याख्या :—इस प्रकार जल का आहार करके तप करते छः हजार वर्ष बीत गये। फिर सात हजार वर्ष वे पानी के आधार से रहे।

चौ०—बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पद दोऊ॥
बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा॥

व्याख्या :—और दस हजार वर्ष तक पानी का सहारा भी छोड़कर, दोनों एक पैर से खड़े रहे। उनके इस अपार तप को देखकर ब्रह्मा, विष्णु महेश कई बार मनुजी के पास आये।

मागहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहि चलहिं चलाए॥
अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा॥

व्याख्या :—उन्होंने इन्हे अनेक प्रकार से ललचाया और कहा—कुछ वर माँगो, पर वे परम धैर्यवान् राजा-रानी डिगाये नहीं डिगे। यद्यपि उनका शरीर हड्डियों का ढाँचामात्र रह गया था, फिर भी उनके मन में किसी प्रकार की पीड़ा नहीं थी।

प्रभु सर्बग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी॥
मागु मागु बरु भै नभ बानी। परम गंभीर कृपामृत सानी॥

व्याख्या :—सर्वज्ञ प्रभु ने अनन्य गति वाले तपस्वी राजा-रानी को निज दास जाना। तब बड़ी-गम्भीर और कृपा-रूपी अमृत से सनी हुयी आकाशवाणी हुई कि वर माँगो, वर माँगो।

मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। श्रवन रंध्र होइ उर जब आई॥
हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए। मानहुँ अबहिं भवन ते आए॥

व्याख्या :—जब मुर्दे को जिलाने वाली यह सुन्दर वाणी कानों के छेदों में होकर हृदय में आयी, तब राजा-रानी के शरीर ऐसे सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट हो गये मानो अभी घर से आये हैं।

दो०—श्रवन सुधा सम बचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दंडवत, प्रेम न हृदयँ समात॥१४५॥

व्याख्या :—कानों में अमृत के समान वचन सुनकर उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। (प्रभु को देख) मनुजी दण्डवत् करके बोले,

उस समय उनके हृदय में प्रेम समाता न था।

चौ०—सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। बिधि हरि हर बंदित पद रेनू॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनतपाल सचराचर नायक॥

व्याख्या :—हे भक्तों के कल्पवृक्ष! हे कामधेनु के समान प्रभो! सुनिये, ब्रह्मा, विष्णु और महेश आपकी चरण-रज की वन्दना करते हैं। आप सेवा करते ही मिलने वाले तथा सब सुखों को देने वाले हैं। आप शरणागत के रक्षक और चर-अचर के स्वामी हैं।

जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह वर देहू॥
जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥

व्याख्या :—हे अनाथों का हित करने वाले! यदि हम लोगों पर आपका स्नेह है, तो प्रसन्न होकर यह वरदान दीजिये कि आपका जो स्वरूप शिवजी के मन में बसता है और जिसके लिए मुनिजन यत्न किया करते हैं—

जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥

व्याख्या :—और जो स्वरूप काकभुशुण्डिजी के मनरूपी सरोवर में विहार करने वाला हंस है और जिसे वेदों ने सगुण तथा निर्गुण बखाना है, उसी रूप को हम नेत्र भरकर देखें—हे शरणागत के दुःख मिटाने वाले प्रभो! आप हम पर ऐसी कृपा कीजिये।

दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे॥
भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥

व्याख्या :—राजा-रानी के कोमल, विनययुक्त और प्रेम-रस में पगे हुए वचन भगवान् को बहुत ही प्रिय लगे और भक्तवत्सल, कृपानिधान, विश्व-व्यापी प्रभु प्रकट हो गये।

दो०—नील सरोरुह नील मनि, नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि, कोटिकोटि सतकाम॥१४४॥

व्याख्या :—भगवान् के नीलकमल, नीलमणि और नीले मेघ के समान (कोमल, प्रकाशमय और सरस) श्यामवर्ण की शोभा को देख करोड़ों कामदेव भी लजा जाते हैं।

चौ०—सरद मयंक बदन छबि सींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥
अधर अरुन रद सुन्दर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥

व्याख्या :—सुन्दरता की सीमा अर्थात् शरद् के परम सुन्दर चन्द्रमा के समान मुख, सुन्दर गाल और ठोडी और शंख के समान उनका कंठ था। तथा उनके लाल होठ, सुन्दर दाँत और नाक तथा चन्द्रमा की किरणों के पुंज की निन्दा करने वाली हँसी थी।

नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावँती जी की ॥
भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी ॥

व्याख्या :—हाल में खिले हुए कमल के समान उनके नेत्रों की छवि बड़ी सुन्दर थी तथा उनकी मनोहर चितवन मन को भाने वाली थी। उनकी टेढ़ी भौंहें कामदेव के धनुप की शोभा को हरने वाली थी और ललाट पर प्रकाशमय तिलक था।

कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा ॥
उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला पदिक हार भूपन मनिजाला ॥

व्याख्या :—कानों में मछली के आकार के कुंडल और सिर पर मुकुट शोभायमान था। उनके घूंघर वाले वाल ऐसे मालूम होते थे मानों भौंरों का झुण्ड हो। उनके हृदय पर श्रीवत्स का चिह्न, सुन्दर वनमाला, रत्न-जटितहार और मणियों के जाल में गुथे हुए आभूपण शोभित थे।

केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु विभूपण सुन्दर तेऊ ॥
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर सर कोवंडा ॥

व्याख्या :—सिंह के से कन्धे पर पड़ा हुआ सुन्दर जनेऊ था और भुजाओं में जो गहने थे, वे भी सुन्दर थे। हाथी की सूँड के समान उनके सुन्दर भुजदण्ड थे तथा उनकी कमर में तरकस तथा हाथ में धनुपवाण शोभाय-मान थे।

दो०—तड़ित बिनिंदक पीत पट, उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भवँर छबि छीनि ॥१४७॥

व्याख्या :—बिजली की निन्दा करने वाला पीताम्बर और पेट पर सुन्दर तीन रेखाएँ थीं। नाभी ऐसी मनोहर थी, मानो यमुनाजी के भँवरों की छवि छीने ही लेती हो।

विशेष :—व्यतिरेक एवं उत्प्रेक्षा अलंकार।

चौ०—पद राजीव बरनि नहि जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जेन्ह माहीं ॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला ॥

व्याख्या :—जिनमें मुनियों के मनरूपी भौंरे वसते हैं, भगवान् के उन चरणकमलों का वर्णन नहीं हो सकता। उनके वामांग में शोभा की राशि, जगत् की मूलकारणरूपा आदिशक्ति तथा सदा अनुकूल रहने वाली श्रीजानकी जी शोभायमान थीं।

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ।।
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई ।।

व्याख्या :—जिनके अंश से गुणों की खान अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं तथा जिनकी भृकुटी के संकेत से संसार की रचना हो जाती है, वे ही जानकीजी श्रीराम की वायीं ओर विराजमान थीं।

छवि समुद्र हरि रूप बिलोकी। एकटक रहे नयन पट रोकी ।।
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा ।।

व्याख्या :—सुन्दरता के समुद्र भगवान् श्री हरि का स्वरूप देखते ही मनु-शतरूपा पलकों को रोक एकटक (देखते ही) रह गये। उस अनुपम रूप को वे आदरसहित देख रहे थे और देखते-देखते अघाते ही न थे।

हरष विवस तन दसा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी ।।
सिर परसे प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाए करुनापुंजा ।।

व्याख्या :–वे खुशी के मारे अपने शरीर की सुधि भूल गये और हाथों से भगवान् के चरण पकड़कर दण्ड के समान भूमि पर गिर पड़े। दयानिधान भगवान् ने अपने कर-कमलों से उनके मस्तकों का स्पर्श किया और उन्हें तुरन्त ही उठा लिया।

दो०—बोले कृपानिधान पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि।
माँगहु वर जोइ भाव मन, महादानि अनुमानि ।।१४८।।

व्याख्या :—फिर कृपानिधान प्रभु बोले कि तुम मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानो और मुझे बड़ाभारी दानी समझकर, जो मन में भाये, वही वर माँग लो।

चौ०—सुनि प्रभु वचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोली मृदु बानी ।।
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे ।।

व्याख्या :—प्रभु के वचन सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर और धीरज धरकर राजा ने कोमल वाणी से कहा—नाथ! आपके चरण-कमलों के दर्शन कर अब हमारी सब कामनायें पूरी हो गयीं।

एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं॥
तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहि निज कृपनाईं॥

व्याख्या :—हमारे मन में एक बड़ी कामना है। उसका पूरा होना सहज भी है और अत्यन्त कठिन भी, इसीसे उसका वर्णन कहते नहीं बनता। हे स्वामी ! आपको देने में तो बहुत सहज है, पर मुझे अपनी कृपणता के कारण अत्यन्त कठिन लगती है।

जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई॥
तासु प्रभाउ जान नहिं सोई। तथा हृदयँ मम संसय होई॥

व्याख्या :—जैसे कोई दरिद्र कल्पवृक्ष को पाकर भी अधिक सम्पत्ति माँगने में संकोच करता है, क्योंकि वह उसके प्रभाव को नहीं जानता, वैसा ही संदेह मेरे मन में हो रहा है।

सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी॥
सकुच बिहाइ मागु नृप मोही। मोरें नहिं अदेय कछु तोही॥

व्याख्या :—सो हे अन्तर्यामी प्रभु ! आप स्वयं उसे जानते हैं। हे स्वामी ! मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये। (भगवान् ने कहा) हे राजन ! संकोच को त्यागकर मुझसे (जो चाहो) माँग लो, क्योंकि मेरे यहाँ कोई ऐसी वस्तु नहीं जो तुमको देने योग्य नहीं हो।

दो०—दानि सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउँ सतिभाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत, प्रभु सन कवन दुराउ॥१४९॥

व्याख्या :—(राजा ने कहा) हे दयासागर ! आप दानियों के शिरोमणि हैं। हे स्वामी ! मैं अपने मन का सच्चा भाव कहता हूँ कि मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ। प्रभु से भला क्या छिपाना !

चौ०—देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥

व्याख्या :—राजा की प्रीति को देख और सुन्दर वचन सुनकर करुणानिधान भगवान् ने कहा-एवमस्तु अर्थात् ऐसा ही हो। हे राजन् । मैं अपने समान कहाँ जाकर खोजूँ ? इसलिये मैं ही तुम्हरा पुत्र बनूँगा।

सतरूपहि बिलोकि कर जोरें। देबि मागु बरु जो रुचि तोरें॥
जो बरु नाथ चतुर नृप मागा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा॥

व्याख्या :—शतरूपाजी को हाथ जोड़े देखकर भगवान् बोले-हे देवि !

जो तुम्हारी इच्छा हो, सो वर मांग लो। (शतरूपा ने कहा) हे कृपालु ! जो वर मेरे स्वामी चतुर राजा ने मांगा है, वही मुझे बड़ा प्यारा लगा है।

प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहि सोहाई॥
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरजामि॥

व्याख्या :—हे प्रभो ! यद्यपि भक्तों के हित के लिए आपको हमारी कामना अच्छी तो लगी है, पर इस प्रकार की कामना बड़ी ढीठता है। (क्योंकि) आप ब्रह्मा आदि के पिता, जगत् के स्वामी और सबके हृदय के भीतर की जानने वाले ब्रह्म हैं।

अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई॥
जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥

व्याख्या :—यह समझकर मन में सन्देह होता है, लेकिन हे प्रभो ! आपने जो कहा है, वही सत्य है। हे नाथ ! जो आपके निजके भक्त हैं, वे जो सुख और गति पाते हैं—

दो०—सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरण सनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, हमहि कृपा करि देहु॥१५०॥

व्याख्या :—हे प्रभो ! वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही अपने चरणों में प्रेम, वही ज्ञान और वही रहन-सहन कृपा करके हमें दीजिये।

चौ०—सुनि मृदु गूढ़ रुचिर वर रचना। कृपासिन्धु बोले मृदु बचना॥
जो कछु रुचि तुम्हारे मन माहीं। मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं॥

व्याख्या :—(रानी के) कोमल, गूढ़ और परम सुन्दर वचनों की रचना सुनकर कृपा के समुद्र भगवान् कोमल वचन बोले कि तुम्हारे मन में जो कुछ इच्छा है, वह सब मैंने तुमको दिया; इसमें कुछ सन्देह नहीं।

मातु विवेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें॥
बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी। अवर एक विनती प्रभु मोरी॥

व्याख्या :—हे माता ! मेरी कृपा से तुम्हारा अलौकिक ज्ञान कभी नष्ट नहीं होगा। फिर मनु ने भगवान् के चरणों की वन्दना करते हुए कहा—हे प्रभो ! मेरी एक विनती और है।

सुत विषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ॥
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना॥

व्याख्या :—(हे प्रभो !) आपके चरणों में मेरी वैसी ही प्रीति हो

जैसी पुत्र के लिए पिता की होती है, भले ही कोई मुझे बड़ा भारी मूर्ख क्यों न कहे। जैसे मणि के बिना सांप और जल के बिना मछली नहीं रह सकती वैसे ही मेरा जीवन आपके अधीन रहे।

अस बर मागि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ॥
अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी॥

व्याख्या :—ऐसा वर माँग राजा चरण पकड़ कर रह गये, तब दयानिधान भगवान् ने कहा—ऐसा ही हो। अब तुम मेरी आज्ञा मानकर इन्द्रलोक में जाकर निवास करो।

सो०—तहँ करि भोग बिसाल, तात गएँ कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल, तब मैं होब तुम्हार सुत॥१५१॥

व्याख्या :—हे तात! वहाँ बहुत से भोग भोगकर और कुछ काल बीत जाने पर तुम अवध के राजा होगे। तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।

चौ०—इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥

व्याख्या :—अपनी इच्छा से मनुष्य रूप धरकर मैं तुम्हारे घर प्रकट होऊँगा और हे तात! मैं अपने अंशों-सहित शरीर धारण कर भक्तों को सुख देने वाला चरित्र करूँगा।

जे सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी॥
आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥

व्याख्या :—जिनको आदर से सुनकर भाग्यशाली मनुष्य ममता और मद त्यागकर संसार से तर जायँगे। आदिशक्ति मेरी यह माया भी, जिसने जगत् को उत्पन्न किया है, अवतार लेगी।

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा॥
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना। अन्तरधान भए भगवाना॥

व्याख्या :—मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूँगा। मेरा यह वचन सत्य है, सत्य है, सत्य है। बार-बार ऐसा कहकर कृपानिधान भगवान् अन्तर्धान हो गये।

दंपति उर धरि भगत कृपाला। तेहिं आश्रम निवसे कछु काला॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति बासा॥

व्याख्या :—वे दोनों स्त्री-पुरुष भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान

को हृदय में धारण कर कुछ काल तक वहाँ रहे। फिर उन्होंने समय पाकर बिना किसी कष्ट के ही शरीर त्यागकर इन्द्रपुरी में जाकर निवास किया।

दो०—यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कही वृषकेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, राम जनम कर हेतु ॥१५२॥

व्याख्या :—इस अत्यन्त पावन इतिहास को शिवजी ने पार्वतीजी से कहा था। (याज्ञवल्क्यजी कहते हैं) हे भरद्वाज ! अब श्रीराम के जन्म का दूसरा चरण सुनो।

## भानुप्रताप की कथा

चौ०—सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति संभु बखानी ॥
बिस्व बिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू ॥

व्याख्या :—हे मुनिराज ! वह पवित्र और प्राचीन कथा सुनो जो शिवजी ने पार्वतीजी से कही थी। विश्व में विख्यात एक कैकय देश है, जहाँ सत्यकेतु नाम का राजा रहता था।

धरम धुरंधर नीती निधाना। तेज प्रताप सील बलवाना ॥
तेहि कें भए जुगल सुत बीरा। सब गुन धाम महा रनधीरा ॥

व्याख्या :—वह धर्मधुरंधर, नीति की खान, तेजस्वी, प्रतापी, शीलवान् और बली था। उसके दो वीर पुत्र हुए, जो सब गुणों के भण्डार और बड़े ही रणधीर थे।

राज धनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही ॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुज बल अतुल अचल संग्रामा ॥

व्याख्या :—राज्य का उत्तराधिकारी जो बड़ा पुत्र था, उसका नाम प्रतापभानु था। दूसरे बेटे का नाम अरिमर्दन था, जिसकी भुजाओं में अपार बल था और जो युद्ध में अटल था।

भाइहि भाइहि परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीति ॥
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। हरि हित आपु गवन बन कीन्हा ॥

व्याख्या :—(परस्पर) भाई-भाई में बड़ा मेल था और सब दोषों तथा छलों से रहित सच्ची प्रीति थी। राजा ने जेठे पुत्र को राज्य दे दिया और आप भगवान् का भजन करने के लिए वन में चला गया।

दो०—जब प्रतापरबि भयउ नृप, फिरी दोहाई देस।
प्रजा पाल अति बेदबिधि, कतहुँ नहीं अघलेस ॥१५३॥

व्याख्या :—जब प्रतापभानु राजा हुआ तब देशभर में उसकी दुहाई फिर गयी। वह वेद की उत्तम रीति से प्रजा का पालन करने लगा, जिससे उसके राज्य में पाप का लेश भी नहीं रहा।

चौ०—नृप हितकारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्र समाना॥
सचिव सयान बंधु बलबीरा। आपु प्रतापपुंज रनधीरा॥

व्याख्या :—राजा का हितू और शुक्राचार्य के समान बुद्धिमान् धर्मरुचि नामक उसका मंत्री था इस प्रकार चतुर मंत्री तथा शूरवीर भाई के साथ राजा भी स्वयं बड़ा ही प्रतापी और रणधीर था।

सेन संग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा॥
सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना॥

व्याख्या :—साथ में अपार चतुरङ्गिनी सेना थी, जिसमें अनगिनती योद्धा थे, जो सबके सब लड़ाई में जूझ मरने वाले थे। अपनी सेना को देखकर राजा बहुत ही हर्षित हुआ और धमाधम नगाड़े बजने लगे।

बिजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई॥
जहँ तहँ परीं अनेक लराईं। जीते सकल भूप बरिआईं॥

व्याख्या :—विजय के लिए सेना सजाकर, राजा शुभ दिन साधकर और डंका बजाकर चला। जहाँ-तहाँ अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं और (अन्त में) उसने सब राजाओं को अपनी शक्ति से जीत लिया।

सप्तदीप भुजबल बस कीन्हे। लै लै दंड छांडि नृप दीन्हे॥
सकल अवनि मण्डल तेहि काला। एक प्रतापभानु महिपाला॥

व्याख्या :—उसने अपनी भुजाओं के बल से सातों दीपों को वश में कर लिया और वहाँ के राजाओं से दण्ड ले-ले कर उन्हें मुक्त कर दिया। उस समय समस्त भूमण्डल का एकमात्र प्रतापभानु ही राजा था।

दो०—स्वबस बिस्व करि बाहुबल, निज पुर कीन्ह प्रवेसु।
अरथ धरम कामादि सुख, सेवइ समयँ नरेसु॥१५४॥

व्याख्या :—अपनी भुजाओं के बल से संसार को वश में करके राजा ने अपने नगर में प्रवेश किया और समयानुसार धर्म, अर्थ, काम आदि के सब सुखों का सेवन करने लगा।

चौ०—भूप प्रतापभानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सुहाई॥
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुन्दर नर नारी॥

व्याख्या :—राजा प्रतापभानु का बल पाकर पृथ्वी सुन्दर कामधेनु के समान मनचाही वस्तु देने वाली हो गयी। प्रजा सब दुखों से रहित और सुखी थी तथा सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा थे।

सचिव धरमरुचि हरि पद प्रीती। नृप हित हेतु सिखव नित नीती॥
गुर सुर संत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सब कै सेवा॥

व्याख्या :—मन्त्री धर्मरुचि की भगवान् के चरणों में प्रीति थी और वह सदा राजा को उसके भले के लिए नीति का उपदेश दिया करता था। राजा प्रतापभानु सदा गुरु, देवता, सन्त, पितर और ब्राह्मण की सेवा किया करता था।

नृप धरम जे वेद बखाने। सकल करइ सादर सुख माने॥
दिन प्रति देइ विविध विधि दाना। सुनइ सास्त्र बर बेद पुराना॥

व्याख्या :—राजाओं के जो धर्म वेदों में कहे गये हैं उन सबका राजा प्रसन्न होकर श्रद्धापूर्वक पालन करता था। वह प्रतिदिन अनेक प्रकार के दान देता और सुन्दर वेद, शास्त्र एवम् पुराण सुनता था।

नाना बापीं कूप तड़ागा। सुमन वाटिका सुन्दर बागा॥
बिप्रभवन सुर भवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए॥

व्याख्या :—उसने बहुत सी बावड़ियाँ, कुएँ, तालाब, फूलों की बगीचियाँ और सुन्दर बाग, ब्राह्मणों के लिए घर और देवताओं के बड़े सुन्दर और विचित्र मन्दिर सब तीर्थों में बनवाये।

दो०—जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
वार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग॥१५५॥

व्याख्या :—वेदों और पुराणों में जितने प्रकार के यज्ञ कहे गये हैं, उन सभी को प्रेम-सहित एक-एक करके राजा ने हजार-हजार बार किया।

चौ०—हृदयँ न कछु फल अनुसन्धाना। भूप बिबेकी परम सुजाना॥
करइ जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी॥

व्याख्या :—राजा ने हृदय में (उन यज्ञों के) फल की कुछ भी कामना नहीं की। वह परम चतुर और ज्ञानी था। मन, वाणी और कर्म से वह ज्ञानी राजा जो कुछ भी धर्म (कर्म) करता था, उन्हें भगवान् वासुदेव के अर्पण करके करता था।

चढ़ि वर बाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा॥
बिंध्याचल गंभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ॥

व्याख्या :—एक बार वह राजा सुन्दर घोड़े पर चढ़कर और शिकार का सब सामान सजाकर विन्ध्याचल के घने जंगल में गया और वहाँ उसने बहुत से पवित्र (निषेध-रहित) पशुओं को मारा।

फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू॥
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं। मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं॥

व्याख्या :—राजा ने उस वन में घूमते हुए एक सूअर को देखा, जो ऐसा मालूम होता था मानो चन्द्रमा को ग्रसकर राहु वन में आ छिपा हो। (उसके मुँह से निकले हुए दाँत ऐसे मालूम होते थे) मानो चन्द्रमा बड़ा होने से उसके मुँह में समाता नहीं है और क्रोधवश होने से वह उसे उगलता भी नहीं है।

विशेष :—उत्प्रेक्षा अलंकार।

कोल कराल दसन छबि गाई। तनु बिसाल पीवर अधिकाई॥
घुरुघुरात हय आरौ पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ॥

व्याख्या :—मैंने उस भयानक सूअर के डरावने दाँतों की शोभा कही। उसका शरीर भी बहुत विशाल और मोटा था। घोड़े की आहट पाकर वह घुरघुराता हुआ कान उठाकर चकित हो देखने लगा।

दो०—नील महीधर सिखर सम, देखि बिसाल बराहु।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु॥१५६॥

व्याख्या :—नीले पर्वत के शिखर के समान उस विशाल सूकर को देखकर राजा घोड़े को चाबुक लगाकर तेजी से चला और उसने सूअर को ललकारते हुए कहा कि अब तेरा बचाव नहीं हो सकता।

चौ०—आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुत गति भाजी॥
तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना॥

व्याख्या :—घोड़े को बहुत शब्द करते हुए (बहुत तेजी से अपनी ओर) आता देखकर सूकर पवनवेग से भाग चला। राजा ने शीघ्र ही बाण चढ़ाया जिसे देखते ही वह धरती में दुबक गया।

तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा॥
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस बस भूप चलेउ संग लागा।

व्याख्या :—राजा तक-तक कर तीर चलाता था, पर सूअर छल करके शरीर बचाता था। वह सूअर कभी प्रकट होता और कभी छिपता हुआ भाग चला, राजा भी क्रोध के वश होकर उसके साथ ही लगा चला गया।

गयउ दूरि घन गहन वराहू। जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू॥
अति अकेल वन विपुल कलेसू। तदपि न मृग मग तजइ नरेसू॥

व्याख्या :—सूअर बहुत दूर ऐसे घने वन में चला गया, जहाँ हाथी घोड़े का निर्वाह न था। (यद्यपि) राजा अकेला था और वन में क्लेश भी बहुत था, तो भी उसने सूअर का पीछा नहीं छोड़ा।

कोल विलोकि नृप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरिगुहाँ गभीरा॥
अगम देखि नृप अति पछिताई। फिरेउ महावन परेउ भुलाई॥

व्याख्या :—राजा को बड़ा धैर्यवान् देखकर शूकर भाग कर पहाड़ की एक गहरी गुफा में घुस गया। उसमें जाना कठिन देखकर राजा बहुत पछताता हुआ लौट चला, पर उन घने जंगल में वह रास्ता भूल गया।

दो०—खेद खिन्न छुद्धित तृषित, राजा बाजि समेत।
खोजत व्याकुल सरित सर, जल बिनु भयउ अचेत॥१५७॥

व्याख्या :—राजा घोड़े-सहित थका हुआ, भूखा-प्यासा घबराकर नदी तालाब ढूँढ़ता फिरने लगा और पानी के अभाव में बेहाल हो गया।

चौ०—फिरत विपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनिबेषा॥
जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई। समर सेन तजि गयउ पराई॥

व्याख्या :—वन में फिरते-फिरते उसने एक आश्रम देखा जहाँ कपट से मुनि का वेष बनाये एक राजा रहता था, जिसका देश राजा ने छीन लिया था और जो युद्ध में सेना को छोड़ भाग आया था।

समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी॥

व्याख्या :—प्रतापभानु का अच्छा समय और अपना कुसमय अनुमान कर उसके मन में बहुत ग्लानि हुई। इससे वह न तो घर गया और न ही उस अभिमानी राजा ने प्रतापभानु से मेल ही किया।

रिस उर मारि रंक जिमि राजा। विपिन बसइ तापस कें साजा॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रतापरवि तेहिं तब चीन्हा॥

व्याख्या :—दरिद्र की तरह मन में क्रोध को दबाकर वह राजा तपस्वी

का वेष बनाकर वन में रहने लगा। राजा उसी के पास गया और उसने शीघ्र ही पहिचान लिया कि यह प्रतापभानु है।

राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुबेष महामुनि जाना॥
उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा॥

व्याख्या:—राजा प्यासा था, उसने उसे नहीं पहिचाना और उसका सुन्दर वेष देखकर उसे महामुनि जाना और घोड़े से उतर कर उसे प्रणाम किया। पर बहुत चतुर होने के कारण राजा ने अपना नाम नहीं बताया।

दो०—नूपति तृषित बिलोकि तेहिं, सरबरु दीन्ह देखाइ।
मज्जन पान समेत हय, कीन्ह नृपति हरषाइ॥ १५८॥

व्याख्या:—राजा को प्यासा देखकर उसने सुन्दर सरोवर दिखला दिया। राजा ने हर्षित होकर घोड़े सहित उसमें स्नान और जलपान किया।

चौ०—गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आश्रम तापस लै गयऊ॥
आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी॥

व्याख्या:—सब थकावट दूर हो गयी और राजा (स्नान एवं जलपान कर) सुखी हुआ, तब वह तपस्वी उसे अपने आश्रम में ले गया और सूर्यास्त का समय जानकर (बैठने के लिए) आसन दिया; फिर वह तपस्वी कोमल वाणी से बोला—

को तुम्ह कस बन फिरहु अकेलें। सुंदर जुबा जीव परहेलें॥
चक्रबर्ति के लच्छन तोरें। देखत दया लागि अति मोरें॥

व्याख्या:—तुम कौन हो? और वन में अकेले क्यों फिरते हो? तुम सुन्दर युवा होकर जीवन की परवाह क्यों नहीं करते? तुम्हारे चक्रवर्ती राजा के लक्षण देख मुझे बड़ी दया आती है।

नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥
फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बड़ें भाग देखेउँ पद आई॥

व्याख्या:—(प्रतापभानु ने कहा—) हे मुनीश्वर! सुनो, प्रतापभानु नाम का एक राजा है, मैं उसका मन्त्री हूँ। शिकार के लिए फिरते-फिरते रास्ता भूल गया हूँ। बड़े भाग्य से यहाँ आपके चरणों के दर्शन हुए।

हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा॥
कह मुनि तात भयउ अँधिआरा। जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा॥

व्याख्या:—हमें आपका दर्शन दुर्लभ था, इससे जान पड़ता है कि अब

कुछ अच्छा होने वाला है। मुनि बोला—हे तात ! अँधेरा हो गया और तुम्हारा नगर यहाँ से सत्तर योजन (२८० कोस) पर है।

दो०—निसा घोर गंभीर बन, पंथ न सुनहु सुजान।
बसहु आजु अस जानि तुम्ह, जाएहु होत बिहान ॥ १५९ (क) ॥

व्याख्या :—हे सुजान ! सुनो, घोर अँधेरी रात है, गहरा जंगल है और रास्ता सूझता नहीं है; यह जानकर आज तुम यहीं रहो, सवेरा होते ही चले जाना।

तुलसी जसि भवतब्यता, तैसी मिलइ सहाइ।
आपुन आवइ ताहि पहिं, ताहि तहाँ लै जाइ ॥ १५९ (ख) ॥

व्याख्या :—तुलसीदासजी कहते है कि जैसी होनहार होती है, वैसी ही उसे सहायता मिल जाती है। या तो वह आप ही उसके पास आती है या उसको वहाँ ले जाती है।

चौ०—भलेहिं नाथ आयसु धरि सीसा। बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा ॥
नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही। चरन बंदि निज भाग्य सराही ॥

व्याख्या :—राजा ने कहा—हे नाथ ! बहुत अच्छा (आज रात यहीं रह जाऊँगा), ऐसा कहकर और उसकी आज्ञा सिरपर धारण कर राजा घोड़े को पेड़ से बाँध कर बैठ गया। राजा ने उस तपस्वी की अनेक प्रकार से प्रशंसा की और उसके चरणों की वन्दना कर अपने भाग्य की सराहना की।

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाई ॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी ॥

व्याख्या :—फिर सुन्दर कोमल वाणी से कहा—हे प्रभो ! (मैं आपको) पिता समझकर एक ढिठाई करता हूँ। हे मुनिराज ! मुझे अपना पुत्र और सेवक समझकर हे स्वामी ! अपना नाम (धाम) विस्तार से कहिए।

तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना ॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा ॥

व्याख्या :—राजा ने उसे नहीं पहिचाना, पर वह (तपस्वी) राजा को पहिचान गया था। क्योंकि राजा तो शुद्धहृदय था और वह कपट में चतुर था। एक तो वह वैरी, दूसरे जाति का क्षत्रिय और तीसरे राजा—इसीसे वह छल-बल से अपना काम बनाना चाहता था।

समुझि राजसुख दुखित अराती । अवाँ अनल इव सुलगइ छाती ॥
सरल बचन नृप के सुनि काना । बयर सँभारि हृदयँ हरषाना ॥

व्याख्या :—वह शत्रु राज्य का सुख स्मरण करके दुखी हो रहा था और उसकी छाती कुम्हार के आँवे की आग के समान सुलग रही थी । राजा के सरल वचन कान से सुनकर उसने अपने वैर को याद किया और हृदय में प्रसन्न हुआ ।

दो०—कपट बोरि बानी मृदुल, बोलेउ जुगुति समेत ।
नाम हमार भिखारि अब, निर्धन रहित निकेत ॥ १६० ॥

व्याख्या :—फिर वह बड़ी युक्ति से कपट में सानकर कोमलवाणी बोला—अब हमारा नाम भिखारी है क्योंकि हम निर्धन और घर-रहित हैं ।

चौ०—कह नृप जे बिग्यान निधाना । तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना ॥
सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ । सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ ॥

व्याख्या :—राजा ने कहा—जो बड़े ज्ञानी हैं और आप के समान सर्वथा अभिमान-रहित हैं, वे सदा अपने को छिपाये रहते हैं । क्योंकि कुवेष बनाकर रहने में ही सब प्रकार का कल्याण है ।

तेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें । परम अकिंचन प्रिय हरि केरें ॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा । होत बिरंचि सिवहि संदेहा ॥

व्याख्या :—इसी से संत और वेद पुकार-पुकार कर कहते हैं कि जो परम अकिञ्चन हैं, वे ही भगवान् के प्यारे होते है । आप जैसे निर्धन भिखारियों को गृहहीन देखकर ब्रह्मा और शिवजी को भी सन्देह होता है (कि कहीं तपस्या के बल से इनका प्रभाव हमसे भी अधिक न हो जाय) ।

विशेष :—१. प्रथम दो चरण के भाव-साम्य के लिए श्रीवियोगी हरि द्वारा लिखित 'दीनों पर प्रेम' शीर्षक निबन्ध पठनीय है ।

२. सहजोबाई ने लिखा है—

बड़ा न जाने पाइहै, साहिब के दरबार ।
द्वारे ही सूँ लागि है, 'सहजो' मोटी मार ॥

३. उपमा अलंकार ।

जोसि सोसि तव चरन नमामी । मो पर कृपा करिअ अब स्वामी ॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी । आपु बिषय बिस्वास बिसेषी ॥

व्याख्या :—आप जो हों सो हों अर्थात् जो कोई भी हों, मैं आपके

चरणों में नमस्कार करता हूँ। हे स्वामी! अब मुझ पर कृपा कीजिये। राजा की स्वाभाविक प्रीति और अपने ऊपर अधिक विश्वास देखकर—

सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई॥
सुनु सतिभाउ कहहुँ महिपाला। इहाँ बसत बीते बहुकाला॥

व्याख्या :—सब प्रकार से राजा को अपनाकर (वश में करके), और (ऊपर से) अधिक स्नेह दिखलाता हुआ वह कपट-तपस्वी बोला—हे राजन्! सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि मुझे यहाँ रहते-रहते बहुत समय बीत गया।

दो०—अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ, मैं न जनावउँ काहु॥
लोकमान्यता अनल सम, कर तप कानन दाहु॥१६१॥ (क)

व्याख्या :—अब तक न तो कोई मुझे मिला और न ही मैंने अपने आपको किसी पर प्रकट किया, क्योंकि संसार का सन्मान अग्नि के समान है जो तपरूपी वन को जला देता है।

विशेष :—तृतीय चरण में उपमा और चतुर्थ में रूपक अलंकार है।

सो०—तुलसी देखि सुवेषु, भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुन्दर केकिहि पेखु, वचन सुधा सम असन अहि॥१६१॥

व्याख्या :—तुलसीदासजी कहते हैं कि सुन्दर वेष देखकर मूर्ख ही नहीं, चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते है। सुन्दर मोर को देखो जिसके वचन तो अमृत के समान हैं, पर वह साँप को भी खा जाता है।

चौ०—तातें गुपुत रहहुँ जगमाहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं॥
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ। कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ॥

व्याख्या :—इसीसे मैं संसार में छिपकर रहता हूँ और भगवान् को छोड़कर अन्य किसी से कुछ भी प्रयोजन नहीं रखता हूँ। प्रभु तो बिना ही जताये सब जानते हैं। कहो, फिर लोगों के रिझाने में क्या सिद्धि है?

तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरें। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरें॥
अब जौं तात दुरावउँ तोही। दारुन दोष घटइ अति मोही॥

व्याख्या :—तुम पवित्र और सुन्दर बुद्धिवाले हो, इससे मुझे बहुत ही प्रिय हो, फिर तुम्हारी भी मुझ पर प्रीति और विश्वास है। सो हे तात! अब जो मैं तुमसे कुछ भी छिपाता हूँ तो मुझे बड़ा भयानक पाप लगेगा।

जिमि जिमि तापसु कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा॥
देखा स्वबस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बगध्यानी॥

व्याख्या :—जैसे जैसे तपस्वी उदासीनता की बातें कहता था, त्यों-त्यों ही राजा को विश्वास उत्पन्न होता जाता था। जब राजा को मन, वचन और कर्म सब प्रकार से अपने वश में जाना तो बगुलाभगत-तपस्वी बोला—

नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी॥

व्याख्या :—हे भैया! हमारा नाम एकतनु है। यह सुन राजा ने फिर सिर नवाकर कहा—मुझे अपना बड़ा भक्त जानकर अपने नाम का अर्थ समझा कर कहिये।

दो०—आदि सृष्टि उपजी जबहिं, तब उतपति भै मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि॥१६२॥

व्याख्या :—जब सबसे पहले सृष्टि उत्पन्न हुई थी, तभी मेरी उत्पत्ति हुई थी। तब से फिर मैंने दूसरी देह धारण नहीं की, इससे मेरा नाम एक तनु है।

चौ०—जनि आचरजु करहु मन माहीं। सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं॥
तपबल तें जग सृजइ बिधाता। तपबल बिष्नु भए परित्राता॥

व्याख्या :—हे पुत्र! मन में आश्चर्य मत करो, तप से कुछ भी दुर्लभ नहीं है। तप के बल से ही विधाता विश्व को बनाता है और तप के बल से ही विष्णु संसार का पालन करने वाले बने हैं।

तपबल संभु करहिं संघारा। तप तें अगम न कछु संसारा॥
भयउ नृपहिं सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा॥

व्याख्या :—तप के बल से ही शिवजी (जगत् का) नाश करते हैं। इस प्रकार संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो तप से न मिल सके। यह सुन राजा को बड़ा प्रेम हुआ। तब वह तपस्वी पुरानी कथाएँ कहने लगा।

करम धरम इतिहास अनेका। करइ निरूपन बिरति बिबेका॥
उदभव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी॥

व्याख्या :—वह कर्म, धर्म, अनेकों प्रकार के इतिहास और ज्ञान एवम् वैराग्य का निरूपण करने लगा। उसने सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार की अनेक आश्चर्यजनक कथाओं का विस्तार से वर्णन किया।

सुनि महीप तापस बस भयऊ। आपन नाम कहन तब लयऊ॥
कह तापस नृप जानउँ तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही॥

व्याख्या—(उपर्युक्त कथाएँ) सुनते ही राजा तपस्वी के वश में हो गया और तब वह अपना नाम बताने लगा। तपस्वी ने कहा—हे राजन्! मैं तुम्हें जानता हूँ। तुमने मेरे से कपट किया, पर वह मुझे अच्छा लगा।

सो०—सुनु महीस अति नीति जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति, सोइ चतुरता बिचारि तव ॥१६३॥

व्याख्या :—हे राजन्! सुनो, ऐसी नीति है कि राजा लोग जहाँ-तहाँ अपना नाम नहीं कहते हैं। तुम्हारी उसी चतुरता को देखकर मेरी तुम पर बहुत प्रीति हो गयी है।

चौ०—नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा। सत्यकेतु तव पिता नरेसा ॥
गुर प्रसाद सब जानिअ राजा। कहिअ न आपन जानि अकाजा ॥

व्याख्या :—हे राजन्! तुम्हारा नाम प्रतापभानु है और सत्यकेतु तुम्हारे पिता थे। हे राजन्! गुरु की कृपा से मैं सब जानता हूँ, पर अपनी हानि समझकर कुछ कहता नहीं।

देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई ॥
उपजि परी ममता मन मोरें। कहउँ कथा निज पूछे तोरें ॥

व्याख्या:—हे तात! तुम्हारी स्वाभाविक सरलता, प्रेम, विश्वास और नीति-निपुणता देखकर मेरे मन में तुम्हारे लिए ममता उत्पन्न हो गयी है, इसीसे मैं तुम्हारे पूछने पर अपनी कथा कहता हूँ।

अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं। मागु जो भूप भाव मन माहीं ॥
सुनि सुबचन भूपति हरषाना। गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना ॥

व्याख्या :—मैं अब प्रसन्न हूँ, इसमें सन्देह नहीं। हे राजन्! जो तुम्हारे मन में अच्छा लगे सो माँगो। मुनि के सुन्दर वचन सुनकर राजा हर्षित हुआ और उसने (मुनि के) पैर पकड़ कर अनेक प्रकार से विनती की।

कृपासिन्धु मुनि दरसन तोरें। चारि पदारथ करतल मोरें ॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। मागि अगम बर होउँ असोकी ॥

व्याख्या:—हे दयासागर मुनि! आपके दर्शन से (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) चारों पदार्थ मेरी मुट्ठी में आ गये (मुझे प्राप्त हो गये)। तो भी स्वामी को प्रसन्न देखकर मैं कोई दुर्लभ वर माँगकर शोक-रहित क्यों न हो जाऊँ।

दो०—जरा मरन दुख रहित तनु, समर जितै जनि कोउ।
एकछत्र रिपुहीन महि, राज कलप सत होउ ॥१६४॥

व्याख्या :—मेरा शरीर वृद्धावस्था, मृत्यु और दुःख से रहित हो युद्ध में मुझे कोई जीत न सके । मेरा शत्रुहीन एकछत्र राज्य सौ कल्प तक पृथ्वी पर रहे ।

चौ०—कह तापस नृप ऐसेइ होऊ । कारन एक कठिन सुनु सोऊ ॥
कालउ तुअ पद नाइहि सीसा । एक बिप्रकुल छाड़ि महीसा ॥

व्याख्या :—तपस्वी ने कहा—हे राजन् ! ऐसा ही होगा, पर इसमें एक कठिन कारण है, उसे भी सुनो । हे पृथ्वी के स्वामी ! केवल एक ब्राह्मण के वंश को छोड़कर काल भी तुम्हारे चरणों पर सिर नवायेगा ।

तपवल विप्र सदा बरिआरा । तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा ॥
जौं बिप्रन्ह वस करहु नरेसा । तौ तुअ वस बिधि बिष्नु महेसा ॥

व्याख्या :—तप के बल से ब्राह्मण सदा ऐसे बलवान् रहते हैं कि उनके कोप से रक्षा करने वाला कोई नहीं है । सो हे नरेश ! यदि तुम ब्राह्मणों को अपने वश में करलो तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश सब तुम्हारे अधीन हो जायँगे ।

चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई । सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई ॥
बिप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला । तोर नास नहिं कवनेहुँ काला ॥

व्याख्या :—ब्राह्मण के वंश से जोर-जबर्दस्ती नहीं चलती, मैं दोनों भुजा उठाकर सत्य कहता हूँ । हे राजन् ! सुनो, ब्राह्मणों के शाप बिना तुम्हारा नाश किसी काल में भी नहीं होगा ।

हरषेउ राउ बचन सुनि तासू । नाथ न होइ मोर अब नासू ॥
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना । मो कहुँ सर्व काल कल्याना ॥

व्याख्या :—उसके वचन सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—हे स्वामी ! मेरा नाश अब नहीं होगा । हे कृपानिधान प्रभु ! आपकी कृपा से सब काल में मेरा कल्याण होगा ।

दो०—एवमस्तु कहि कपटमुनि, बोला कुटिल बहोरि ।
मिलब हमार भुलाब निज, कहहु त हमहि न खोरि ॥ १६५ ॥

व्याख्या :—ऐसा ही हो—कहकर वह कुटिल कपट मुनि फिर बोला—हे राजन् ! तुम हमारे मिलने और अपने राह भूल जाने की बात किसी से कहोगे (और काम बिगड़ जाय) तो इसमें मेरा दोष नहीं ।

चौ०—तातें मैं तोहि बरजउँ राजा। कहें कथा तव परम अकाजा॥
छठें श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥

व्याख्या :—हे राजन्! मैं इसलिए तुमसे मना करता हूँ क्योंकि यह बात कह देने से तुम्हारी बड़ी हानि होगी। छठे कान में इस कहानी के पड़ते ही तुम्हारा नाश हो जायगा—मेरी यह वाणी सत्य है।

यह प्रगटें अथवा द्विज श्रापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा॥
आन उपायँ निधन तव नाहीं। जौं हरि हर कोपहिं मन माहीं॥

व्याख्या :—हे प्रतापभानु! सुनो, या तो इस बात के खुलने से या ब्राह्मणों के शाप से तुम्हारा नाश होगा। यदि भगवान् विष्णु और महादेव भी अपने मन में क्रोध करें तो किसी अन्य उपाय से तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी।

सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा। द्विज गुर कोप कहहु को राखा।
राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जगत्राता॥

व्याख्या :—राजा ने मुनि के चरण पकड़कर कहा—हे स्वामी! सत्य ही है। ब्राह्मण और गुरु के कोप से भला कौन रक्षा कर सकता है। यदि विधाता भी क्रोध करें तो गुरु बचा लेता है, परन्तु गुरु से विरोध करने पर संसार में कोई भी बचाने वाला नहीं है।

जौं न चलब हम कहे तुम्हारें। होउ नास नहिं सोच हमारें॥
एकहिं डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा॥

व्याख्या :—जो मैं आपके कहने पर नहीं चलूँगा, तो मेरा नाश हो जाय। इसका सोच मुझे नहीं है। लेकिन हे प्रभो! मेरा मन तो एक ही भय से डर रहा है कि ब्राह्मणों का शाप बड़ा भयानक होता है।

दो०—होहिं बिप्र बस कवन बिधि, कहहु कृपा करि सोउ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज, हितू न देखउँ कोउ॥१६६॥

व्याख्या :—वे ब्राह्मण किस प्रकार वश में हों, कृपा करके वह भी कहिये। हे दीनदयालु! आपको छोड़ अन्य किसी को मैं अपना हितकारी नहीं समझता।

चौ०—सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीं। कष्टसाध्य पुनि होहिं कि नाहीं॥
अहइ एक अति सुगम उपाई। तहाँ परन्तु एक कठिनाई॥

व्याख्या :—(तपस्वी बोला) हे राजन्! सुनो, संसार में उपाय तो बहुत हैं परन्तु वे सभी कष्टसाध्य हैं और फिर उनकी सफलता भी निश्चित

नहीं है, वे सिद्ध हों या न हों। हाँ, एक उपाय बहुत सरल है, परन्तु उसमें भी एक कठिनाई है।

मम आधीन जुगुति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई॥
आजु लगें अरु जब तें भयऊँ। काहू के गृह ग्राम न गयऊँ॥

व्याख्या :—हे राजन् ! वह युक्ति तो मेरे हाथ है, पर तुम्हारे नगर में मेरा जाना नहीं हो सकता। जब से मैं पैदा हुआ हूँ, तब से आज तक किसी के घर या ग्राम में नहीं गया हूँ।

जौं न जाउँ तब न होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू॥
सुनि महीस बोलेउ मृदु बानी। नाथ निगम असि नीति बखानी॥

व्याख्या :—यदि मैं (तुम्हारें साथ) नहीं जाता हूँ, तो तुम्हारा काम बिगड़ता है। आज कैसा असमञ्जस आ पड़ा है? यह सुन राजा कोमल वाणी से बोला—हे नाथ ! वेदों मे ऐसी नीति कही है—

बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं॥
जलधि अगाध मौलि वह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू॥

व्याख्या :—बड़े छोटों पर स्नेह करते हैं। (इसीलिये) पर्वत अपने सिर पर सदा तृण धारण किये रहते हैं। अथाह समुद्र अपने मस्तक पर फेन को धारण करते हैं और पृथ्वी सदा अपने सिर पर धूल को धारण करती है।

दो०—अस कहि गहे नरेस पद, स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु, सज्जन दीनदयाल॥१६७॥

व्याख्या :—हे स्वामी ! कृपा कीजिये-ऐसा कहकर राजा ने मुनि के चरण पकड़ लिये। हे प्रभो ! मेरे लिए इतना कष्ट सहिये, क्योंकि आप बड़े सज्जन और दीनदयालु है।

चौ०—जानि नृपहि आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रबीना॥
सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही॥

व्याख्या :—राजा को अपने अधीन जानकर कपट में प्रवीण तपस्वी बोला—हे राजन् ! सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि दुनियाँ में मेरे लिए कठिन कुछ नहीं है।

अवसि काज मैं करिहउँ तोरा। मन तन बचन भगत तैं मोरा॥
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहि जब करिअ दुराऊ॥

व्याख्या :—मैं तुम्हारा कार्य अवश्य करूँगा; क्योंकि तुम मन, शरीर और वचन से मेरे भक्त हो। पर योग, युक्ति, तप और मन्त्रों का प्रभाव तभी फलता है जब इनको छिपाकर किया जावे।

जौं नरेस मैं करौं रसोई। तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई॥

व्याख्या :—हे नरेश ! यदि मैं रसोई बनाऊँ और तुम उसे परोसो तथा मुझे कोई जानने नहीं पावे, तो उस अन्न को जो जो खायेगा, वही तुम्हारे कहने में चलने लगेगा।

पुनि तिन्ह के गृह जेवँइ जोऊ। तव बस होइ भूप सुनु सोऊ॥
जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संवत भरि संकलप करेहू॥

व्याख्या :—हे राजन् ! यही नहीं, उनके घर भी जो कोई आकर भोजन करेगा, वह तुम्हारे वश में हो जायेगा। हे राजन् ! जाकर यही उपाय करो और वर्ष भर (भोजन कराने) का संकल्प करो।

दो०—नित नूतन द्विज सहस सत, बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकलप लगि, दिनहिं करबि जेवनार॥१६८॥

व्याख्या—नित्य नये सौ हजार ब्राह्मणों को कुटुम्ब-सहित न्योता दो और मैं तुम्हारे संकल्प के दिन तक अर्थात् वर्ष-भर भोजन बनाकर दिया करूँगा।

चौ०—एहि विधि भूप कष्ट अति थोरें। होइहहिं सकल विप्र बस तोरें॥
करिहहिं विप्र होम मख सेवा। तेहिं प्रसंग सहजेहिं बस देवा॥

व्याख्या :—हे राजन् ! इस प्रकार थोड़े ही कष्ट से सब ब्राह्मण तुम्हारे वश में हो जायेंगे। ब्राह्मण होम, यज्ञ और भगवान् की सेवा-पूजा करेंगे, इस प्रसंग से सब देवता भी सहज में ही वश में हो जायेंगे।

और एक तोहि कहउँ लखाऊ। मैं एहिं बेष न आउब काऊ॥
तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया। हरि आनब मैं करि निज माया॥

व्याख्या :—एक बात और भी तुमसे कहता हूँ कि मैं इस रूप में कभी नहीं आऊँगा। हे राजन् ! मैं अपनी माया से तुम्हारे पुरोहित को हर ले आऊँगा।

तपबल तेहि करि आपु समाना॥ रखिहउँ इहाँ बरष परवाना॥
मैं धरि तासु बेषु सुनु राजा। सब विधि तोर सँवारब काजा॥

व्याख्या :—तप के बल से उसे अपने समान करके एक वर्ष तक यहाँ रक्खूँगा, और हे राजन् ! सुनो, मैं उसका वेप धरकर सब तरह से तुम्हारा काम करूँगा।

गै निसि बहुत सयन अब कीजे। मोहि तोहि नृप भेंट दिन तीजे॥
मैं तपबल तोहि तुरग समेता। पहुँचैहउँ सोवतहि निकेता॥

व्याख्या :—रात बहुत बीत गयी, अब सो जाओ। हे राजन् ! मेरा और तुम्हारा मिलना तीसरे दिन होगा। मैं तप के बल से तुम्हें घोड़े-सहित सोते ही सोते घर पहुँचा दूँगा।

दो०— मैं आउब सोइ बेपु धरि, पहिचानेहु तब मोहि।
जब एकांत बोलाइ सब, कथा सुनावौं तोहि॥१६६॥

व्याख्या :—मैं वही (पुरोहित) का वेप धारण करके आऊँगा। जब मैं एकान्त में तुम्हें बुलाकर सब कथा सुनाऊँ, तब तुम मुझे पहिचान लेना।

चौ०—सयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाइ बैठ छलग्यानी॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई॥

व्याख्या :—राजा ने उसकी आज्ञा मानकर शयन किया और वह कपट-ज्ञानी जाकर आसन पर बैठ गया। राजा थका हुआ था, इससे उसे गहरी नींद आ गई, पर वह कपटी कैसे सोता ? उसे तो बहुत सोच था।

कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहिं सूकर होइ नृपहि भुलावा॥
परम मित्र तापस नृप केरा। जानइ सो अति कपट घनेरा॥

व्याख्या :—(इतने में) वहाँ कालकेतु राक्षस आया, जिसने शूकर बनकर राजा को (जंगल में) भटकाया था। वह तपस्वी राजा का परम मित्र था और खूब छल-प्रपञ्च जानता था।

तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दुखदाई॥
प्रथमहिं भूप समर सब मारे। बिप्र संत सुर देखि दुखारे॥

व्याख्या :—उसके सौ पुत्र और दस भाई थे, जो बहुत ही दुष्ट, अजय और देवताओं को भी दुःख देने वाले थे। राजा (प्रताप भानु) ने ब्राह्मणों, संतों और देवताओं को दुखी देखकर उन सबको पहले ही लड़ाई में मार दिया था।

तेहिं खल पाछिल बयरु सँभारा। तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा॥
जेहिं रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ॥

व्याख्या :—उस दुष्ट ने पिछला वैर स्मरण करके तपस्वी राजा से मिलकर सलाह की (षड्यन्त्र रचा) और जिससे शत्रु का नाश हो, वही उपाय रचा। लेकिन भावीवश राजा कुछ भी न जान सका।

दो०— रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिअ न ताहु ॥
अजहुँ देत दुख रवि ससिहि, सिर अवसेषित राहु ॥१७०॥

व्याख्या :—तेजस्वी शत्रु अकेला ही क्यों न हो, तो भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिये। यह राहु जिसका सिर मात्र बचा था, आज तक सूर्य-चन्द्रमा को दुःख देता है।

चौ०— तापस नृप निज सखहि निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी ॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई ॥

व्याख्या :—तपस्वी राजा अपने मित्र को देख प्रसन्न हो उठकर मिला और सुखी हुआ। उसने मित्र को सब कथा कह सुनाई, (जिसे सुनकर कालकेतु) राक्षस सुख पाकर बोला—

अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा ॥
परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई। बिनु औषध बिआधि बिधि खोई ॥

व्याख्या :—हे राजा ! सुनो, जो तुमने मेरे कहने के अनुसार काम किया, तो (समझो) अब वैरी को वश में कर लिया। तुम अब चिन्ता छोड़कर सो जाओ, क्योंकि विधाता ने बिना ही दवा के रोग दूर कर दिया।

कुल समेत रिपु मूल बहाई। चौथें दिवस मिलब मैं आई ॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी। चला महाकपटी अतिरोषी ॥

व्याख्या :—कुल-सहित शत्रु को जड़-मूल से बहाकर मैं आज से चौथे दिन तुमसे आकर मिलूँगा। (इस प्रकार) तपस्वी राजा को बहुत ढाढ़स बँधाकर, वह महाकपटी और अत्यन्त क्रोधी राक्षस चला।

भानुप्रतापहि बाजि समेता। पहुँचाएसि छन माझ निकेता ॥
नृपहि नारि पहिं सयन कराई। हय गृहँ बाँधेसि बाजि बनाई ॥

व्याख्या :—उसने राजा प्रतापभानु को घोड़े-सहित क्षण भर में घर पहुँचा दिया। राजा को रानी के पास सुलाकर घोड़े को घुड़साल में बाँध दिया।

दो०—राजा के उपरोहितहि, हरि लै गयउ बहोरि।
लै राखेसि गिरि खोह महुँ, माया करि मति भोरि ॥१७१॥

**व्याख्या :**—फिर वह राजा के पुरोहित को उठा ले गया और उसे पर्वत की खोह में रक्खा और (अपनी) माया से उसकी बुद्धि को भ्रम में डाल दिया।

**चौ०—आपु विरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा॥**
**जागेउ नृप अनभएँ बिहाना। देखि भवन अति अचरजु माना॥**

**व्याख्या :**—फिर आप पुरोहित का रूप बनाकर उसकी सुन्दर सेज पर जा लेटा। राजा सवेरा होने से पहले ही जागा और अपने को महल में देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ।

**मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी। उठेउ गवँहि जेहि जान न रानी॥**
**कानन गयउ बाजि चढ़ि तेहीं। पुर नर नारि न जानेउ केहीं॥**

**व्याख्या :**—मुनि की महिमा का मन में अनुमान करके राजा चुपके से उठा, जिससे रानी न जान ले। फिर उसी घोड़े पर चढ़कर वन को चला गया। नगर के किसी भी स्त्री-पुरुष ने नहीं जाना।

**गएँ जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥**
**उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा॥**

**व्याख्या :**—दोपहर बीत जाने पर राजा (नगर में) आया, तब घर-घर में उत्सव होने लगे और बधावा बजने लगा। जब राजा ने पुरोहित को देखा, तो उस कार्य का स्मरण कर चकित हो उसे देखने लगा।

**जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनि पद रह मति लीनी॥**
**समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समुझावा॥**

**व्याख्या :**—राजा को तीन दिन एक युग के समान बीते और उसकी मति कपटी मुनि के चरणों में लगी रही। उचित समय जानकर पुरोहित (बना हुआ राक्षस) आया और उसने सब मत (भावी कार्यक्रम) कहकर राजा को समझाया।

**दो०—नृप हरषेउ पहिचानि गुरु, भ्रम बस रहा न चेत।**
**बरे तुरत सत सहस बर, बिप्र कुटुम्ब समेत॥१७२॥**

**व्याख्या :**—राजा गुरु को पहचानकर प्रसन्न हुआ और भ्रम में होने के कारण उसे कुछ चेत (ज्ञान) नहीं रहा। उसने शीघ्र ही एक लाख ब्राह्मणों को कुटुम्ब-सहित निमन्त्रण दे दिया।

चौ०—उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारि बिधि जसि श्रुति गाई॥
मायामय तेहिं कीन्हि रसोई। बिंजन बहु गनि सकइ न कोई॥

व्याख्या :—पुरोहित ने जैसा वेदों में कहा है उसी के अनुसार छः रस (मीठा, खट्टा, नमकीन, कड़वा, कसेला, चरपरा) और चार प्रकार के भोजन (भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य) बनाये। उसने मायामयी रसोई बनाई और इतने व्यञ्जन बनाये जिन्हें कोई गिन नहीं सकता।

बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महुँ बिप्र माँसु खल साँधा॥
भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए। पद पखारि सादर बैठाए॥

व्याख्या :—अनेक प्रकार के पशुओ का माँस पकाया और फिर उसमें उस दुष्ट ने ब्राह्मणों का माँस भी मिला दिया। (राजा ने) भोजन के लिए सब ब्राह्मणों को बुलाया और उनके चरण धोकर आदर से बैठाया।

परुसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकासबानी तेहि काला॥
बिप्रबृन्द उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥

व्याख्या :—जब राजा परोसने लगा, उसी समय (कालकेतु कृत) आकाशवाणी हुयी—हे ब्राह्मणो! उठकर अपने घर जाओ (नहीं तो) बड़ी हानि होगी, यह अन्न मत खाना।

भयउ रसोईं भूसुर माँसू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू॥
भूप बिकल मति मोहँ भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी॥

व्याख्या :—रसोई में ब्राह्मणों का मांस पकाया गया है। आकाशवाणी का विश्वास करके सब ब्राह्मण उठ गये। राजा व्याकुल हो गया, मोह ने उसकी बुद्धि भ्रष्ट करदी और होनहारवश उसके मुँह से आवाज तक न निकली।

दो०—बोले बिप्र सकोप तब, नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप, मूढ़ सहित परिवार॥१७३॥

व्याख्या :—तब ब्राह्मणों ने कुछ विचार नहीं किया और गुस्से में भरकर बोले—अरे मूर्ख राजा! तू जाकर परिवार-सहित राक्षस हो।

चौ०—छत्रबन्धु तैं बिप्र बोलाई। घालै लिए सहित समुदाई॥
ईस्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा॥

व्याख्या :—रे क्षत्रियों में नीच! तू ब्राह्मणों को बुलाकर परिवार-सहित भ्रष्ट करना चाहता था, (अब तो) ईश्वर ने हमारे धर्म की रक्षा की,

पर तू परिवार-सहित नष्ट हो जायगा।

संबत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ॥
नृप सुनि श्राप विकल अति त्रासा। भै बहोरि बर गिरा अकासा॥

व्याख्या :—एक वर्ष के भीतर तेरा नाश हो जायगा और तेरे वंश में कोई पानी देने वाला तक नहीं रहेगा। शाप सुनकर राजा भय से अत्यन्त व्याकुल हो गया। (उसी समय) फिर सुन्दर आकाशवाणी हुयी—

विप्रहु श्राप विचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा॥
चकित विप्र सब सुनि नभ बानी। भूप गयउ जहँ भोजन खानी॥

व्याख्या :—हे ब्राह्मणों! तुमने विचारकर शाप नहीं दिया। क्योंकि राजा ने कुछ भी अपराध नहीं किया है। आकाशवाणी सुनकर सब ब्राह्मण चकित हो गये और राजा वहाँ गया जहाँ भोजन बना था।

तहँ न असन नहिं विप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा॥
सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनीं अकुलाई॥

व्याख्या :—वहाँ न तो भोजन था और न रसोइया ब्राह्मण ही। राजा अपने मन में अपार चिन्ता करता हुआ लौटा और उसने सब वृतान्त ब्राह्मणों को सुना दिया। (भावी के) भय से व्याकुल होकर राजा पृथ्वी पर गिर पड़ा।

दो०—भूपति भावी मिटइ नहिं, जदपि न दूषन तोर।
किएँ अन्यथा होइ नहिं, विप्र श्राप अति घोर॥१७४॥

व्याख्या :—(ब्राह्मण बोले) हे राजन्! यद्यपि तुम्हारा दोष नहीं है तो भी होनहार नहीं मिटती। ब्राह्मणों का शाप बहुत भयानक होता है और यह किसी तरह भी टाले नहीं टलता।

चौ०—अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुरलोगन्ह पाए॥
सोचहिं दूषन दैवहि देहीं। बिरचत हंस काग किए जेहीं॥

व्याख्या :—ऐसा कहकर सब ब्राह्मण चले गये। जब नगर के लोगों ने यह समाचार पाया तो वे चिन्ता करने और विधाता को दोष देने लगे कि उसने राजा को हंस बनाते-बनाते कौआ बना दिया।

उपरोहितहि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई॥
तेहिं खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब धाए॥

व्याख्या :—उस राक्षस ने पुरोहित को उसके घर पहुँचा कर (कपटी)

तपस्वी को खबर दी। फिर उस दुष्ट ने जहाँ-तहाँ पत्र भेजे, जिससे सब (शत्रु) राजा अपनी-अपनी सेना सजाकर आ पहुँचे।

घेरेन्हि नगर निसान बजाई। विविध भाँत्ति नित होइ लराई॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी॥

व्याख्या :—उन्होंने डंका बजाकर नगर को घेर लिया और नित्य अनेक प्रकार से लड़ाई होने लगी। सब योद्धा शूरवीरों की करनी करके युद्ध में जूझ मरे। राजा भी भाई सहित पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बांचा। विप्रश्राप किमि होइ असांचा॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय जसु पाई॥

व्याख्या :—सत्यकेतु के कुल में कोई नहीं बचा। ब्राह्मणों का शाप झूठा कैसे हो सकता है? शत्रु को जीतकर, नगर को (फिर से) बसाकर सब राजा विजय और यश पाकर अपने-अपने नगर को चले गये।

दो०—भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ विधाता बाम।
धूरि मेरुसम जनक जम, ताहि ब्यालसम दाम॥ १७५॥

व्याख्या :—हे भरद्वाजजी! सुनिये, जब विधाता जिसके विपरीत होता है, तब उसके लिए धूल सुमेरुपर्वत के समान, पिता यम के समान और स्त्री साँप के समान हो जाती है।

## रावण आदि का जन्म और तप

चौ०—काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुजबंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥

व्याख्या :—हे मुनि! सुनो, समय पाकर वही राजा अपने-परिवार सहित रावण नामक राक्षस हुआ। उसके दस सिर और बीस भुजायें थीं तथा वह बहुत ही प्रचण्ड शूरवीर था।

भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥

व्याख्या :—राजा का छोटा भाई जिसका नाम अरिमर्दन था, वह महा बलवान कुम्भकर्ण हुआ और जो उसका मंत्री धर्मरुचि था, वह विमाता से उसका छोटा भाई हुआ।

नाम बिभीषन जेहि जग जाना। विष्नु भगत बिग्यान निधाना॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे॥

व्याख्या :—उसका नाम विभीषण था, जिसे सारा संसार जानता है। वह विष्णु का भक्त और ज्ञान का भण्डार था। राजा के जो पुत्र और सेवक थे, वे सब भी बड़े भयानक राक्षस हुए।

कामरूप खल जिनस अनेका। कुटिल भयंकर विगत विवेका॥
कृपा रहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाहिं बिस्व परितापी॥

व्याख्या :—वे सब अनेक जाति के, मनमाना रूप धारण करने वाले, दुष्ट, कुटिल, भयंकर और विवेक-रहित थे। वे सभी पापी, निर्दयी और हिंसक थे तथा जगत को ऐसा दुःख देने वाले थे कि उसका वर्णन नहीं हो सकता।

दो०—उपजे जदपि पुलस्त्यकुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप बस, भए सकल अघरूप॥ १७६॥

व्याख्या :—यद्यपि वे पुलस्त्य मुनि के पवित्र, निर्मल और उपमारहित कुल में उत्पन्न हुए थे, तो भी ब्राह्मणों के शाप से वे सभी पापरूप हुए।

चौ०—कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई॥
गयउ निकट तप देखि बिधाता। मागहु बर प्रसन्न मैं ताता॥

व्याख्या :—तीनों भाइयों ने अनेक प्रकार की ऐसी घोर तपस्या की, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। उनका तप देखकर ब्रह्माजी उनके पास गये और कहा—हे तात! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो।

करि बिनती पद गहि दससीसा। बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा॥
हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुइ बारें॥

व्याख्या :—रावण ने विनती करके और चरण पकड़ कर कहा—हे जगदीश्वर! सुनिये, (मुझे यह वर दीजिये कि) हम वन्दर और मनुष्य को छोड़कर अन्य किसी के मारे न मरें।

एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्माँ मिलि तेहि बर दीन्हा॥
पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गयऊ। तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ॥

व्याख्या :—(शिवजी बोले कि हे पार्वती!) मैंने और ब्रह्मा ने मिलकर उसे वर दिया कि ऐसा ही हो, तुमने बड़ा तप किया है। फिर ब्रह्माजी कुम्भकर्ण के पास गये और उसे देखकर उनके मन में बहुत आश्चर्य हुआ।

जौं एहिं खल नित करब अहारू। होइहि सब उजारि संसारू॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी। मागेसि नीद मास षट केरी॥

व्याख्या :—जो यह दुष्ट नित्य भोजन करेगा, तो सारा संसार उजड़ जायेगा। (ऐसा विचारकर) उन्होंने सरस्वति को प्रेरित कर उसकी बुद्धि फेर दी, जिससे उसने छः महीने की नींद मांगी।

दो०—गए विभीषन पास पुनि, कहेउ पुत्र बर मागु।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु ॥ १७७ ॥

व्याख्या :—फिर वे विभीषण के पास गये और कहा—हे पुत्र ! वर मांगो। उसने मांगा कि भगवान् के चरण-कमलों में निर्मल प्रेम हो।

चौ०—तिन्हहि देइ बर ब्रह्म सिधाए। हरषित ते अपने गृह आए॥
मय तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा॥

व्याख्या :—उनको वर देकर ब्रह्माजी चले गये और वे (रावण आदि तीनों भाई) प्रसन्न होकर अपने घर लौट आये। मय दानव की मन्दोदरी नाम की कन्या परम सुन्दरी और नारियों में शिरोमणि थी।

सोइ मयँ दीन्हि रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी॥
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई॥

व्याख्या :—मय ने उसे लाकर रावण को दिया। उसने यह जान लिया कि यह राक्षसों का राजा होगा। अच्छी स्त्री को पाकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ और फिर उसने जाकर दोनों भाइयों का विवाह किया।

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी॥
सोइ मय दानवँ बहुरि सँवारा। कनक रचित मनिभवन अपारा॥

व्याख्या :—समुद्र के बीच में त्रिकूट पर्वत पर ब्रह्मा का बनाया एक बड़ा भारी किला था। उसी को मय दैत्य ने फिर से सँवारा। उसमें मणियों से जड़े हुए बहुत से महल थे।

भोगावति जसि अहिकुल बासा। अमरावति जसि सक्रनिवासा॥
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका॥

व्याख्या:—जैसे नागों के कुलों के रहने के लिए भोगावती पुरी है और इन्द्र के निवास करने के लिए अमरावती है, इनसे भी अधिक सुन्दर और बाँकी वह लंका थी, जिसका नाम संसार में प्रसिद्ध है।

दो०—खाईं सिंधु गभीर अति, चारिहुँ दिसि फिरि आव॥
कनक कोट मनि खचित दृढ़, बरनि न जाइ बनाव ॥१७८॥ (क)

व्याख्या :—उसे चारों ओर से समुद्र की अत्यन्त गहरी खाई घेरे हुए

है। उसके बड़ा मजबूत मणियों से जड़ा हुआ सोने का परकोटा है, जिसकी सुन्दर बनावट का वर्णन नहीं हो सकता।

हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ, जातुधानपति होइ।
सूर प्रतापी अतुलबल, दल समेत बस सोइ ॥१७८॥ (ग)

व्याख्या :—भगवान् की प्रेरणा से जिस कल्प में जो कोई राक्षसों का राजा होता है, वही शूर, प्रतापी और अतुलित बलवान् अपनी सेना-सहित वहीं बसता है।

चौ०—रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर संघारे॥
अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥

व्याख्या :—वहाँ बड़े-बड़े भारी राक्षस योद्धा रहते थे, जिन्हें लड़ाई में देवताओं ने मार डाला था। अब वहाँ इन्द्र की प्रेरणा से कुबेर के एक करोड़ रक्षक रहते हैं।

दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई॥
देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई॥

व्याख्या :—रावण ने कहीं से यह खबर पाकर और सेना सजाकर लंका के किले को जा घेरा। उस बड़े विकट योद्धा और उसकी विशाल सेना को देखकर, यक्ष अपने-अपने प्राण लेकर भाग गये।

फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेषा॥
सुन्दर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी॥

व्याख्या :—रावण ने सारे नगर को घूम-फिरकर भली प्रकार देखा। इससे उसकी चिन्ता मिट गयी और उसे परम हर्ष हुआ। उस पुरी को स्वाभाविक ही सुन्दर और बाहर वालों के लिए दुर्गम अनुमान करके रावण ने वहाँ अपनी राजधानी बनाई।

जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे॥
एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा॥

व्याख्या :—जो जिसके लायक था उसे वैसा ही घर देकर रावण ने सभी राक्षसों को सुखी किया। एक बार उसने कुबेर पर चढ़ाई की और उसका पुष्पक विमान जीतकर ले आया।

दो०—कौतुकहीं कैलास पुनि, लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहुबल, चला बहुत सुख पाइ॥१७९॥

व्याख्या :—फिर एक बार खिलवाड़ में ही जाकर उसने कैलाश पर्वत को उठा लिया मानो अपनी भुजाओं का बल तौलकर और बहुत सुख पाकर वह वहाँ से चल दिया।

चौ०—सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई॥

व्याख्या :—सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई—ये सब उसके नित्य ही ऐसे बढ़ने लगे जैसेकि प्रत्येक लाभ से लोभ अधिक बढ़ता है।

अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता॥
करइ पान सोवइ षटमासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा॥

व्याख्या :—उसके कुंभकर्ण के समान अत्यन्त बलवान् भाई था, जिसका सामना करने वाला योद्धा जगत् में कोई नहीं हुआ। वह शराब पीकर छः महीने तक सोता था और उसके जागते ही तीनों लोकों में डर फैल जाता था।

जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई॥
समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम अमित बीर बलवाना॥

व्याख्या :—यदि वह प्रतिदिन भोजन करता, तो शीघ्र ही सारा संसार चौपट (खाली) हो जाता। युद्ध में वह ऐसा धीर था कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। लंका में उसके समान और भी अगणित बलवान् वीर थे।

बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू॥
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई॥

व्याख्या :—मेघनाद उसका बड़ा पुत्र था, जिसका संसार के योद्धाओं में पहला नम्बर था। युद्ध में कोई भी उसके सामने नहीं ठहरता था तथा स्वर्ग में तो (उसके भय से) नित्य ही भगदड़ मची रहती थी।

दो०—कुमुख अकंपन कुलिसरद, धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय॥१८०॥

व्याख्या :—(इनके अतिरिक्त रावण के पास) दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदन्त, धूमकेतु और अतिकाय आदि महावीर योद्धाओं का ऐसा समूह था कि उसमें से प्रत्येक सारे जगत् को जीत सकता था।

चौ०—कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन्ह कें धरम न दाया॥
दसमुख बैठ सभाँ एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा॥

व्याख्या :—वे सभी राक्षस मनमाना रूप बना सकते थे और आसुरी माया जानते थे। दया-धर्म उनमें स्वप्न में भी नहीं था। एक बार सभा में बैठे हुए रावण ने अपने परिवार को देखा।

सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी॥

व्याख्या :—बेटे-पोते, नाती, कुटुम्बी और सेवक ढेर-के ढेर थे। उन राक्षसों को गिनकर कौन पार पा सकता था? अपनी सेना देखकर स्वभाव से ही अभिमानी रावण क्रोध और गर्व में सने हुए वचन बोला—

सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई॥

व्याख्या :—हे समस्त राक्षसों के समूह! सुनो, देवतागण हमारे बैरी हैं। वे हमारे सामने होकर लड़ाई नहीं करते। बलवान् शत्रु को देखकर सब भाग जाते हैं।

तेन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहउँ बुझाइ सुनहु अब सोई॥
द्विज भोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा॥

व्याख्या :—उनका मरना केवल एक ही उपाय से हो सकता है। मैं अब समझाकर कहता हूँ सो सुनो—ब्राह्मणभोजन, यज्ञ, होम और श्राद्ध (ये सब देवताओं के बल को बढ़ाने वाले हैं। अतः) तुम जाकर इन सबमें विघ्न उत्पन्न करो।

दो०—छुधा छीन बलहीन सुर, सहजेहिं मिलिहहिं आइ।
तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ, भली भाँति अपनाइ॥

व्याख्या :—भूख से दुर्बल और बलहीन होकर देवता सहज में ही आ मिलेंगे, तब या तो मैं उनको मार डालूँगा या भली भाँति उन्हें अपना बनाकर छोड़ दूँगा।

चौ०—मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा। दीन्ही। सिख बलु बयरु बढ़ावा॥
जे सुर समर धीर बलवाना। जिन्ह कें लरिबे कर अभिमाना॥

व्याख्या :—फिर मेघनाथ को बुलाकर उसे देवताओं से वैर बढ़ाने और अपना बल बढ़ाने की शिक्षा दी और कहा—जो देवता युद्ध में धीर

और बलवान् हैं और जिनको लड़ने का अभिमान है।

तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी ॥
एहि विधि सबही अग्या दीन्ही। आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही ॥

व्याख्या :—उन्हें लड़ाई में जीतकर बाँध लाना। (यह सुनते ही) मेघनाथ पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर उठा। इसी तरह उसने सबको आज्ञा दी और आप भी हाथ में गदा लेकर चल दिया।

चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी ॥
रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा ॥

व्याख्या :—रावण के चलने से धरती डगमगाने लगी और उसकी गर्जना से देवताओं की स्त्रियों के गर्भ गिरने लगे। रावण का क्रोधसहित आता सुनकर देवताओं ने सुमेरु पर्वत की गुफाएँ तकीं अर्थात् वहाँ जा छिपे।

दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए ॥
पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारि ॥

व्याख्या :—दिक्पालों के सारे सुन्दर लोकों को रावण ने सूना पाया। वह बार-बार भारी सिंहगर्जना करके देवताओं को ललकार कर गालियाँ देने लगा।

रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा ॥
रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी ॥

व्याख्या :—लड़ाई के मद में मतवाला हुआ रावण अपनी बराबरी का योद्धा खोजता हुआ जगत् में फिरने लगा, परन्तु उसे ऐसा योद्धा कहीं नहीं मिला। सूर्य, चन्द्रमा, पवन, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल और यम ये सब अधिकारी—

किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा ॥
ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी ॥
आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता ॥

व्याख्या :—किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग—इन सबके पीछे वह हठी हाथ धोकर पड़ गया। ब्रह्मा की सृष्टि में जहाँ तक शरीर धारी स्त्री-पुरुष थे, सभी रावण के वश में हो गये। डर के मारे सभी उसकी आज्ञा का पालन करते और नित्य आकर नम्रतापूर्वक उसके चरणों में सिर नवाते थे।

दो०— भुजबल बिस्व बस्य करि, राखेसि कोउ न सुतंत्र ।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मन्त्र ।।१८२।। (क)

व्याख्या :—उसने अपनी भुजाओं के बल से सम्पूर्ण विश्व को वश में कर लिया और किसी को स्वतन्त्र नहीं रहने दिया । इस प्रकार मंडलीक राजाओं का शिरोमणि चक्रवर्ती सम्राट रावण अपनी इच्छानुसार राज्य करने लगा ।

देव जच्छ गंधर्ब नर, किंनर नाग कुमारि ।
जीति बरीं निज बाहुबल, बहु सुन्दर बर नारि ।।१८२।। (ख)

व्याख्या :— उसने देवता, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर और नागों की कन्याओं तथा और बहुत ही सुन्दर और उत्तम स्त्रियों को अपनी भुजा के बल से जीतकर ब्याह लिया ।

चौ०—इन्द्रजीत सन जो कछु कहेऊ । सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ ।।
प्रथमहिं जिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा । तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा ।।

व्याख्या :—मेघनाथ से उसने जो कहा वह सब मानो उसने पहले से ही कर रक्खा था (अर्थात् रावण के कहने भर की देर थी, मेघनाथ उसे इतनी शीघ्रता से करता था मानो वह कार्य पहले से ही कर रक्खा हो) । रावण ने (मेघनाथ से) पहले ही जिन्हें आज्ञा दी थी, उनकी करतूत सुनो कि उन्होंने क्या किया ।

देखत भीमरूप सब पापी । निसिचर निकर देव परितापी ।।
करहिं उपद्रव असुर निकाया । नाना रूप धरहिं करि माया ।।

व्याख्या :—सब राक्षसों के झुण्ड देखने में बड़े भयानक, पापी और देवताओं को दुःख देनेवाले थे । वे सब असुरों के समूह उपद्रव करते और माया करके भाँति-भाँति के रूप धरते थे ।

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला । सो सब करहिं बेद प्रतिकूला ।।
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं । नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं ।।

व्याख्या :—वे सब वेद के प्रतिकूल ऐसे कर्म करते थे जिनसे धर्म का जड़ से नाश हो । वे जिस-जिस देश में गौ और ब्राह्मण पाते थे उसी शहर, गाँव और पुर में आग लगा देते थे ।

सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई । देव बिप्र गुरु मान न कोई ।।
नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना । सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना ।।

व्याख्या :—(उनके डर से) कहीं भी शुभ कर्म नहीं होते थे। देवता, ब्राह्मण और गुरु को कोई नहीं मानता था। न तो भगवान् की भक्ति थी और न ही यज्ञ, तप और ज्ञान था। वेद और पुराण तो स्वप्न में भी सुनाई नहीं देते थे।

छं०—जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा।
आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।
तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना॥

व्याख्या :—रावण जहाँ कहीं कानों से जप, योग, वैराग्य, तप और यज्ञ कर्म होने के विषय में सुनता, तो स्वयं उठ दौड़ता था। कुछ भी रहने नहीं देता था और निशिचाना हो सब विध्वंस कर डालता था। संसार में ऐसा भ्रष्ट आचरण फैल गया कि धर्म तो कानों से भी सुनाई नहीं देता था। जो कोई वेद और पुराण कहता उसे वह बहुत तरह से दुःख दे-देकर देश से निकाल देता था।

सो०—बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥१८३॥

व्याख्या :—राक्षस जो घोर अनीति करते, उसका वर्णन नहीं हो सकता। जिनकी हिंसा पर बहुत प्रीति हो, उनके पापों की क्या सीमा हो सकती है!

चौ०—बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥

व्याख्या :—बहुत से दुष्ट, चोर और जुआरी बढ़ गये जो परायी स्त्री और पराये धन पर मन चलाने वाले थे। लोग माता-पिता और देवताओं को नहीं मानते थे और साधुओं से सेवा करवाते थे।

जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥
अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥

व्याख्या :—(शिवजी कहते हैं) हे पार्वती! जिनका ऐसा आचरण है उन सब प्राणियों को राक्षस ही जानो। धर्म के प्रति मनुष्यों के हृदय में भारी अनास्था देखकर पृथ्वी बहुत ही भयभीत एवं व्याकुल हो गयी।

गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ।।
सकल धर्म देखइ विपरीता। कहि न सकइ रावन भयभीता ।।

व्याख्या :—(और मन में सोचने लगी) पहाड़, नदी, और समुद्र का बोझ मुझे इतना भारी नहीं जान पड़ता, जितना भारी बोझ एक परद्रोही का लगता है। सभी धर्म को विपरीत हुआ देखते हैं, पर रावण के डर के मारे कह नहीं सकते।

## पृथ्वी और देवतादि की करुण पुकार

धनु रूप धरि हृदयँ विचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी ।।
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू तें कछु काज न होई ।।

व्याख्या :—हृदय में सोच-विचारकर पृथ्वी गौ का रूप धारण कर वहाँ गयी जहाँ सब देवता और मुनि थे। पृथ्वी ने रोकर उन्हें अपना दुःख सुनाया, पर किसी से कुछ काम न बना।

छं०—सुर मुनि गंधर्वा मिलि करि सर्वा गे विरंचि के लोका।
संग गोतनुधारी भूमि विचारी परम विकल भय सोका ।।
ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई ।।

व्याख्या :—देवता, मुनि और गन्धर्व सब मिलकर ब्रह्मलोक को गये। उनके साथ भय और शोक से व्याकुल बेचारी पृथ्वी भी गौ का रूपधरे चली। ब्रह्माजी ने सब जानकर मन में अनुमान किया कि इसमें मेरा कुछ वश नहीं चल सकता। (तब उन्होंने पृथ्वी से कहा) जिसकी तू दासी है, वही अविनाशी भगवान् हमारे और तेरे सहायक हैं।

सो०—धरनि धरहि मन धीर, कह विरंचि हरिपद सुमिरु।
जानत जन की पीर, प्रभु भंजिहि दारुन बिपति ।।१८४।।

व्याख्या :—ब्रह्माजी ने भगवान् के चरणों का स्मरण करके कहा—हे पृथ्वी ! मन में धैर्य धारण करो। प्रभु भक्तों की पीड़ा को जानते हैं। वे ही हमारी कठिन विपत्ति का नाश करेंगे।

चौ०—बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा ।।
पुर बैकुण्ठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई ।।

व्याख्या :—सब देवता बैठकर विचार करने लगे कि भगवान् को कहाँ ताकि उनके सामने पुकार करें। कोई वैकुण्ठपुरी में जाने को कहता था

और कोई कहता था कि वे प्रभु क्षीरसागर में रहते हैं।

जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती ॥
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ ॥

व्याख्या :—जिनके हृदय में जैसी भक्ति और प्रीति है, भगवान् वहाँ सदा उसी रीति से प्रकट होते हैं। (शिवजी कहते हैं कि) हे पार्वती! उस समाज में मैं भी था अवसर पाकर मैंने एक बात कही—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥

व्याख्या :—भगवान् तो सब जगह समान रूप से व्यापक हैं और प्रेम से प्रकट हो जाते हैं, इस बात को मैं जानता हूँ। देश, काल, दिशाओं और विदिशाओं में, कहो ऐसी जगह कहाँ है, जहाँ प्रभु नहीं हैं।

अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ॥
मोर वचन सबके मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना ॥

व्याख्या :—प्रभु इस अग और जग (चर-अचर) में व्याप्त होते हुए भी सबसे रहित और विरक्त हैं। भगवान् प्रेम से ऐसे प्रकट हो जाते हैं जैसे अग्नि (अग्नि अव्यक्त रूप से सर्वत्र व्याप्त है, परन्तु साधन करने पर वह प्रकट हो जाती है, वैसे ही प्रभु भी सर्वत्र व्याप्त है, लेकिन प्रेम से प्रकट हो जाते हैं)। मेरी बात सभी को प्रिय लगी और ब्रह्माजी ने साधु-साधु कहकर मेरी प्रशंसा की।

दो०—सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मतिधीर ॥१८५॥

व्याख्या :—मेरी बात सुनकर ब्रह्माजी के मन में हर्ष हुआ, शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों से आँसू बहने लगे। तब वे धीरबुद्धि ब्रह्माजी सावधान होकर हाथ जोड़कर भगवान् की स्तुति करने लगे।

छं०—जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिन्धुसुता प्रिय कंता ॥
पालन सुर धरनी अद्‌भुत करनी मरम न जानइ कोई ॥
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई ॥१॥

व्याख्या :—हे देवताओं के स्वामी, भक्तों को सुख देने वाले, शरणागत की रक्षा करने वाले भगवान्! आपकी जय हो! जय हो! हे गौ-ब्राह्मणों

का हित करने वाले, राक्षसों के शत्रु, लक्ष्मीजी के प्रिय स्वामी ! आपकी जय हो। हे देवताओं और पृथ्वी के पालक ! तुम्हारी लीला बड़ी अद्भुत है, उसका भेद कोई नही जानता। ऐसे जो स्वभाव से ही कृपालु और दीनदयालु हैं, वे ही प्रभु हम पर कृपा करें।

जय जय अविनासी सब घट बासी व्यापक परमानंदा ॥
अविगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुन्दा ॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृन्दा।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा ॥२॥

व्याख्या :—हे अविनाशी, सबके हृदय में निवास करने वाले, सर्व-व्यापक, परम आनन्द स्वरूप, अज्ञेय, इन्द्रियों से परे, पवित्र-चरित्र, माया से रहित और मुक्ति के दाता ! आपकी जय हो ! जय हो !! जिनके दर्शन के लिए विरक्त मुनिगण अत्यन्त अनुरागी होकर रात-दिन ध्यान करते है और जिनके गुणों के समूह का गान करते हैं, उन्हीं सच्चिदानन्द प्रभु की जय हो।

जेहि सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा ॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा ॥
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा ॥३॥

व्याख्या :—जिन्होंने बिना किसी दूसरे साथी अथवा सहायक के अकेले ही सत-रज-तम-मय तीन प्रकार की सृष्टि को उत्पन्न किया, वे ही पाप का नाश करने वाले प्रभु हमारी चिन्ता करें। हम न भक्ति जानते हैं और न पूजा। जो संसार के भय का नाश करने वाले, मुनियों के चित्त को प्रसन्न करने वाले और दुःखों के समूह के नाशक हैं, हम सब देवताओं के समूह, मन, वचन और कर्म से चतुराई करने की बान (आदत) छोड़कर उन भगवान् की ही शरण आये हैं।

सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना ॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुन्दर गुनमंदिर सुखपुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा ॥४॥

व्याख्या :—जिन्हें सरस्वती, वेद, शेषनाग और सब ऋषि कोई भी नहीं जान सका, जिन्हें दीन अत्यन्त प्रिय हैं और वेद जिनका बखान करते हैं,

वे ही श्रीभगवान् हमारे ऊपर दया करें। हे संसाररूपी समुद्र के मथने के लिए मन्दराचलरूप, सब प्रकार से सुन्दर, गुणों के धाम और सुखों की राशि नाथ! सब मुनि, सिद्ध और देवता बड़े भय से घबराकर आपके चरण-कमलों में नमस्कार करते हैं।

दो०—जानि सभय सुर भूमि सुनि वचन समेत सनेह॥
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥१८६॥

व्याख्या :—देवताओं और पृथ्वी को भयभीत जानकर और उनके प्रेम-पूर्ण वचन सुनकर शोक और सन्देह को हरने वाली गम्भीर आकाशवाणी हुई—

## भगवान् का वरदान

चौ०—जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर वेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर वंस उदारा॥

व्याख्य :—हे मुनि, सिद्ध और श्रेष्ट देवताओं! तुम डरो मत, मैं तुम्हारे लिए मनुष्य रूप धारण करूँगा और पवित्र सूर्यवश में अपने अंगों सहित मनुष्य का अवतार लूँगा

कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरव वर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसल पुरीं प्रगट नर भूपा॥

व्याख्या :—कश्यप और अदिति ने महान् तप किया था और उन्हें मैं पहले ही वरदान दे चुका हूँ। वे ही दशरथ और कौसल्या के रूप में मनुष्यों के राजा होकर अयोध्यापुरी में प्रकट हुए हैं।

तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥
नारद वचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥

व्याख्या :—मैं उन्हीं के घर जाकर रघुकुल में श्रेष्ठ चार भाइयों के रूप में अवतार लूँगा। मैं नारदजी के सब वचन सत्य करूँगा और परम शक्ति सहित अवतार लूँगा।

हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥
गगन ब्रह्मवानी सुनी काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना॥
तब ब्रह्माँ धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जियँ आवा॥

व्याख्या :—मैं भूमि का सब भार हरूँगा। हे देववृन्द! तुम निडर हो जाओ। अपने कानों से आकाश में ब्रह्मवाणी सुनकर सब देवता तुरन्त लौट

गये और उनका हृदय शीतल हो गया। फिर ब्रह्माजी ने पृथ्वी को समझाया। वह निर्भय हुई और उसके जी में भरोसा आ गया।

दो०—निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ ॥१८७॥

व्याख्या :—ब्रह्माजी देवताओं को यह समझाकर अपने लोक को चले गये कि तुम जाकर पृथ्वी पर वन्दरों का शरीर धारण कर भगवान् के चरणों की सेवा करो।

देव फाइन आर्ट प्रेस, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३

वे ही श्रीभगवान् हमारे ऊपर दया करें। हे संसाररूपी समुद्र के मथने के लिए मन्दराचलरूप, सब प्रकार से सुन्दर, गुणों के धाम और सुखों की राशि नाथ! सब मुनि, सिद्ध और देवता बड़े भय से घबराकर आपके चरण-कमलों में नमस्कार करते हैं।

दो०—जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह॥
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥१८६॥

व्याख्या:—देवताओं और पृथ्वी को भयभीत जानकर और उनके प्रेम-पूर्ण वचन सुनकर शोक और सन्देह को हरने वाली गम्भीर आकाशवाणी हुई—

## भगवान् का वरदान

चौ०—जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥

व्याख्या:—हे मुनि, सिद्ध और श्रेष्ट देवताओं! तुम डरो मत, मैं तुम्हारें लिए मनुष्य रूप धारण करूँगा और पवित्र सूर्यवंश में अपने अंशों सहित मनुष्य का अवतार लूँगा।

कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसल पुरीं प्रगट नर भूपा॥

व्याख्या:—कश्यप और अदिति ने महान् तप किया था और उन्हें मैं पहले ही वरदान दे चुका हूँ। वे ही दशरथ और कौसल्या के रूप में मनुष्यों के राजा होकर अयोध्यापुरी में प्रकट हुए हैं।

तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥
नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥

व्याख्या:—मैं उन्हीं के घर जाकर रघुकुल में श्रेष्ठ चार भाइयों के रूप में अवतार लूँगा। मैं नारदजी के सब वचन सत्य करूँगा और परम शक्ति सहित अवतार लूँगा।

हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥
गगन ब्रह्मबानी सुनी काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना॥
तब ब्रह्माँ धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जियँ आवा॥

व्याख्या:—मैं भूमि का सब भार हरूँगा। हे देववृन्द! तुम निडर हो जाओ। अपने कानों से आकाश में ब्रह्मवाणी सुनकर सब देवता तुरन्त लौट

गये और उनका हृदय शीतल हो गया। फिर ब्रह्माजी ने पृथ्वी को समझाया। वह निर्भय हुई और उसके जी में भरोसा आ गया।

दो०—निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ ॥१८७॥

व्याख्या :—ब्रह्माजी देवताओं को यह समझाकर अपने लोक को चले गये कि तुम जाकर पृथ्वी पर बन्दरों का शरीर धारण कर भगवान् के चरणों की सेवा करो।

देव फाइन आर्ट प्रेस, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३

# महाकवि तुलसीदास
## का
# जीवन-परिचय

१. "कलि-कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भयो ।"

—नाभादास

२. "कविता कर्ता तीनि हैं, तुलसी, केसव, सूर ।
कविता-खेती इन लुनी, सीला बिनत मजूर ।।"

३. "सूर-सूर तुलसी ससी, उड़गन केसवदास ।
अबके कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास ।।"

—शिवसिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह-सरोज' में उल्लिखित ।

४. तुलसी-गंग दोउ भये, सुकविन के सरदार ।
इनके काव्यन में मिली, भाषा विविध प्रकार ।।"

—अज्ञात

महाकवि तुलसीदास के विषय में कथित उपर्युक्त पंक्तियाँ हिन्दी-जगत् में सर्वत्र प्रचलित हैं । हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल स्वर्ण-युग के रूप में मान्य है और महाकवि तुलसी तत्कालीन प्रतिनिधि कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं, किन्तु खेद और आश्चर्य का विषय है कि अभी तक हमें अपने लोकप्रिय तथा प्रतिनिधि कवि का प्रामाणिक जीवन-वृत्त भी उपलब्ध नहीं है । भक्तिकाल के अन्य महाकवियों की भाँति इनके जीवन की भी अनेक बात विवादास्पद हैं । अभी तक एकमत अथवा सर्व-सम्मत रूप से हम उनके जीवन की उन बातों को प्रामाणिक रूप से स्वीकार नहीं कर सके हैं । युग-प्रभाव-वश बहुमत का आश्रय लेकर ही उन बातों को सत्य एवं विश्वस्त मान रहे हैं । यद्यपि कल्पना और अनुमान के आधार पर अब भी सत्यता की खोज में हिन्दी के अनेक महारथी तथा शोध-प्रत्याशी निरन्तर प्रयत्नशील हैं, किन्तु अभी तक महाकवि के जन्म-काल, जन्म-स्थान, जाति, मृत्यु-काल आदि के विषय में पर्याप्त मतभेद है ।

तुलसी के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में कुछ झलक तो उनकी रचनाओं में ही दिखाई देती है, कुछ तत्कालीन समसामयिक साहित्य में यत्र-तत्र उल्लेख के रूप में मिलता है। कुछ उनके सम्बन्ध में जनश्रुति अथवा किंवदन्तियाँ भी पर्याप्त मात्रा में प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त अयोध्या, काशी, सोरों तथा राजापुर में भी इनके जीवन से सम्बन्धित सामग्री मिली है। इस प्रकार तुलसी का जीवन-परिचय प्राप्त करने के लिए हमें अन्तर्साक्ष्य तथा बहिर्साक्ष्य दोनों का आश्रय लेना पड़ता है।

अन्तर्साक्ष्य के रूप में तुलसीकृत रामचरित मानस, कवितावली, विनय-पत्रिका आदि काव्य-ग्रन्थ मुख्य हैं। बहिर्साक्ष्य के रूप में तत्कालीन समसामयिक साहित्य के अन्तर्गत—गोसाईं चरित, मूल गोसाईं चरित, तुलसी चरित, भक्तमाल, भक्तमाल की प्रियदास की टीका, दो सौ बावन वैष्णवों की कथा आदि उक्त दोनों साक्ष्यों के साथ-साथ जनश्रुति एवं कल्पना का भी आश्रय लेना पड़ता है।

तुलसी-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रबली पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी, माताप्रसाद गुप्त, रामबहोरी शुक्ल की खोजपूर्ण सम्मतियों के आधार पर निष्कर्ष रूप में तुलसीदास जी का जीवन-वृत्त नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

**जन्म-काल—**

तुलसी के जन्म-काल के सम्बन्ध में दो मत विशेष प्रचलित हैं। एकमत सं० १५५४ वि० में तुलसी का जन्म होना मानता है। इस मत के प्रमुख समर्थक डा० रामकुमार वर्मा, पं० रामबहोरी शुक्ल तथा रामचरित मानस की मानस-मयंक टीका के रचयिता बन्दन पाठक हैं।

दूसरा मत तुलसी का जन्म-काल संवत् १५८९ वि० में होना मानता है। इस मत के समर्थक पं० रामचन्द्र शुक्ल, डा० माताप्रसाद गुप्त, पं० राम गुलाम द्विवेदी हैं।

तुलसी के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ 'रामचरितमानस' की रचना के समय (सं० १६११ वि० के आधार पर) प्रथम मत के अनुसार उनकी अवस्था ७७ वर्ष की स्थिर होती है। अतः रामचरित मानस की रचना ७७ वर्ष की अवस्था में तुलसी ने की हो, यह मत विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। इसलिए

तुलसी के जन्मकाल के सम्बन्ध में द्वितीय मत (सं० १५८९ वि०) ही अधिक मान्य है।

**जन्म-स्थान—**

जन्म-स्थान के सम्बन्ध में जन्म-काल से भी अधिक मतभेद है। इस विषय में खोज तथा छान-बीन भी कम नहीं हुई है। परन्तु अब भी एकमत से अथवा सर्वसम्मत रूप से किसी भी एक स्थान को तुलसी का जन्म-स्थान नहीं माना जाता। विद्वानों का एक दल तुलसी के जन्म-स्थान होने का श्रेय एटा जिले के 'सोरों' को देता है तो दूसरा दल बाँदा जिले के 'राजापुर' को। सोरों के समर्थक हैं—शिवसिंह सेंगर, पं० रामगुलाम द्विवेदी, डा० माताप्रसाद गुप्त तथा पं० रामनरेश त्रिपाठी। राजापुर के समर्थक डा० रामकुमार वर्मा और पं० रामबहोरी शुक्ल हैं। दोनों ही दल अपने-अपने मत को पुष्ट करने के लिए विविध तर्क एवं प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। किन्तु किसी एक मत का निश्चय नहीं होता। मानस के एक दोहे के आधार पर आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ने अपना तीसरा मत प्रकट किया है। मानस का दोहा इस प्रकार है—

"मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सो सूकर खेत,
समुझी नहिं तस बालपन तब अति रहेउँ अचेत"

उक्त दोहे के 'सूकर खेत' को आचार्य जी ने अयोध्या के पास मानकर तुलसी का जन्म वहाँ होना माना है।

इस प्रकार तुलसी के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में अभी तक पर्याप्त मतभेद है।

**जाति—**

यह तो निश्चित ही है कि तुलसी का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था। पर वे सनाढ्य थे अथवा सरयूपारीण? यह विवाद का विषय बना हुआ है। पं० रामनरेश त्रिपाठी उन्हें शुक्ल मानते हैं। उनकी मान्यता का आधार है विनयपत्रिका की निम्नांकित पंक्तियाँ—

"दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को,
जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि मुरारी को।"

उक्त पंक्तियों के 'सुकुल' शब्द को त्रिपाठी जी 'शुक्ल' का द्योतक मानते हैं।

तुलसी ब्राह्मण जाति में उत्पन्न हुए थे यह तो निर्विवाद है परन्तु उनकी उपजाति विवाद का विषय है। कवितावली में भी यह उल्लेख मिलता है—

"जायो कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को"

यहाँ 'कुलमंगन' से अभिप्राय ब्राह्मण वंश से ही है।

**माता-पिता—**

जनश्रुति के अनुसार इनकी माता का नाम 'हुलसी' था तथा पिता का नाम 'आत्माराम दुबे'। कुछ विद्वान् इनके पिता का नाम 'मुरारि मिश्र' भी बताते हैं। पं० रामगुलाम द्विवेदी तुलसी के पिता का नाम 'आत्माराम दुबे' मानते हैं और डा० रामकुमार वर्मा 'मुरारि मिश्र'। तुलसी की माता के नाम के विषय में तो रहीम जी का निम्नलिखित दोहा भी बहुत प्रसिद्ध है—

"सुर-तिय, नर-तिय, नाग-तिय, अस चाहत सब कोय।
गोद लिये हुलसी फिरं, तुलसी सों सुत होय॥"

इस विषय में तुलसी की भी एक पंक्ति है—

"रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी।
तुलसिदास हित हियें हुलसी सी।"

जनश्रुति के अनुसार इनके माता-पिता ने इनको जन्म लेते ही तत्काल त्याग दिया था, क्योंकि इनका जन्म अभुक्त मूल नक्षत्र में हुआ था। जन्म लेते ही इन्होंने राम-नाम का उच्चारण किया था तथा इनके मुँह में बड़े-बड़े दाँत थे। इनकी माता का देहान्त जन्म के कुछ समय पश्चात् ही हो गया था। इनका लालन-पालन इनके घर की एक दासी 'मुनिया' ने किया था। माता-पिता द्वारा त्याग दिए जाने के सम्बन्ध में तुलसी ने भी यत्र-तत्र अपनी रचनाओं में उल्लेख किया है—

"मातु-पिता जग जाय तज्यो,
विधि हू न लिखी कछु भाल भलाई।"

(कवितावली)

"जननी जनक तज्यो जनम करम बिनु बिधि हू सृज्यो अव डेरे।"

(विनयपत्रिका)

"स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा को सो,
टोटक औचट उलटि न हेरयो।"
(विनयपत्रिका)

"जायो कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारें ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हों चारि फल चारि ही चनक को।"
(कवितावली)

जनश्रुति तथा उक्त उद्धरणों को देखते हुए यह तो स्पष्ट है कि तुलसी बचपन में ही माता-पिता से बिछुड़ गये थे। उनकी यह दशा कब से कब तक रही, यह केवल अनुमान और कल्पना पर ही निर्भर हैं।

नाम—

जन्मकाल और जन्म-स्थान की भाँति तुलसी का नाम भी विवादास्पद है। तुलसी ने दो नामों से सम्बोधित किया है—तुलसी और रामबोला।

कवितावली के उत्तर काण्ड में तुलसी ने लिखा है—

"नाम तुलसी भोंड़े भाग सों कहायो दास
कियो अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को।"

उक्त आधार पर आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय मूल नाम 'तुलसी' ही मानते हैं।

'बरवै रामायण' में भी एक स्थान पर तुलसी ने लिखा है—

"केहि गिनती महँ ? जस बन घास।
नाम जपत भये तुलसी तुलसीदास।"

इससे भी यही प्रकट होता है कि मूल नाम तो 'तुलसी' ही रहा होगा। प्रसिद्धि प्राप्त होने पर अथवा दीक्षित होने पर 'तुलसीदास' नाम प्रचलित गया होगा।

'कवितावली' में ही अन्यत्र एक स्थान पर तुलसी ने अपना नाम ही रामबोला लिखा है—

"साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो,
रामबोला नाम, हौं गुलाम राम साहि को।"

'इसी प्रकार 'विनय पत्रिका' में भी तुलसी ने अपने आपको 'रामबोला' नाम से सम्बोधित किया है—

"राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहुँ कहत हौं।"

कुछ विद्वान् इनका नाम 'तुलाराम' भी बोलते हैं। डा० रामकुमार वर्मा भी इसके समर्थक हैं।

**गुरु—**

बचपन की दीनदशा में ही तुलसी का पालन-पोषण करने वाली मुनिया दासी का भी देहान्त हो गया। अब तुलसी बाबा नरहरिदास के आश्रम में रहने लगे। इनको ही तुलसीदास का गुरु कहा जाता है। तुलसी ने भी गुरु के सम्बन्ध में कुछ विशेष नहीं लिखा। रामचरित-मानस के बाल-काण्ड में ही एक दो स्थानों पर गुरु विषयक उल्लेख मिलता है—

"बन्दौं गुरुपद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर।।"

इसके अनुसार उनके गुरु का नाम 'नरहरि' प्रतीत होता है। अपने गुरु से 'सूकर खेत' में राम-कथा सुनने का संकेत भी उन्होंने इसी प्रकरण में किया है—

"मैं पुनि निज गुरु-सन सुनी कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत।"

आगे यह भी लिखा है—

"तदपि कही गुरु बार हि बारा। समुझि परि कछु मति अनुसारा।
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई।।

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर उनके गुरु का नाम 'नरहरि' तथा उनका स्थान 'सूकर खेत' था।

सोरों में उपलब्ध सामग्री के अनुसार तुलसी के गुरु "सोरों-निवासी नरहरि चौधरी" थे।

**विवाहित जीवन तथा संन्यास—**

जनश्रुति के अनुसार तुलसी का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली के साथ हुआ था। इनके एक तारक नाम का पुत्र भी था। कहते हैं

कि तुलसी को अपनी पत्नी से अत्यधिक प्यार था। वे एक दिन भी उसका वियोग सहन नहीं कर सकते थे। एक दिन ये घर से बाहर गये हुए थे, पीछे से एक अत्यावश्यक कार्य ने रत्नावली को उसका भाई अपने घर ले गया। लौटने पर जब तुलसी ने सूना घर देखा तो उसी समय भयंकर रात और घनघोर वर्षा की परवाह न करते हुए गंगा को पार करके अपनी ससुराल जा पहुँचे। रत्नावली अपने पति की इस निकृष्टतम आसक्ति से ऐसी लज्जित हुई कि उसने तुलसी को मर्मभेदी कथन ने आहत कर दिया। रत्नावली ने अपने अस्थि-चर्म-मय देह की निस्सारता प्रकट करते हुए तुलसी से कहा कि—

> "लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ।
> धिक् धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ॥
> अस्थि-चर्म मय देह मम तामें जैसी प्रीति।
> तैसी जो श्रीराम महँ होत न तौ भवभीति॥

रत्नावली की इस मर्मभेदी फटकार ने तुलसी के मोहान्धकार को तत्क्षण ही दूर कर दिया। तुलसी उल्टे पैरों (गृहस्थ को त्याग कर विरक्त होकर) वहाँ से चल दिये। प्रयाग में पहुँच कर इन्होंने वैरागी का बाना धारण कर लिया। वहाँ से अयोध्या पहुँचे। कुछ दिन वहाँ ठहरे और फिर चारों धाम की यात्रा करने चल दिये। चारों धाम की यात्रा करके ये चित्रकूट में आकर रहने लगे।

जनश्रुति के अनुसार चित्रकूट में ही तुलसी को एक प्रेत की प्रेरणा से रामकथा के श्रोताओं में हनुमान जी के कोढ़ी रूप में दर्शन हुए। हनुमान जी की कृपा से तुलसी ने भगवान् राम के भी दर्शन किए निम्नांकित दोहा इसका प्रमाण है—

> "चित्रकूट के घाट पै, भई सन्तन की भीर"
> "तुलसिदास चन्दन घिसैं तिलक देत रघुवीर।"

## काशी–निवास

चित्रकूट में अपने इष्ट राम के दर्शन करके तुलसी फिर एक बार भ्रमण के लिए चल दिये। फिर तुलसी काशी में रहने लगे। जीवन का उत्तरार्द्ध उन्होंने काशी में ही व्यतीत किया। यों उन्हें अयोध्या और चित्रकूट भी अपने इष्ट देव राम के लीला-धाम होने के कारण अत्यन्त ही प्रिय थे, पर

काशी में भी वे कई स्थानों पर रहे। प्रहलाद घाट, हनुमान फाटक, गोपाल मन्दिर और संकट-मोचन उनके काशी-निवास के प्रमुख स्थान थे। अन्तिम दिनों में तो वे गंगा के किनारे असीघाट पर रहने लगे थे।

काशी के उपद्रव के सम्बन्ध में तुलसी ने रुद्रबीसी की चर्चा की है। महामारी का चित्रण भी उन्होंने किया है। कवितावली में इन दोनों का उल्लेख मिलता है। 'हनुमान बाहुक' में तुलसी की बाहु-पीड़ा तथा अन्य कुछ व्याधियों का उल्लेख है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१. "साहसी समीर के दुलारे रघुबीर जू के,
बाँह-पीर महाबीर बेगि ही निवारिए।
२. "पूतना पिसाचिनी ज्यों कपि कान्ह तुलसी की,
बाहु-पीर, महाबीर तेरे मारे मरैगी।"
३. पायँ पीर, पेट पीर, बाहुपीर, मुंह पीर,
जर जर सकल सरीर पीर मई है।"
४. "घेरि लियो रोगिनी कुलोगनि, कुजोगनि ज्यों,
बासर जलद घन घटा धुकि धाई है।"

अपनी इन व्याधियों से छुटकारा पाने के लिए तुलसी ने राम, शिव तथा हनुमान से प्रार्थना की थी। सम्भव है कि उनका देहान्त भी इन्हीं व्याधियों में हुआ हो। यथा—

"रोग भयो भूत सो, कपूत भयो तुलसी को,
भूतनाथ पाहि पद पंकज गहतु हौं।"

**स्वर्गवास—**

तुलसी के जन्म-काल की भाँति उनके अन्तकाल के बारे में भी दो मत हैं। निम्नांकित दो दोहे इसके प्रमाण हैं—

१. "सम्वत् सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
"सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥
२. सम्वत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
सावन स्यामा तीज सनि, तुलसी तज्यो सरीर॥"

गणना के अनुसार श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की तृतीया शनिवार को ही पड़ती है। इसके अतिरिक्त तुलसी के परम मित्र टोडरमल के वंशज इसी दिन सीधा देते हैं।

तुलसी के अन्तिम शब्द पठनीय हैं—

"रामनाम जस बरनि कै, भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अब ही तुलसी-सौन ॥"

तुलसी के जीवन से सम्बन्धित अन्य ज्ञातव्य बातें—

१. तुलसी के परिचित एवं मित्रों में गंगाराम, टोडरमल, महाकवि रहीम जी भी थे। तुलसी द्वारा प्रेषित एक ब्राह्मण को आर्थिक सहायता के साथ साथ उनकी कविता-पंक्ति की पूर्ति भी रहीम जी ने की थी। यथा—

"सुर-तिय, नरतिय, नागतिय, अस चाहत सब कोय।"

—तुलसी

"गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।"

—रहीम

२. मीरां से पत्र-व्यवहार—राणा के द्वारा असहाय यातनाएँ देने पर मीरां ने तुलसी से मार्ग-दर्शन चाहा था। फलस्वरूप तुलसी ने मीरां को एक पद लिख कर भेजा था—

"जाके प्रिय न राम-वैदेही,
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही।

× × × ×

तुलसी सो सब भाँति आपनो पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होइ सनेह राम सों एतो मतो हमारो।"

३. नाभादास जी से भेंट—ऐसा प्रसिद्ध है कि तुलसी नाभादास जी से मिलने वृन्दावन गये थे। ब्रज में राम के नाम का अभाव देखकर तुलसी ने कहा था—

"राधा राधा रटत हैं, आक-ढाक अरु कैर।
तुलसी या ब्रजभूमि में, कहा राम सों बैर ॥"

गोपाल मन्दिर में कृष्ण-मूर्त्ति के समक्ष तुलसी अड़ गये बताये। उन्होंने कहा कि—

कहा कहौं छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बान लो हाथ ॥"

कहते हैं कि मूर्त्ति ने राम के रूप में ही तुलसी को दर्शन दिये तब तुलसी ने उनको प्रणाम किया।

४—यश एवं विरोध—तुलसी अपने समय के यशस्वी भक्त-कवि थे। इस सम्बन्ध में नाभादास द्वारा लिखी हुई ये पंक्तियाँ ही पर्याप्त हैं—

"संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लिए।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भए॥"

तुलसी ने स्वयं भी राम-नाम की महिमा के क्रम में अपने गौरव का संकेत किया है—

"घर घर माँगें टूक पुनि भूपति पूजे पाँय।
जो तुलसी तब राम बिनु, सो अब रामसहाय॥"

—दोहावली

"छार तें संवारि कै पहार हू तें भारी कियो,
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइ कै।"

—कवितावली

हौं तो सदा खर को असवार,
तिहारोई नाम गयन्द चढ़ायो।"

—कवितावली

"पतित पावन राम नाम सों न दूसरो,
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो।"

—विनयपत्रिका

तुलसी को यश-लाभ के साथ-साथ विरोध भी खूब मिला। 'रामचरित मानस' की रचना के यश की प्रतिक्रिया-स्वरूप संस्कृतज्ञों ने तुलसी का विरोध किया। रामभक्ति के प्रचार से कुढ़कर शिव-भक्त पुजारियों ने विरोध किया। कुछ लोग जाति-पाँति के प्रश्न को लेकर तुलसी के विरोधी हो गये। पर तुलसी ने किसी के भी विरोध की परवाह नहीं की। उन्होंने अपने आपको पूर्णतया राम की शरण में प्रस्तुत कर दिया था। दोहावली में तुलसी ने लिखा है—

"तुलसी रघुवीर सेवकहिं खल डाँटत मन माखि।
बरजराज के बालक हिं लवा दिखावत आँखि॥"
"पुन्य पाप जस अजस के भावी भाजन भूरि।
संकट तुलसीदास को राम करहिंगे दूरि॥"

जाति-पाँति के विरोधियों के प्रति तुलसी ने लिखा है—

धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जुलहा कहौ कोऊ,
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब काहू की जाति बिगार न सोऊ।
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को जाको रुचै सो कहै किन कोऊ,
मांग के खैबो मसीत को सोइबो लैबे को एक न दैबे को दोऊ।"

भगवान् राम की कृपा से तुलसी का बाल भी बाँका नही हुआ। जैसा कि उन्होंने लिखा है—

"कौन की त्रास करै तुलसी जो पै राखिहैं राम तो मारि है को रे।"

—कवितावली

"तुलसीदास रघुबीर बाहुबल सदा अभय काहू न डरै।"

—विनयपत्रिका

अन्त में तुलसी के प्रति हरिऔध जी की पंक्ति का उल्लेख करते हुए प्रस्तुत प्रसंग को समाप्त करते हैं

"कविता करके तुलसी न लसे,
कविता लसी पा तुलसी की कला।"

—हरिऔध

## रचनाएं

महाकवि तुलसी की रचनाओं के विषय में भी उनके जीवन की भाँति ही कुछ मतभेद प्रतिलक्षित है। यह मतभेद संख्या की दृष्टि से भी है और रचना-काल की दृष्टि से भी। कुछ रचनाओं में पाठ-भेद और क्षेपक की भी समस्या उत्पन्न होती है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पं० रामचन्द्र शुक्ल, लाला सीताराम आदि ने तुलसी के १२ ग्रन्थों को उनकी प्रामाणिक रचना माना है। अधिकांश विद्वान इस मत से सहमत हैं।

रचना-काल की दृष्टि से तुलसी के काव्य-ग्रन्थों के सम्बन्ध में डा० रामकुमार वर्मा, प० रामनरेश त्रिपाठी तथा डा० माताप्रसाद गुप्त ने भिन्न भिन्न विचार व्यक्त किये हैं। इस सम्बन्ध में ठोस प्रमाणों के अभाव में निश्चित काल-क्रम का निर्णय करना सम्भव नहीं। तुलसी ने अपने लोकप्रिय ग्रन्थ रामचरित मानस में उसका रचनाकाल संवत् १६३१ वि० अंकित किया है—

"संवत् सोरह सौ इकतीसा । करहुँ कथा हरि पद धरि सीसा ।
नौमी भौमवार मधुमासा । अवधपुरी यह चरित प्रकाशा ॥

'मानस' का रचनाकाल कुल कितना है, यह अनिश्चित है। संवत् १६३१ में मानस की रचना प्रारम्भ की थी, पर इसका उल्लेख नहीं है कि समाप्ति कब हुई? आचार्य शुक्ल जी के मतानुसार 'मानस' की रचना में २ वर्ष ७ मास का समय लगा था।

पाठ-भेद और क्षेपक की समस्या और भी जटिल है। कौनसा छन्द तुलसी का रचा हुआ है और कौनसा उनके नाम से जोड़ा गया है, इसका निर्णय करना अत्यन्त कठिन है।

तुलसी की प्रामाणिक रचनाएँ निम्नांकित हैं—

१. वैराग्य सन्दीपनी, २. पार्वती मंगल, ३. जानकी मंगल, ४. रामलला नहछू, ५. रामाज्ञा प्रश्न, ६. गीतावली, ७. रामचरित मानस, ८ कृष्ण गीतावली, ९. बरवै रामायण, १०. दोहावली, ११. विनयपत्रिका, १२. कवितावली।

उपर्युक्त रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

१. वैराग्य सन्दीपनी—

यह शांतरस प्रधान रचना है। इसमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और शान्ति का विस्तृत वर्णन है। इसमें कुल ६२ छन्द हैं। आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय इसे तुलसी की सर्व-प्रथम रचना मानते हैं। इसमें दोहा, चौपाई तथा सोरठा छन्दों का प्रयोग हुआ है।

२. पार्वती मंगल—

इसमें शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन है। इसमें अरुण, हरिगीतिका छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा पूर्वी अवधी है। इसमें कुल १६४ छन्द हैं।

३. जानकी मंगल—

इसमें राम और सीता के विवाह का वर्णन है। यह वाल्मीकि रामायण से समानता रखता है। इसमें अरुण, हरिगीतिका छन्दों का प्रयोग हुआ है। कुल २१६ छन्द हैं। इसकी भाषा अवधी है।

४ रामलला नहछू—

इसमें राम के विवाह के समय का नहछू-वर्णन है। यह सोहर छन्दों की रचना है। कुल छन्द केवल २० हैं।

**५. रामाज्ञा प्रश्न—**

यह एक शकुन ग्रन्थ है। जनश्रुति के अनुसार तुलसी ने इसे अपने मित्र पं० गंगाराम जोशी काशी-निवासी के लिए लिखा है। इसमें तत्कालीन दुकाल का भी यत्र-तत्र वर्णन है। इसमें राम-कथा का वर्णन है। इसके प्रत्येक दोहे से प्रश्न-कर्ता को अपने प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। इसमें ७ सर्ग और कुल ३४५ दोहे हैं। इसकी भाषा व्रजभाषा मिश्रित-अवधि है।

**६. गीतावली –**

यह प्रबन्ध-काव्य और गेय काव्य का मिश्रण सा प्रतीत होता है। इसमें भी ७ काण्ड है। कुल ३२८ पद हैं। शैली पर सूरसागर का प्रभाव है और कथा पर वाल्मीकि रामायण का। इसमें राम के हिंडोले, फाग आदि का वर्णन है। यह करुण रस प्रधान रचना है। इसकी भाषा शुद्ध एवं परिमार्जित व्रजभाषा है।

**७. रामचरित मानस—**

यह तुलसी की सर्वोत्कृष्ट रचना है। तुलसी की समस्त रचनाओं में यह सर्वाधिक लोकप्रिय तथा लोक-प्रचलित रचना है। इसका रचना-काल स्वयं तुलसी ने बालकाण्ड के अन्तर्गत इस प्रकार दिया है—

"संवत् सोरह सौ इकतीसा। करौं कथा हरि पद धर सीसा"

यह एक महत्वपूर्ण काव्य-ग्रन्थ है। विश्व के श्रेष्ठतम प्रबन्ध-काव्यों की कोटि में इसकी गणना की जाती है। हिन्दी में तो इसकी टीकाएँ सबसे अधिक हुई ही हैं, विश्व की प्रमुख भाषाओं में भी इसका अनुवाद हो चुका है।

मानस में रामकथा का वर्णन सात काण्डों में हुआ है—बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकांड तथा उत्तरकाण्ड। त्रिपाठीजी ( श्री रामनरेश ) के मतानुसार मानस में बालकाण्ड का क्रम प्रथम होते हुए भी रचना की दृष्टि से अयोध्या काण्ड का क्रम सर्व-प्रथम है। इसमें नवों रसों का उद्रेक अत्यधिक सुन्दरता के साथ हुआ है।

इसके प्रमुख छन्द हैं—दोहा और चौपाई। इनके अतिरिक्त सोरठा,

तोमर, हरिगीतिका, त्रिभंगी आदि मात्रिक तथा अनुष्टुप, स्रग्धरा, मालिनी, तोटक, वंशस्थ, भुजंग प्रयात, वसन्ततिलका, इन्द्रवज्र, छप्पय आदि वार्णिक छन्दों का प्रयोग भी यत्र-तत्र मिलता है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित मानस में छन्दों की कुल संख्या ६१६७ है।

मानस की भाषा संस्कृत मिश्रित अवधी है। इसकी रामकथा के आधार-ग्रन्थ हैं—वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, हनुमान्नाटक, प्रसन्न राघव तथा श्रीमद्भागवत।

**८. कृष्ण गीतावली—**

इसमें कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। इसमें कुल ६१ पद हैं। इसकी भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा है। इसमें महाभारत के कृष्ण-रूप का चित्रण है।

**९. बरवै रामायण—**

इसमें शृंगारिकता और शांत रस का निरूपण हुआ है। इसमें रस और अलंकार का विवेचन हुआ है। इसमें बरवै छन्द प्रधान है। राम-कथा को संक्षेप में लिखा गया है। इसकी भाषा अवधी है।

**१०. दोहावली—**

यह एक संग्रह ग्रन्थ है। इसमें तुलसी-जीवन के अन्तिम काल में होने वाली 'बाहु-पीड़ा' का भी वर्णन है और 'रुद्रबीसी' का भी। इसके दोहों में नीति, भक्ति, राम महिमा, नाम-माहात्म्य तथा तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। इसमें कुल ५७३ दोहे हैं। इसकी भाषा ब्रज-भाषा है।'

**११. विनयपत्रिका—**

यह मानस के पश्चात् तुलसी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है। इसमें कुल २७९ पद हैं जो सभी गेय हैं। यह शान्त रस-प्रधान रचना है। इसमें ज्ञान-भक्ति-सम्बन्धी विचारों का भी विवेचन हुआ है। प्रारम्भ में इसमें अनेक देवी-देवताओं की स्तुतियाँ हैं। तुलसी ने अपने उद्धार के लिए इसे प्रार्थना के रूप में लिखा है। यह वृद्धावस्था की रचना प्रतीत होती है। इसकी भाषा संस्कृत-निष्ठ परिमार्जित ब्रजभाषा है।

**१२. कवितावली—**

यह भी एक महत्वपूर्ण रचना है। इसमें नवरसों का चित्रण मिलता

है। इसके द्वारा तत्कालीन घटनाओं तथा तुलसी के जीवन का भी कुछ परिचय मिलता है। इसमें प्रबन्धात्मकता भी है और मुक्तत्व भी। इसमें ७ काण्ड हैं। कुल ३६९ छन्द हैं। कवित्त-सवैयों की प्रधानता है। अरण्य काण्ड तथा किष्किन्धा काण्ड में केवल एक ही छन्द हैं। इसकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है।

उपर्युक्त प्रमुख एवं प्रामाणिक रचनाओं के अतिरिक्त तुलसी की सतसई, कुंडलिया रामायण, हनुमान चालीसा, हनुमान बाहुक आदि और भी रचनाएं कही जाती हैं।

## तुलसी की भक्ति-भावना

महाकवि तुलसीदास भक्तिकाल के प्रमुख भक्त कवि हैं। भक्तिकाल का उदय वीर गाथा काल के समाप्त हो जाने पर हुआ था। उस समय हमारे देश में विदेशी शासन स्थापित हो चुका था। भारतीय वीरों की वीरता पराधीनता की सुख-निद्रा में मग्न हो गई थी। साधारण जनता के दुख-दर्द बढ़ते ही जा रहे थे। वास्तव में भारतीय जनता का जीवन निराशा के सागर में गोते लगा रहा था। ऐसी विषम परिस्थितियों में भगवान् की शरण ही एक मात्र आधार थी और भगवत् कृपा ही जीवन का सहारा। इन विकट परिस्थितियों में स्वामी रामानन्द—महाप्रभु वल्लभाचार्य आदि अनेक महात्मा भगवान् की भक्ति का पथ प्रशस्त कर रहे थे। देश में चारों ओर भक्ति की गंगा प्रवाहित होने लगी थी।

हिन्दी कविता भी उक्त सामयिक प्रभाव से प्रभावित हुई। महात्माओं के पथ पर अग्रसर होते हुए हिन्दी के महाकवि—कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि जनता को भक्ति-रस का आस्वादन कराने लगे। यद्यपि कबीर और जायसी जनता को पूर्ण आश्वस्त नहीं कर सके, किन्तु फिर भी उनके सद्प्रयास स्तुत्य हैं। वास्तव में ये दोनों ही महाकवि इस्लाम से प्रभावित थे। अतः भक्ति का थोड़ा-सा ही अंश ये ग्रहण कर सके। उसीका फल था कि ये निर्गुण-निराकार ईश्वर के उपासक बन गये। सगुण और साकार भक्ति के अभाव ने इनको अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल नहीं होने दिया। कबीर में ज्ञान पक्ष की प्रधानता होने से वे कहा करते थे—

"दशरथ-सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना।"

इसी प्रकार जायसी में प्रेम का पक्ष प्रधान था।

जनता को आवश्यकता थी ऐसे भगवान् की, जो उसके दुख-सुख में भाग ले सके, अन्याय और अत्याचारों का दमन कर सके, मनोरंजन और लोक-रक्षण कर सके। इस आवश्यकता की पूर्ति की सगुण भक्त कवियों ने।

महाकवि सूर ने भगवान् कृष्ण की बाल-लीलाओं के द्वारा जन-मन की निराशा और वेदना को दूर किया तथा उल्लास का समावेश भी किया। बाल-गोपाल की सौन्दर्य-पूर्ण झांकी के दर्शन कर कौन ऐसा अभागा, निर्मम और वज्रहृदय होगा, जिसका हृदय उत्फुल्ल एवं विकसित नहीं हो जाता हो? रही सही कमी को पूरा किया तुलसी ने। सूर भगवान् का लोक-मनोरंजक रूप ही दिखा सके, उनका लोक-रक्षक रूप नहीं। तुलसी ने इस अभाव की पूर्ति की। उन्होंने राम के लोक-रक्षक रूप को पूर्ण मर्यादा के साथ प्रकट किया। 'रामचरितमानस'—वर्णाश्रम-धर्म का वह मेरुदण्ड है जिसने उस काल में जनता के मनोबल को स्थिरता और दृढ़ता प्रदान की थी, आशा और शक्ति का संचार किया था। राम के शील, शक्ति तथा सौन्दर्य-पूर्ण चित्रण ने तत्कालीन रावणत्व को पूर्ण रूपेण पराजित करने में सफलता प्राप्त की थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी की वाणी ने भारतीय जन-जीवन को निराशा के सागर में डूबने से बचाया था। तुलसी के इष्टदेव राम सबके त्राता बने थे। रंक से लेकर राजा तक राम को सर्वदा सर्व-व्यापक रूप में समझकर अपने साथ ही अनुभव करने लग गये थे। एक प्रकार से तत्कालीन जन-जीवन राममय हो गया था। यह सब हुआ था भक्त-प्रवर महाकवि तुलसी की अमर वाणी के प्रभाव के फलस्वरूप।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन को तुलसी की भक्ति-भावना की पृष्ठभूमि में लेते हुए अब हम उनकी भक्ति का उल्लेख करेंगे।

**सगुण भक्ति—**

तुलसी सगुण एवं साकार भगवान् के उपासक हैं। निर्गुण और निराकार भगवान् का यत्र तत्र उल्लेख करते हुए भी वे उसकी भक्ति से कोसों दूर रहना चाहते हैं। उनको तो सगुण भक्ति ही प्रिय है। अपने राम को हृदय में पाने की अपेक्षा वे जगती के खुले आंगन में देखना पसन्द करते हैं। तत्कालीन 'अलख' सम्प्रदाय के एक साधु के प्रति उनका कथन द्रष्टव्य है—

"हम लखि, लखहि हमार, लखि, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखै, राम-नाम जपु नीच।।"

इससे प्रकट होता है कि वे ईश्वर को भीतर देखने वालों से कितने असन्तुष्ट थे ? इस सम्बन्ध में तुलसी ने और भी लिखा है—

"अन्तर्जामिहु तें बड़ बाहर जानी हैं राम जो नाम लिये तें।
पैंज परे प्रहलाद हु को प्रगटे प्रभु पाहनतें, न हिएतें।।"

इससे तुलसी का पक्ष स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है कि वे भक्ति-मार्ग के इस सिद्धान्त के पूर्ण समर्थक हैं कि "भगवान् को बाहर जगत् में देखना चाहिए।" मन के भीतर देखना भक्ति-मार्ग का सिद्धान्त न होकर योगमार्ग का है। वस्तुतः निर्गुण पन्थ का ज्ञानवाद श्रुति-सम्मत पथ होने से तुलसी के विरोध से सुरक्षित रह गया अन्यथा तत्कालीन परिस्थितियों में वे इससे मन ही मन अत्यधिक झुंझलाए हुए थे। भक्तों के द्वारा बार-बार यह प्रार्थना कराना कि हे भगवान् ! आपका सगुण रूप ही हमारे मन में बसना चाहिए, तुलसी को स्पष्टतः सगुण भक्त ही सिद्ध करता है।

यद्यपि तुलसी सगुण और निर्गुण तथा भक्ति एवं ज्ञान में कुछ भी भेद नहीं मानते किन्तु श्रेष्ठता वे सगुण और भक्ति को ही प्रदान करते हैं। उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

"सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा। गावहि मुनि, पुरान, बुध वेदा।।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।"

× × ×

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि, प्रगट परावर नाथ।
रघुकुल मुनि मम स्वामि सोइ, कहि सिव नायउ माथ।।"

× × ×

"ज्ञानहि भक्तिहि नहि कछु भेदा। उभय हरहि भव सम्भव खेदा
ज्ञान को पंथ कृपान की धारा। परत खगेस लगत नहीं बारा।।

इस प्रकार तुलसी को हम राम का परम भक्त पाते हैं। राम उनके इष्टदेव हैं। राम के चरणों में उनका अटल अनुराग है। वे सारे संसार को सियाराम मय मानते हैं। उदाहरण अवलोकनीय है—

"सियाराममय सब जग जानी,
करौं प्रनाम जोरि जुग पानी।"

**दास्य-भाव की भक्ति—**

यों तो तुलसी ने भगवान् को पाने के लिए नवधा भक्ति का उल्लेख किया है पर उनको स्वयं को दास्य भाव की भक्ति ही प्रिय है। राम को वे अपना स्वामी मानते हैं और स्वयं को उनका सेवक। तुलसी राम के ऐसे दास हैं जो अपने आपको पूर्णरूपेण राम के सहारे छोड़कर अपने स्वामी की सेवा में संलग्न हो गये हैं। जिस प्रकार एक सेवक अपने स्वामी के भरोसे जीवन की समस्त चिन्ताओं को त्याग देता है, उसी प्रकार तुलसी ने भी राम के भरोसे पर निश्चिन्तता धारण कर ली है। इस प्रकार की भक्ति में विनम्रता भक्त का एक विशिष्ट और आवश्यक गुण है। तुलसी में सर्वत्र यह गुण पूर्ण रूपेण विद्यमान है। भक्त अपने भगवान् को सर्वगुण-सम्पन्न, शील-शक्ति-सौन्दर्य से युक्त और पूर्ण वैभवशाली समझता है तथा स्वयं को सर्वथा दीन-हीन, अयोग्य-असमर्थ मानता । इस प्रकार के भक्त में अभिमान का लेश मात्र भी नहीं होता। तुलसी भी एक ऐसे ही भक्त हैं, जो राम को सर्व-शक्ति-मान्, सर्वगुण-सम्पन्न मानते हैं और स्वयं को परम पातकी। विनयपत्रिका की निम्नाकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

> 'राम ते बड़ो है कौन, मो ते कौन छोटो।
> राम ते खरो है कौन, मोते कौन खोटो॥"
> "तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
> हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज हारी॥"

रामचरितमानस में भी तुलसी ने काकभुशुण्डि के मुख से दास्य भाव की भक्ति (सेवक-सेव्य भाव) का ही समर्थन कराया है—

> "सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।"

अतः यह स्पष्ट है कि तुलसी की भक्ति दास्य भाव की थी।

**समन्वयात्मक भक्ति –**

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार महाकवि तुलसी अपने समय के सर्वश्रेष्ठ संमन्वयकारी साहित्यकार थे। तुलसी का जीवन ही सुन्दर समन्वय का प्रतीक है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने समन्वय का सफल प्रयोग किया था। फिर भला ! भक्ति का क्षेत्र ही समन्वय के बिना कैसे रह सकता था ?

भक्ति के क्षेत्र में तुलसीदास जी ने निम्नांकित बातों में समन्वय किया था—

(क) ज्ञान और भक्ति—

तुलसी ने भक्ति को श्रेष्ठ मानते हुए भी उसमें ज्ञान की स्थिति उचित और आवश्यक मानी है। सिद्धान्ततः इन दोनों में कुछ भी भेद नहीं है जैसा कि तुलसी ने प्रस्तुत पंक्तियों में व्यक्त किया है—

"ज्ञानहि भक्तिहि नहि कछु भेदा। उभय हरहि भव संभव खेदा॥"

भक्ति और ज्ञान के समन्वय का ही एक प्रभाव यह भी था कि तुलसी ने राम और कृष्ण में कुछ भी भेद नहीं माना। यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देवताओं को एक बताकर उनमें भी समन्वय कर दिया। 'राम, शिव भक्त हैं तो शिव राम-भक्त' यह कहना तुलसी जैसे समन्वयकारी कलाकार का ही साहस था अन्यथा शैव और वैष्णवों का मत-भेद तो सर्व-विदित है ही।

(ख) कर्म और भक्ति—

तुलसी की भक्ति कर्म को भी साथ लेकर चलती है। भक्त को संसार से विमुख होकर अकर्मण्य बन जाना तुलसी को पसन्द नहीं। तुलसी की भक्ति का तो प्रमुख उद्देश्य ही यह रहा है कि सत्कर्म करते हुए राम-भक्ति-पथ पर अग्रसर होते रहना चाहिए। राम के आदर्श चरित्र से सत्कर्म का पाठ सीखना तथा रावण के दुश्चरित्र से कुकर्मों का त्याग सीखना तुलसी की भक्ति के प्रमुख प्रेरक अंग रहे हैं।

(ग) अध्यात्म पक्ष और लोकपक्ष—

तुलसी की भक्ति में केवल अध्यात्म पक्ष ही आवश्यक नहीं अपितु लोकपक्ष भी आवश्यक है। दोनों का उचित समन्वय ही सच्ची भक्ति का स्वरूप ग्रहण कर सकता है। 'तुलसी के राम साक्षात् पार ब्रह्म परमेश्वर होते हुए भी नर-रूप में लीला करते हैं। यह उनके समन्वय के सद्गुण का सद्-प्रभाव ही है। शास्त्रीय, वैदिक आदि मर्यादाओं के साथ लोक-मर्यादा का ध्यान भी तुलसी को सदैव बना रहा है। वास्तव में तुलसी की भक्ति सूर की भाँति अन्तर्मुखी नहीं है। उनकी भक्ति में केवल अन्तःसाधना पर ही बल नहीं दिया है अपितु व्यक्तिगत अन्तःसाधना के साथ-साथ लोक-कल्याण की भावना को भी तुलसी ने उतना ही आवश्यक माना है।

(घ) सदाचार और भक्ति—

तुलसी की भक्ति में सदाचार का भी अपूर्व समन्वय है। तुलसी के

राम शक्ति और सौन्दर्य के भण्डार होने के साथ-साथ अत्यन्त शीलवान् भी हैं। इस प्रकार तुलसी ने शील को भक्ति का आलम्बन बनाकर सदाचार और भक्ति को अन्योन्याश्रित कर दिया है।

**लोक-कल्याण की भावना से पूर्ण भक्ति—**

तुलसी की भक्ति में लोक-कल्याण की भावना भी पूर्ण रूपेण समाई हुई है। केवल व्यक्ति-कल्याण से तुलसी को सन्तोष नहीं। वे तो व्यष्टि और समष्टि दोनों का ही मंगल चाहने वाले भक्त कवि हैं। भक्त का स्वभाव सन्तों का सा होना चाहिए। उसमें दूसरों के दुःख को अनुभव करने का गुण होना आवश्यक है। परहित उसके लिए धम हो और पर पीड़ा अधर्म। जैसा कि तुलसी ने लिखा है—

**"परहित सरिस धर्म नहीं भाई। परपीड़ा सम नहीं अधमाई॥"**

**सरलता से परिपूर्ण भक्ति—**

तुलसी की भक्ति में सरलता को भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारतीय भक्त का प्रेम-मार्ग सर्वथा स्वाभाविक तथा सीधा होता है। वह सबके लिए सुलभ भी होता है। तुलसी की निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

**"निगम अगम, साहब सुगम, राम साँचिली चाह।**
**अंबु असन अवलोकियत, सुलभ सबै जग माँह॥**

तुलसी सरलता भी सभी की चाहते हैं, किसी एक की नहीं। उन्होंने मन, वचन और कर्म तीनों की सरलता पर बल दिया है। उदाहरण प्रस्तुत है—

**"सूधे मन, सूधे वचन, सूधी सब करतूति।**
**तुलसी सूधी सकल विधि, रघुवर प्रेम प्रसूति॥"**

भक्त के हृदय में छल-कपट के लिए कोई स्थान ही नहीं होता। वह तो अपने ईश्वर के समक्ष विना किसी दुराव के रहता है। ईश्वर के भी अज्ञात स्वरूप से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता, वह तो ज्ञात रूप के प्रेम में ही लीन रहता है। तुलसी ने लिखा है—

**"जाने जानत, जोइए, विनु जाने को जान ?"**

तुलसी के राम अपने सीधे-सच्चे भक्त के लिए परम उदार और पूर्ण भक्त-वत्सल हैं। उन्होंने लिखा है—

"ऐसो को उदार जग मांही ।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोउ नांही ॥"

वस्तुतः तुलसी ज्ञानपक्ष की अपेक्षा भक्तिपक्ष को अत्यधिक सरल एवं सीधा-सादा मानते हैं। ज्ञान का पथ तो खांडे की धार के समान है, जिस पर चलना खतरे से खाली नहीं, पर भक्ति का मार्ग तो राजमार्ग है जिस पर कोई भी निर्भय होकर चल सकता है। उदाहरण अवलोकनीय है—

'ज्ञान को पंथ कृपान की धारा। परत खगेस लगत नहीं बारा।"
"गुरु कह्यो राम भजन नीको। मोहि लागत राज डगरोसो ॥"

अनन्य भक्ति -

तुलसी राम के अनन्य भक्त थे उनकी भक्ति में अनन्यता का महत्व सर्वोपरि है। विनयपत्रिका में तुलसी ने अनेक देवताओं की स्तुति की है, पर केवल इस इच्छा से कि मैं जन्म जन्मान्तर में राम की भक्ति में लीन रहूँ। अपने इष्टदेव राम की आराधना ही उनके जीवन का चरम लक्ष्य थी। राम के प्रति उनका अनुराग चातकवत् है। यथा—

"एक भरोसो, एक बल, एक आस-विस्वास।
एक राम-घनस्याम हित चातक तुलसीदास ॥"

तुलसी संसार के सब नाते-रिश्ते राम के आधार पर ही मानना चाहते हैं। उन्होंने लिखा है—

"नाते सबै राम के मनियत सुहृद, सुसेव्य जहाँ लों।"

यहाँ तक कि राम-विरोधियों से वे किन्चित् मात्र सम्बन्ध नहीं रखना चाहते। ऐसे व्यक्तियों को अत्यधिक प्रिय होने पर भी करोड़ों शत्रुओं के समान समझ कर त्याग देने का उपदेश तुलसी ने दिया है। उदाहरण प्रस्तुत है—

"जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥"

तुलसी ऐसे अनन्य भक्त क्यों नहीं हों? जबकि वे सारे संसार को ही सियाराममय मानते हैं। यथा—

"सियाराम मय सब जग जानी। करूँ प्रनाम जोरि जुगपानी ॥"

निष्काम भक्ति—

भारतीय भक्ति-मार्ग का एक प्रमुख पक्ष है—'भक्ति का निष्काम

होना ।' सच्ची भक्ति में लेन-देन की भावना नहीं होती ।' किसी इच्छा को लेकर भक्ति करना उचित नहीं । किसी विशिष्ट इच्छा को लेकर की जाने वाली भक्ति सच्ची और उच्च कोटि की उत्तम भक्ति नहीं कही जा सकती । तुलसी राम से कुछ नहीं चाहते, केवल उनकी भक्ति ही तुलसी के लिए पर्याप्त है । यदि कुछ इच्छा भी है तो केवल भक्ति की हो । उदाहरण के लिए निम्नांकित पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं—

"अर्थ न, धर्म न, काम हित, गति न, चहौं निर्वान ।
जन्म जन्म सिय राम-पद, यह वरदान, न आन ।।"

यह है तुलसी की एकमात्र इच्छा । रामचरितमानस में तुलसी ने वाल्मीकि जी से भी इसी इच्छा को प्रकट कराया है—

"सब करि माँगहि एकु फलु, राम-चरन-रति होउ ।
तिन्ह के मन-मन्दिर बसहु, सिय-रघुनन्दन दोउ ।।"
"जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरन्तर तासु मन, सो राउर निज गेहु ।।

राम के चरणों में तुलसी का स्वाभाविक अनुराग है । राम के अवतार होने अथवा एक महान् पुरुष होने के कारण उनकी भक्ति नहीं करते, अपितु राम तुलसी को अत्यन्त प्रिय हैं, इसलिए वे उनके भक्त हैं। उन्होंने लिखा भी हैं—

"लै जगदीस तौ अति भलो, जो महीस तौ भाग ।
तुलसी चाहत जनम भरि, राम चरन अनुराग ।।"

यह है तुलसी की भक्ति में निष्कामता का भाव ।

संक्षेप में हम यह निस्संकोच भाव से कह सकते हैं कि तुलसी भक्त पहले हैं, कवि बाद में । उनकी भक्ति सगुण और साकार ईश्वर के प्रति है, जो दास्य भाव की है, समन्वयात्मक है, लोक-कल्याण-कारिणी है, सरलता, अनन्यता तथा निष्कामता से परिपूर्ण है ।

## महाकवि तुलसी के दार्शनिक विचार

गोस्वामी तुलसीदास भक्त एवं कवि होने के साथ-साथ एक दार्शनिक विद्वान् भी थे । उन्होंने दर्शन शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया था । फलतः उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति भी हुई है ।

सैद्धान्तिक रूप से तुलसी के दार्शनिक विचारों को किसी एक मत

अथवा वाद विशेष की कोटि में नहीं बाँधा जा सकता। हिन्दी के विभिन्न विद्वानों में इस विषय पर पर्याप्त मतभेद है।

डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र आदि अनेक विद्वान् तुलसी को (अद्वैतवादी) कहते हैं तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा आदि तुलसी को विशिष्टाद्वैतवादी मानते हैं। इस सम्बन्ध में श्री वियोगी हरि ने 'विनय-पत्रिका' की टीका में अपनी सम्मति निम्न प्रकार से प्रकट की है—

"सम्भव है तुलसीदास का रूपान्तर में अद्वैतवाद प्रतिपादित महा-वाक्यों में विश्वास रहा हो, पर सिद्धान्त रूप में तो उन्होंने विशिष्टाद्वैतवाद को ही स्वीकार किया है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी के दार्शनिक विचारों के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं।

तुलसी के दार्शनिक विचारों के सम्बन्ध में इस विभिन्नता को परखने के पूर्व हमें अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद का सूक्ष्म अन्तर जान लेना उचित एवं उपयोगी होगा।

**अद्वैतवाद—**

इसके प्रवर्तक स्वामी शंकराचार्य कहे जाते हैं। शंकर के मत से ब्रह्म निर्गुण तथा निराकार है। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के अनुसार ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। 'अहम् ब्रह्मास्मि' के अनुसार मैं ही ब्रह्म हूँ, 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' के अनुसार जीव ब्रह्म ही है दूसरा नहीं। ये कुछ सूत्रवाक्य हैं जो अद्वैतवाद को स्पष्ट करने में सहायक बनते हैं। शंकराचार्य ने यह भी माना है कि जीव और जगत् की सत्ता पृथक् नहीं है। जीव भ्रमवश जगत् को सत्य समझता है। निर्गुण ब्रह्म सजातीय, विजातीय, स्वगत आदि भेदों से परे हैं। जगत् माया का आवरण मात्र है। जीव और ब्रह्म में भी अज्ञान के कारण ही भेद दृष्टिगोचर होता है। आत्मा और परमात्मा का ऐक्य प्रकट करने के लिए अद्वैतवाद में 'सोऽहम्' की कल्पना की गई है। जीव और ब्रह्म का यह ऐक्य-ज्ञान ही मोक्ष है।

**विशिष्टाद्वैतवाद—**

इसके प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य माने जाते हैं। इनके अनुसार निर्गुण रूप के साथ-साथ ब्रह्म का एक सगुण रूप भी है। चिद् चिद् विशिष्ट ब्रह्म के रूप में जीव और जगत् की भी सत्ता मान्य है। जीव ब्रह्म का अंश होते हुए

भी वह सदैव, यहाँ तक कि ब्रह्म के सामीप्य में भी, अपनी सत्ता बनाये रहता है। 'माया' को भगवान की शक्ति मानते हैं। इस वाद में 'सोऽहम्' की कल्पना 'तू' और 'मैं' के रूप में की गई है। ज्ञान-मार्ग के स्थान पर भक्ति-मार्ग का अनुसरण आवश्यक है। इसके अनुसार जीव चित् है तथा जगत् अचित् अर्थात् जड़। स्थूल रूप में जीव और जगत् भी सत्य हैं।

अन्तर—

उक्त प्रकार से दोनों का परिचय प्राप्त कर हम उनका अन्तर अब स्पष्ट जान सकते हैं। संक्षेप में हमें इतना ही जान लेना पर्याप्त एवं उपयोगी रहेगा कि अद्वैतवाद में ब्रह्म के निर्गुण रूप की ही कल्पना है जबकि विशिष्टाद्वैतवाद में निर्गुण के साथ सगुण की भी कल्पना है। अद्वैतवाद में ब्रह्म के अतिरिक्त सब मिथ्या है जबकि विशिष्टाद्वैतवाद में स्थूल रूप से जीव और जगत् भी सत्य हैं। अद्वैतवाद में ज्ञान की प्रधानता है तो विशिष्टाद्वैतवाद में भक्ति की। भक्ति की प्रधानता होने के कारण विशिष्टाद्वैतवाद में अवतार-वाद की भी मान्यता है। अद्वैतवाद में 'सोऽहम्' की कल्पना है तो विशिष्टा-द्वैतवाद में 'तू' और 'मैं' की।

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद का संक्षिप्त परिचय तथा दोनों का सूक्ष्म अन्तर जान लेने के पश्चात् अब तुलसीदास जी के दार्शनिक विचारों को जानना सरल एवं सुगम होगा।

यह तो निर्विवाद तथ्य है कि तुलसी प्रसिद्ध राम-भक्त हैं। राम उनके इष्टदेव हैं। अपने इष्टदेव के चरित्र-निरूपण में तथा उनके समक्ष अपनी विनय-पत्रिका प्रस्तुत करने में यत्रतत्र उनके दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। वास्तव में तुलसी के दार्शनिक विचारों को यदि देखना है तो इसके लिए उनके दो प्रमुख ग्रन्थ रामचरितमानस और विनयपत्रिका देखना ही पर्याप्त होगा।

अद्वैतवादी विचार—

तुलसी के अद्वैतवादी विचार अधिकतर रामचरितमानस में प्रकट हुए हैं। मानस में तुलसी ने ब्रह्म, जीव और माया को प्रस्तुत के साथ-साथ कहीं कहीं अप्रस्तुत के रूप में भी प्रकट किया है—राम को ब्रह्म के रूप में, लक्ष्मण को जीव के रूप में तथा सीता को माया के रूप में। किन्तु फिर भी तुलसी की दृष्टि जितनी राम (ब्रह्म) पर रही है उतनी सीता (माया) पर

नहीं। वैसे उन्होंने माया के विषय में भी बहुत कुछ कहा है। तुलसी ने जीव, जगत् और ईश्वर की त्रयीन लेकर जीव माया और ब्रह्म की त्रयी ली है। वस्तुतः जीव और ब्रह्म की अपेक्षा तुलसी का माया-विचार अत्यन्त गूढ़ है। मानस की निम्नांकित पंक्तियाँ मायावाद के प्रति उनकी स्वीकृति प्रकट करती है—

"गो, गोचर जहँ लगि मन जाई।
तहँ लगि माया जानेहु भाई॥"

विनयपत्रिका में भी इस विषय का उल्लेख तुलसी ने किया है—

'जग नथ वाटिका रही है फलि फूलि रे।
धूआँ के से धौर पर देखि मत भूलि रे॥"

विनयपत्रिका में ही तुलसी ने संसार के मिथ्या होने के बारे में लिखा है—

"अब मैं तोहि जान्यो संसार।
देखत में कमनीय कछुक नाहिन पुनि किये विचार॥"

संसार को भली भाँति जानकर तुलसी जगत् को भ्रम एवं प्रपंच से परिपूर्ण बताते हैं—

"हे हरि! यह भ्रम की अधिकाई।
देखत सुनत कहत समुझत संसय सन्देह न जाई।
× × ×
तुलसीदास सब विधि प्रपंच जग जदपि झूठ स्त्रु ति गावे।"

## विशिष्टाद्वैतवादी विचार—

यद्यपि तुलसी ने भगवान राम की स्तुति में निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार की उपाधियों का उल्लेख किया है पर प्रतीत ऐसा होता है कि जैसे निर्गुण उपाधियों के सम्बन्ध में तुलसी का स्वयं का मत नहीं। इस प्रकार सगुण ब्रह्म की उपाधियाँ उन्हें विशिष्टाद्वैतवादी प्रमाणित करती हैं।

तुलसी में ज्ञान-पक्ष की अपेक्षा भक्ति-पक्ष प्रबल होने से भी यही सिद्ध होता है कि वे अद्वैतवादी न होकर विशिष्टाद्वैतवादी ही हैं। वे भक्ति को ज्ञान से अधिक महत्ता देते हैं। सांसारिक मोह-माया से बचने के लिए भी वे ज्ञान का आश्रय नहीं लेते। उनकी दृष्टि में इस कार्य के लिए भी

भक्ति ही प्रधान है। 'विनय-पत्रिका' में तुलसी ने इस सम्बन्ध में लिखा है—

"तुलसिदास प्रभु मोह शृंखला छूटिहि तुम्हर छोरे।"

विना भगवान् की अनुकम्पा के सांसारिक मोह-माया के वन्धनों से मुक्ति नहीं मिल सकती। यथा—

"विनु तव कृपा दयालुदास हितु मोह न छूटै माया।"

भक्ति के समक्ष तुलसी ज्ञान और कर्म को भी अधिक महत्व नहीं देते। उन्होंने लिखा है—

"भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मो को तो राम का नाम कल्पतरु कलि-कल्यान करो॥
करम-उपासन-ज्ञान वेदमत सो सब भाँति खरो।
मोहि तो सावन के अन्धहि ज्यों सूझत रंग हरो॥"

तुलसी संसार को केवल ब्रह्ममय ही नही मानते वरन् ब्रह्म की साकार माया सीता-सहित मानते हैं। मानस की यह चौपाई द्रष्टव्य है—

"सियाराममय सब जग जानी।"

साथ ही वे केवल राम को ही हृदय में वसने की प्रार्थना नहीं करते अपितु सीताराम दोनों ही के वसने की प्रार्थना करते हैं।

भक्ति तुलसी के लिए सर्वोपरि है। वे मोक्ष को भी तुच्छ समझते हैं। वे तो राम-नाम रूपी मेघ के पपीहा बनकर अथवा राम के चरण-कमलों में भौंरा बनकर ही रहना चाहते हैं। राम का सेवक वनकर रहना वे स्वर्ग और वैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ मानते हैं। विनय-पत्रिका की कुछ पंक्ति उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत हैं—

"राम-नाम नव नेह मेह को मन हठि होइ पपीहा।"

× × ×

"मन-मधुकर पन कै तुलसी रघुपति-पद कमल वसैहौं।"
"को जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर परधाम को।
तुलसी बहुत भलो लागत जग जीवन राम गुलाम को॥"

मानस में तुलसी ने जीव को ईश्वर का अंश माना है। साथ ही यह भी उल्लेख किया है कि माया के वश में जीव बन्दर आदि के समान सांसारिक वन्धनों में वंधा हुआ है। उदाहरण प्रस्तुत है—

"ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ।।
जो माया बस भयउ गुसाईं। बंधेऊ कीर मर्कट की नाईं ।।"

जीव को ईश्वर का अंश मानना विशिष्टाद्वैतवाद का सिद्धान्त है। ईश्वर और जीव के पृथक्-पृथक् धर्म का वर्णन भी तुलसी ने निम्नांकित चौपाइयों में किया है—

"माया वस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुनखानी।
परबस जीव स्वबस भगवन्ता। जीव अनेक एक श्रीकन्ता ।।"

इस प्रकार जीव माया के वश में है, अभिमानी है, पराधीन है और अनेक रूपों में, योनियों में है जबकि ईश्वर स्वाधीन है, एक है और माया उसके वश में है।

ज्ञान और भक्ति को एक मानते हुए भी ज्ञान के पन्थ को कठिन तथा भक्ति के पन्थ को सरल और श्रेष्ठ बताना भी विशिष्टाद्वैतवाद के अधिक निकट है। मानस में इस सम्बन्ध में तुलसी ने लिखा है—

"ज्ञानहि भक्तिहि नहि कछु भेदा। उभय हरहि भव संभव खेदा ।।
ज्ञान को पंथ कृपान की धारा। परत खगेस लगत नहि बारा ।।"

विनयपत्रिका की निम्नांकित पंक्ति में तुलसी ने भक्ति-मार्ग को राज-मार्ग के समान सरल और श्रेष्ठ बताया है—

"गुरु कह्यो-राम-भजन नीको मोहि लागत राज डगरोसो ।।"

भक्ति के अतिरिक्त न उन्हें धर्म-अर्थ चाहिए, न काम और न मोक्ष। उन्हें तो जन्म-जन्म में सीताराम के चरणों की भक्ति सुलभ होती रहे, यही एक तुलसी की उत्कट कामना है। उदाहरण देखिये—

"अर्थ न, धर्म न, कामहित, गति न चहौं निर्वान।
जन्म-जन्म सियराम पद, यह बरदान, न आन ।।"

विशिष्टाद्वैतवाद की 'तू' और 'मैं' की कल्पना विनय-पत्रिका की निम्नांकित पंक्तियों में स्पष्ट है—

"तू दयालु, दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज हारी ।।"

**निष्कर्ष—**

उपर्युक्त विवेचन में हमने तुलसी के दार्शनिक विचारों का सम्यक् दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है। वास्तव में तुलसी अपने समय के सबसे

श्रेष्ट समन्वयवादी कलाकार थे। अतः उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र अद्वैत-वादी और विशिष्टाद्वैतवादी विचारों की अभिव्यक्ति होने से उन्हें किसी एक वाद के बन्धन में नहीं बाँधा जा सकता। वस्तुतः तुलसी परमार्थ और व्यवहार के क्षेत्र में तो अद्वैतवाद (शंकर) के निकट हैं पर ज्ञान के क्षेत्र में वे कोसों दूर हैं। भक्ति पक्ष अधिक सरस, सुबोध, व्यापक एवं परिपुष्ट होने से वे विशिष्टाद्वैतवाद के निकट हो जाते हैं और विनयपत्रिका का निम्नांकित पद तुलसी को इन सबसे पृथक् कर देता है—

"केसव कहि न जाइ का कहिए।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिए।

× × × ×

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै॥"

उक्त पद में वे स्पष्ट रूप से अद्वैत, द्वैत और द्वैताद्वैत के असत्य, सत्य और सत्यासत्य को भ्रममात्र बताकर आत्मलीन होने का सन्देश देते हैं।

अन्त में यही कहना उचित है कि तुलसी की अनन्य भक्ति उनको इन समस्त वादों से कुछ ऊपर ही रखती है।

## तुलसी की काव्य-कला

गोस्वामी तुलसीदास भारत के सर्वश्रेष्ठ कवियों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनकी कला केवल भारत में ही नहीं, अपितु विश्व भर में सम्मान्य है। वे भारत के अमर कलाकार हैं। उनके साहित्य में सत्यं-शिवं-सुन्दरं का अनुपम संयोग मिलता है। तुलसी की काव्य-रचना स्वान्तः सुखाय होते हुए भी जन-जीवन की एक सुन्दर एवं सफल अभिव्यक्ति है। तुलसी की कविता सुर-सरिता के समान ही जनमंगलकारी है। रामचरित मानस में तुलसी ने कविता के सम्बन्ध में इस प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"कीरति भनित भूति भल सोई, सुरसरि सम सब कर हित होई॥"

वास्तव में तुलसी की कविता इस कसौटी पर खरी उतरी है। किन्तु तुलसी को अपनी काव्यकला की श्रेष्ठता पर कभी अभिमान नहीं हुआ।

उन्होंने तो रामचरित मानस की रचना करते समय ही अपनी निरभिमानता को प्रकट कर दिया है। निम्नांकित चौपाइयाँ इस सम्बन्ध में उद्धृत हैं—

"कवि न होउँ नहिं वचन-प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू ॥"
"कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे ॥"
"कवि न होउँ नहिं चतुर कहावौं। मति अनुरूप राम गुण गावौं ॥"

यह है तुलसीदास की निरभिमानता। तुलसी का काव्य दोनों पक्षों की दृष्टि से अनुपम एवं अद्वितीय है। काव्य के दो पक्ष होते हैं—१. भावपक्ष और २. कलापक्ष। कुछ कवियों का भावपक्ष सुन्दर होता है तो कुछ कवियों का कलापक्ष। बहुत कम ऐसे कवि होते हैं जिनका काव्य दोनों पक्षों की दृष्टि से परिपुष्ट एवं समुन्नत होता है। तुलसी एक ऐसे ही आदर्श महाकवि हैं जिनका भावपक्ष भी उत्कृष्ट है और कलापक्ष भी। अब हम तुलसी की काव्यकला के दोनों पक्षों का विवेचन संक्षेप में प्रस्तुत करेंगे।

**भावपक्ष—**

तुलसी का काव्य भाव-प्रधान है। उनका कलापक्ष भी अत्यन्त उत्कृष्ट है, पर उनके काव्य की विशेषता कला की चमत्कारिता नहीं अपितु भाव की अनुभूति है। उनकी भावानुभूति की यह विशेषता है कि वह काव्य-मर्मज्ञों तथा सर्वसाधारण को समान रूप से आनन्द प्रदान करती है। उनके भावों को समझने के लिए कला-मर्मज्ञ होना आवश्यक नहीं।

तुलसी का काव्य स्वान्तः सुखाय होते हुए भी समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। यही कारण है कि तुलसीकृत 'रामचरित मानस' का अध्ययन हिन्दी के समस्त ग्रन्थों से अधिक हुआ है और हो रहा है। एक ओर उसमें सर्वसाधारण को भावमग्न होते देखा जाता है तो दूसरी ओर वह सुविज्ञ जनों के लिए गम्भीर अध्ययन की सामग्री प्रस्तुत करता है। तुलसी के पात्र शिव और अशिव दोनों वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'राम' शिव के आदर्श स्वरूप हैं तो 'रावण' अशिव का। दोनों विरोधी पात्र अपनी सम्पूर्णता को लिए हैं। तुलसीदासजी ने वाह्य प्रकृति चित्रण की अपेक्षा मानवीय अन्तः प्रकृति का चित्रण अधिक सफलता और स्वाभाविकता के साथ किया है। वे मानव-प्रकृति के तो अद्भुत एवं अद्वितीय पारखी प्रतीत होते हैं। उन्होंने अपने आदर्श और सामान्य सभी प्रकार के चरित्र-चित्रण में पात्रों की मनोवृत्तियों

का सूक्ष्म चित्रण किया है। उनके पात्र माता-पिता, पत्नी, पुत्र, बन्धु, सेवक आदि का आदर्श स्वरूप प्रकट करते हैं।

तुलसी की कविता राममय है। उनके राम 'सत्य, सनेह, शील, गुण सागर' हैं। फलस्वरूप उनकी कविता राम के समान ही 'लोकहिताय' बन गई है। राम के चित्रण में उनके शील-शक्ति और सौन्दर्य का सुन्दर समन्वय करके मानवी और दैवी स्वरूप का यथास्थान दिग्दर्शन कराया है। मर्यादा का पालन समाज के लिए तुलसी अत्यन्त आवश्यक मानते हैं। इसीलिए उन्होंने राम को पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया है। तुलसी की रचना में मानसिक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व के अच्छे उदाहरण मिलते हैं, दैवी और आसुरी मनोवृत्तियों के संघर्ष में दैवी मनोवृत्ति की विजय होती है। धर्म और स्नेह के संघर्ष में धर्म विजयी होता है। राम की कथा के तुलसी प्रकाण्ड पण्डित हैं। राम-कथा के मार्मिकस्थलों का मर्म-स्पर्शी वर्णन पाठक को भावोदधि में आकण्ठमग्न कर देता है।

रस-निरूपण की दृष्टि से तुलसी का काव्य रसों का अनुपम भण्डार है। उनके काव्य में नवों रसों की सरस और मधुर अभिव्यक्ति हुई है। रसराज श्रृंगार का वर्णन भी अत्यन्त संयत और मर्यादित है। उनमें कहीं भी कामुकता अथवा अश्लीलता के दर्शन नहीं होते। मानस का 'फुलवारी-प्रसंग' इसका अनूठा उदाहरण है। राम का विरह-वर्णन भी उच्चकोटि का है। श्रृंगार के साथ-साथ हास्य भी उतना ही शिष्ट और संयत है जितना मर्यादा-पूर्ण श्रृंगार। तुलसी के श्रृंगार-वर्णन और हास्य-वर्णन के उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं—

"करत बतकही अनुज सन, मनसिय रूप लुभान।
मुख सरोज मकरंद छवि, करई मधुप इव पान॥"
"देखन मिस मृग विहग तरु, फिरइ बहोरि-बहोरि।
निरखि-निरखि रघुबीर छवि, बाढइ प्रीति न थोरि॥"

'श्रृंगार-वर्णन'

"विन्ध्य के वासी उदासी तपोव्रत धारी महा विनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनि वृन्द सुखारे॥

ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद-मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू करुना करि कानन को पगु धारे॥"

'हास्य-वर्णन'

हास्य की ऐसी अनूठी अभिव्यंजना अन्यत्र दुर्लभ है। स्त्रियों के अभाव में दुःखी मुनिगण सभी शिलाओं के चन्द्रमुखी बन जाने पर एक-एक के स्थान पर अनेक चन्द्रमुखियों को पाने का सौभाग्य प्राप्त कर सकेंगे। ऐसी हास्ययुक्त कल्पना तुलसी जैसे कुशल कलाकार को ही सूझ सकती थी।

'भयानक' रस का परिपाक कवितावली के 'लंका-दहन' में देखा जा सकता है। यह भयानक रस रौद्र रस के द्वारा और भी अधिक प्रधान हो गया है।

लक्ष्मण-शक्ति का प्रसंग करुणरस का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। दोनों गीतावली वात्सल्य रस से ओत-प्रोत हैं। विनयपत्रिका में भक्ति और शान्तरस अपनी चरम सीमा पर पहुँचे हुए हैं।

वास्तव में तुलसी के काव्य में सभी रसों का सम्यक् चित्रण हुआ है। रस-निरूपण की दृष्टि से तुलसी रस-सिद्ध कवि हैं।

तुलसी के काव्य में मानव-जीवन की विविध दशाओं के समावेश से विषय व्यापक एवं विस्तृत हो गया है। फलतः हृदय के विविध भावों की अनूठी अभिव्यक्ति हुई है। अनुभूति की गहनता और व्यापकता से भाव-धारा स्वतः ही निसृत होकर प्रवाहित होती हुई प्रतीत होती है। प्रेम, क्रोध, शोक, भय, उत्साह, आश्चर्य आदि अनेक भावों की सुन्दर व्यंजना तुलसी के काव्य में हुई है जो अन्यत्र दुर्लभ है। सूर ने केवल वात्सल्य का कोना-कोना झाँका था पर तुलसी ने तो जन-जीवन का कोना-कोना झाँका है। इसीलिए तुलसी भारतीय जनता के मन-मन्दिर में सुप्रतिष्ठित हैं। एक ओर तुलसी ने व्यक्तिगत साधना से युक्त शुद्ध भक्ति का उपदेश दिया है तो दूसरी ओर सामाजिक और पारिवारिक जीवन के सुन्दर कर्त्तव्यों के पालन का आदर्श प्रस्तुत किया है। वास्तव में तुलसी ने व्यक्तिगत साधना और लोकधर्म का सुन्दर समन्वय अपने काव्य में किया है। उनका भावपक्ष निस्सन्देह चरमोत्कर्ष पर पहुँचा हुआ है।

**कलापक्ष** --

भावपक्ष की भाँति तुलसी का कलापक्ष भी प्रबल एवं पुष्ट है। तुलसी

के काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष का ऐसा सन्तुलित समन्वय हुआ है जैसा मणि-कांचन का संयोग होता है। तुलसी कबीर के समान मसि-कागद से अछूते नहीं थे। काशी-निवास में उन्होंने वेद-पुराण, आगम-निगम आदि का गम्भीर अध्ययन किया था। केशव की भाँति उन्हें भाषा में कविता करने के कारण लज्जा का भी अनुभव नहीं होता था, उनका दृष्टिकोण था यह था—

"का भाषा का संस्कृत, भाव चाहिए साँच।
काम जू आवे कामरी, का लै करे कमाच॥"

और फिर तुलसी के चरितनायक हैं भगवान् राम जिनका चरित गुप्त जी के शब्दों में स्वयं काव्य है—

"राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।"

अतः तुलसी का कलापक्ष सब प्रकार से समुन्नत है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भक्ति के निर्मल प्रवाह में अनायास ही रीति, गुण, अलंकार, शब्दशक्ति आदि सभी काव्यांग स्वयमेव आ मिले हैं।

तुलसी के काव्य में माधुर्य, प्रसाद और ओज तीनों गुणों का समावेश हुआ है। माधुर्य गुण का उदाहरण दृष्टव्य है—

"बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।"
"चातक, कोकिल कीर चकोरा। कूजत विहग नचत कल मोरा।"
"कंकन, किंकिन, नूपुर-धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।"

ओज गुण के उदाहरण वीर और रौद्ररसों के वर्णन में सर्वत्र देखे जा सकते हैं। जन-जन की वाणी से मुखरित होने वाली मानस की चौपाइयाँ तुलसी के प्रसाद गुण की परियाचक हैं।

तुलसी के काव्य में अलंकारों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग हुआ है। कहीं भी कवि ने सायास अलंकारों का प्रयोग नहीं किया। अनायास ही आवश्यकतानुसार अकृत्रिम रूप से अलंकारों का स्वतः समावेश हो गया है। शब्दालंकारों के प्रयोग ने तुलसी की भाषा का सौन्दर्य निखारा है, तो अर्थालंकारों के प्रयोग ने भाव-सौन्दर्य में चार चाँद लगा दिये हैं। वास्तव में शब्दालंकारों और अर्थालंकारों—दोनों के प्रयोग ने तुलसी की भाव-गंगा में कलित कालिन्दी के सुन्दर संगम का सुहावना दृश्य उपस्थित कर दिया है।

'बरवै रामायण' में अलंकारों की छटा देखते ही बनती है। कुछ प्रमुख अलंकारों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

उपमा— "पीपर पात सरिस मन डोला।"

रूपक— "उदित उदयगिरि-मंच पर, रघुवर-बाल-पतंग।
विकसे सन्त सरोज सब हरषे लोचन भृंग॥"

उत्प्रेक्षा— "लता-भवन ते प्रकट भए, तेहि अवसर दोउ भाइ।
विगसे जनु जुग विमल विधु, जलद-पटल बिलगाइ।"

उल्लेख— "जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी॥"

अपह्नुति— "कह प्रभु हँसि जनि हृदय डराहू।
लूक न, असनि न, केतु न राहू।
ये किरीट दशकंधर केरे।
आवत बालि-तनय के प्रेरे॥"

असंगति— हृदय घावु मेरे, पीर रघुवीरे।"

यमक 'हे विधि! मिलै कवन विधि बाला।"

सम्पूर्ण काव्य में इन अलंकारों तथा अन्य अलंकारों के अनेक सुन्दर एवं स्वाभाविक उदाहरण सहज ही सुलभ हो सकते हैं।

तुलसी ने छन्दों का प्रयोग भी रसानुकूल एवं भावानुकूल ही किया है। मधुर भावों की व्यंजना के लिए गीतों का प्रयोग किया है तो रसराज शृंगार की व्यंजना के लिए सवैयों का। वीर और रौद्र रसों के लिए छप्पय का समुचित प्रयोग किया है। मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग तुलसी-काव्य में हुआ है। दोहा-चौपाई-सोरठा, बरवै, छप्पय आदि प्रमुख मात्रिक छन्द हैं तो मत्तगयन्द, कवित्त, इन्द्रवज्रा, मालिनी आदि वर्णिक छन्द हैं। गीतावली और विनयपत्रिका में विविध राग-रागनियों की सरस रचना की है। प्रबन्ध काव्य के लिए तुलसी ने दोहा-चौपाई को उपयुक्त माना है तो नीति के लिए दोहा-शैली को। इस प्रकार तुलसी ने अपने पूर्ववर्ती तथा समकालीन सभी कवियों की शैलियों में काव्य-रचना की है।

तुलसी के कलापक्ष को समुन्नत बनाने में उनके भाषा-पाण्डित्य का भी बहुत कुछ हाथ रहा है। तत्कालीन काव्य-प्रचलित भाषाओं पर तुलसी

का पूर्णाधिकार प्रतीत होता है। उन्होंने ब्रज और अवधी दोनों में समान रूप से उच्चकोटि की रचनाओं का निर्माण किया है। तुलसी की भाषा परिमार्जित एवं परिष्कृत है। जायसी की ठेठ अवधी भाषा को उन्होंने संस्कृत-मिश्रित करके साहित्यिक रूप प्रदान किया है। तुलसी की अवधी में संस्कृत की कोमल-कान्त पदावली के समावेश से अपूर्व माधुर्य गुण का प्रवेश हो गया है।

तुलसी ने ब्रजभाषा में कवितावली, गीतावली तथा विनयपत्रिका जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना की है तो अवधी में उनका सर्वश्रेष्ठ और विश्व-प्रसिद्ध ग्रन्थ रामचरित मानस लिखा गया है।

तुलसी का काव्य-विन्यास और शब्द-चयन निर्दोष एवं प्रसंगानुकूल है। एक उदाहरण देखिये—

"घन घमण्ड गरजत नभ घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥"

इनकी भाषा में तद्भव शब्द भी हैं तो अरबी फारसी के जन-प्रचलित शब्द भी हैं।

लोकोक्तियों के प्रयोग ने तो भाषा को और भी अधिक सजीव बना दिया है। तुलसी की अनेक चौपाइयाँ स्वयमेव लोकोक्तियाँ बन गई हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

"भई गति सांप छछुन्दर केरी।"
"अंजन कहा आँख जेहि फूटे।"
"प्राण जाहि पर वचन न जाई।"
"कोउ नृप होउ हमें का हानी।"
"हुई है सोइ जो राम रचि राखा।"
"दैव दैव आलसी पुकारा।"
'का वर्षा जब कृषि सुखाने।"

} तुलसी की चौपाइयाँ जो लोकोक्ति बन गई हैं।

उक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि तुलसी की काव्य-कला उच्चकोटि की ही नहीं अपितु अद्वितीय है। काव्य के दोनों पक्ष भावपक्ष और कलापक्ष—प्रबल एवं पुष्ट है, रस-परिपाक, छन्द और अलंकार योजना, भाषा-सौन्दर्य सभी की दृष्टि से तुलसी की काव्य कला अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँची हुई हैं।

**तुलसी की काव्यगत विशेषताएं—**

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल को विद्वानों ने स्वर्ण युग की

संज्ञा प्रदान की है। महाकवि तुलसी इसी स्वर्णयुग की अनुपम देन है। दूसरे शब्दों में यदि यह कह दिया जाय कि भक्ति काल को स्वर्णयुग मानने का सुदृढ़ आधार तुलसी साहित्य ही था; तो इसमें अतिशयोक्ति नहीं होगी। तुलसी वस्तुतः अपने युग के प्रतिनिधि कवि थे। तुलसी का काव्य चिरनूतन है। उसके पाठक को प्रत्येक बार नवीनता के दर्शन होते हैं। ऐसे काव्य की विशेषताओं का एक बार ही सम्पूर्ण रूप से उल्लेख कर देना सरल नहीं। फिर भी संक्षेप में तुलसी की काव्यगत विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

१. तुलसी भक्त पहले हैं, कवि बाद में। फलतः तुलसी का काव्य भक्ति से ओत-प्रोत है।

२. तुलसी ने मानव-अन्तःकरण की सूक्ष्म से सूक्ष्म वृत्तियों का अपने काव्य में चित्रण किया है।

३. उनके काव्य में वाह्य जगत् के भी विभिन्न रूपों का वर्णन मिलता है।

४. राम कथा के मार्मिक स्थलों का चयन करके उनका मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।

५. तुलसी का शृंगार-वर्णन भी अत्यन्त संयत, मर्यादित एवं शिष्ट है।

६. उनके काव्य में सभी रसों का परिपाक हुआ है।

७. उनका काव्य स्वान्तः सुखाय होते हुए भी जन हिताय है। उसमें लोक-कल्याण की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है।

८. तुलसी के काव्य में गम्भीरता और मर्यादा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है।

९ तुलसी का काव्य अपने युग का प्रतिनिधित्व करता है। उन्होंने तत्कालीन दोनों काव्य-भाषाओं ब्रज और अवधी–में कविता की है। प्रबन्ध और मुक्तक दोनों शैलियों को अपनाया है। सभी प्रचलित छन्दों को अपने काव्य में स्थान दिया है। यहाँ तक कि 'सोहर' जैसे लोक-छन्द को भी उन्होंने अपनाया है।

१०. तुलसी का काव्य समन्वय का महान् आदर्श प्रस्तुत करता है। लोक और शास्त्र का, गार्हस्थ्य और सन्यास का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृत का, सगुण और निर्गुण का, कथा और तत्वज्ञान का, ब्राह्मण

और चाण्डाल का, पाण्डित्य और अपाण्डित्य का समन्वय उनके महान् ग्रन्थ 'रामचरित मानस' में देखा जा सकता है।

११. तुलसी प्रबन्ध-काव्य की रचना में परम पटु हैं।

१२. उनके काव्य में तीनों गुण मिलते हैं। अपने प्रसाद गुण के कारण तुलसी का काव्य जनता का कल कण्ठहार बना हुआ है।

१३. तुलसी के काव्य में भाव और कला दोनों पक्ष ही प्रबल और पुष्ट हैं।

१४ उनके काव्य में अलंकार अनायास ही आये है जो श्रेष्ठ और स्वाभाविक हैं।

१५. उनकी भाषा भावानुकूल और छन्द-योजना रसानुकूल है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी के काव्य में अनेक विशेषताएँ हैं। वास्तव में महाकवि अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध' ने तुलसी की काव्य-कला के लिए यह ठीक ही कहा है कि—

"कविता करके तुलसी न लसे,
कविता लसी पा तुलसी की कला।"

---

# बालकाण्ड (प्रथम सोपान) का कथनक

सर्व-प्रथम तुलसी ने संस्कृत में सरस्वती, गणेश, पार्वती, शंकर, गुरु, वाल्मीकि, हनुमान, सीता और राम की वन्दना की है। फिर संस्कृत-मिश्रित अवधी भाषा में गणेश, दयालु, विष्णु, शंकर, गुरु की वन्दना की है। तत्पश्चात् पृथ्वी के देवता ब्राह्मणों की, सज्जनों की, सन्तों की वन्दना की है। सन्तों के समाज को प्रयाग और राम की भक्ति को गंगा बताया है। सत्संगति की महिमा बताकर फिर एक बार सन्तों की वन्दना की है तथा उसके पश्चात् दुर्जनों की वन्दना करते हुए उनके कार्य-व्यवहार का वर्णन किया है। सत्संगति के लाभ और कुसंगति की हानियाँ बताकर तुलसी ने संसार के जड़-चेतन सबको राममय जानकर प्रणाम किया है। देवता-राक्षसों, मनुष्य, नाग, पक्षी, प्रेत, पितृगण, गन्धर्व, किन्नर सबसे प्रणाम करते हुए उनकी कृपा चाही है। अपनी लघुता और असमर्थता को प्रकट करते हुए संसार के चौरासी लाख

योनियों के जीवों से युक्त जगत् को सीता राममय मानकर प्रणाम किया है। अपने पूर्ववर्ती वाल्मीकि, व्यास आदि कवि तथा समकालीन कवि और भविष्य में होने वाले सभी कवियों को, जो राम कथा के गायक हैं, प्रणाम करते हुए उनसे आशीर्वाद चाहा है। फिर चारों वेद, ब्रह्मा की चरण-रज, देवता, ब्राह्मण, पण्डित, सरस्वती, गंगा, शंकर-पार्वती, अयोध्या, सरयू, अवधपुरवासी, कौशल्या, राजा दशरथ, अन्य रानियों, जनक तथा उनका परिवार, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान, सुग्रीव, जाम्बवान्, अंगद, विभीषण, वानर समाज, शुकदेव, सनकादि, नारद, ऋषि-मुनि, सीता, राम को प्रणाम किया है। राम के गुण और महत्व बताकर राम से राम के नाम को बड़ा बताया है।

उक्त वन्दना, प्रणाम और कृपा-याचना के पश्चात् तुलसी ने रामकथा की परम्परा का उल्लेख किया है कि शंकर ने पार्वती और काकभुशुंडि को, काकभुशुण्डि ने याज्ञवल्क्य को, याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज को राम-कथा सुनायी थी। तुलसी ने बचपन में बारबार अपने गुरु से सुनी थी। इसी आधार पर वे अपनी बुद्धि और हरि-प्रेरणा से राम-कथा कहने का संकेत देते हैं। राम कथा का महत्व बताते हुए तुलसी कहते है कि कल्पभेद से कथाभेद देखकर संशय नहीं करना चाहिये।

फिर उन्होंने रामचरित मानस का रचना-काल-नौमी, भौमवार, मधुमास सम्वत् १६३१ बताकर अयोध्या में उसके प्रकट होने की सूचना दी है। इसके बाद रामचरित मानस के नाम का कारण प्रकट किया है। उसकी सार्थकता प्रमाणित करने के लिए सांगरूपक का आश्रय लिया है। मानस की कविता को रूपक के द्वारा सरयू बताया है।

तदनन्तर तुलसी माघ में मकर-स्नान के लिए आये हुए ऋषि-मुनियों का प्रयाग-स्थित भरद्वाज आश्रम में से जाने का उल्लेख करते हैं। उस समय भरद्वाज याज्ञवल्क्य से पूछते हैं कि राम कौन हैं? अवधेश कुमार ही राम है अथवा कोई अन्य? जिनकी महिमा सन्त, पुराण, उपनिषद गाते हैं, शिवजी जिनको भजते हैं, वे कौन से राम हैं? तब याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज को उमा-शम्भु का संवाद सुनाया है। त्रेता युग की सती-मोह की कथा सुनायी है। दक्ष-यज्ञ का विध्वंस, सती का प्राणत्याग, पार्वती के रूप में हिमालय के घर जन्म तथा शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन किया है। फिर पार्वती ने शंकर

से अपने भ्रम और अज्ञान दूर करने के लिए पूरी रामकथा सुनाने का आग्रह किया है। शिव ने जो कथा सुनायी थी उसका संक्षिप्त वर्णन निम्नांकित है—

शिवजी ने पार्वती जी को पहले अवतार के सामान्य प्रयोजन बताये और फिर विशेष प्रयोजन भी बताये। भगवान् विष्णु के दो द्वारपालों—जय और विजय—के शाप की कथा, उनका हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु के रूप में जन्म, वराहरूप से हिरण्याक्ष का वध तथा नृसिंहरूप से हिरण्यकशिपु का वध, इन्हीं का फिर रावण-कुम्भकर्ण के रूप में जन्म लेने का वृत्तान्त सुनाया।

कश्यप और अदिति ने दशरथ और कौशल्या के रूप में जन्म लिया, तब एक कल्प में राम का अवतार हुआ।

एक कल्प में जलन्धर दैत्य का वध करने के लिए उसकी पत्नी सती-वृन्दा के साथ छल करने पर उसके शाप-वश अवतार लेना पड़ा। उस कल्प में जलन्धर ही रावण के रूप में जन्मा था।

एक बार नारद के शापवश अवतार लेना पड़ा। नारद-मोह की कथा इसी से सम्बन्ध रखती है। तब शिव के दो गण रावण और कुम्भकर्ण के रूप में पैदा हुए।

एक समय मनु और शतरूपा की तपस्या से प्रसन्न होकर उनको उनके पुत्र-रूप में जन्म लेने का वरदान दे दिया। तब वे दोनों दशरथ और कौशल्या के रूप में पैदा हुए और भगवान् ने राम के रूप में अवतार लिया। इस प्रकार शिवजी ने पार्वतीजी को रामावतार की कथा सुनायी।

फिर याज्ञवल्क्यजी ने भरद्वाज जी को एक और पुरानी कथा सुनायी जो शिवजी ने पार्वती जी से कही थी। वह कथा थी, राजा प्रतापभानु की। एक शत्रु राजा ने साधुवेश के ढोंग में किस प्रकार राजा को छला और राजा को विप्रशाप-वश सपरिवार नष्ट होना पड़ा तथा रावण के रूप में सपरिवार जन्म लेना पड़ा। प्रतापभानु का छोटा भाई कुम्भकर्ण के रूप में जन्मा मन्त्री सौतेले भाई विभीषण के रूप में तथा अन्य पारिवारिक सदस्य राक्षसों के रूप में पैदा हुए। इन तीनों भाइयों ने कड़ी तपस्या करके ब्रह्मा से पृथक्-पृथक् वरदान प्राप्त किये। रावण ने मनुष्य और वानर के अतिरिक्त किसी से भी नहीं मारे जाने का वरदान पाया। कुम्भकर्ण ने छः मास सोने तथा एक दिन जागने का वरदान पाया। विभीषण ने रामभक्ति का वरदान प्राप्त किया। रावण ने मय-कन्या मन्दोदरी से विवाह किया। त्रिकूट पर्वत पर बसी हुई

लंका पर अपना अधिकार किया। उसके पुत्र मेघनाथ ने देवराज इन्द्र को जीता। रावण ने देवताओं को नष्ट करने के लिए ब्राह्मण, यज्ञ आदि का नाश करने का आदेश दे दिया। चारों ओर राक्षस फैल गये। समस्त सृष्टि रावण के अन्याय और अत्याचार से दुखी हो गई। देव, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, नर-नाग सभी रावण से पराजित हुए। रावण ने गाय, ब्राह्मण, धर्म को निर्मूल करने के लिए कठोर कदम उठाया। देव-गुरु-विप्र की मान्यता समाप्त करदी। भगवान् की भक्ति, यज्ञ, तप, दान, वेद-पुराण को मिटा दिया। सारा संसार आचार-भ्रष्ट हो गया।

रावण के अनाचार और अत्याचार धरती के लिए असह्य हो गये, तब वह गाय के रूप में देवताओं के पास गई। देवता, मुनि और गन्धर्व गाय को साथ लेकर ब्रह्माजी के पास गये। शिवजी की राय से सबने भगवान् की प्रार्थना की। तब आकाशवाणी हुई कि तुम डरो मत। मैं शीघ्र ही अपने अंशों के साथ सूर्यवंश में राजा दशरथ-कौशल्या के घर नररूप में जन्म लूंगा। नारद के शाप को पूरा करूंगा तथा धरती के दुख दूर करूंगा।

देवगण धरती को सान्त्वना देकर अपने-अपने लोक को जाने लगे तब ब्रह्माजी ने धरती को समझा-बुझाकर आश्वस्त और निर्भय किया तथा देवताओं से कहा कि तुम वानर-रूप में धरती पर जन्म लो और भगवान् की सेवा-सहायता करो ॥१८७॥

कश्यप और अदिति अयोध्या में दशरथ और कौशल्या बने। वृद्धावस्था तक पुत्राभाव होने पर गुरु वशिष्ठ के परामर्श से शृंगी ऋषि के द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। अग्नि प्रकट हुए, अग्नि द्वारा प्रदत्त हवि से तीनों रानियों ने पुत्र प्राप्त किये। चैत्र शुक्ल नवमी को अभिजित नक्षत्र में मध्याह्न में कौशल्या के गर्भ से भगवान् राम ने जन्म लिया। कैकेयी के भरत और सुमित्रा के लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। राजकुमारों का समय पर नामकरण हुआ। यथासमय चूड़ाकरण और उपनयन संस्कार होकर विद्याध्ययन आरम्भ हुआ। विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण ने जाकर उनके यज्ञ की रक्षा की और राक्षसों का संहार किया। ताड़का का वध किया। विश्वामित्र से धनुर्विद्या सीखी।

विश्वामित्र के साथ-साथ ही राम-लक्ष्मण जनक के धनुषयज्ञ को देखने के लिए जनकपुरी भी गये। वहां राम ने शिवधनु को तोड़ दिया। परशुरामजी

क्रुद्ध होते हुए आये। लक्ष्मण के साथ उनकी अप्रिय एवं कटु बातें हुईं। राम ने अपने शान्त स्वभाव से उनसे क्षमा माँगी। उनके भ्रम को दूर किया। परशुराम प्रसन्न होकर वहाँ से चले गए। जनक ने अयोध्या सन्देश भेजा। दशरथ बरात लेकर आये। धूमधाम के साथ राम का विवाह हुआ। शेष तीनों भाइयों का विवाह भी जनक की अन्य तीनों कन्याओं के साथ हो गया। दशरथ चारों वधुओं को साथ लेकर अयोध्या लौटे। सम्पूर्ण अयोध्या आनन्द-मग्न हो गई। बहुत दिनों तक वहाँ आमोद-प्रमोद होते रहे।

## बालकाण्ड का काव्य-सौन्दर्य

महाकवि हरिऔध ने तुलसी की कविता के विषय में लिखा है—

कविता करके तुलसी न लसे,
कविता लसी पा तुलसी की कला।

भक्त शिरोमणि महाकवि तुलसीदास का अमर महाकाव्य 'श्री राम-चरितमानस' भक्ति एवं काव्य के इतने उदात्त भावों एवं कल्पनाओं को समाहित किये हुए है कि हरिऔध जी की उनके विषय में उपर्युक्त उक्ति पूर्णतः सत्य प्रतीत होती है। इस महाकाव्य के प्रत्येक काण्ड का काव्यात्मक सौन्दर्य यद्यपि अति उत्कृष्ट कोटि का है, किन्तु प्रथम काण्ड 'बालकाण्ड' में ही कवि ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का परिचय इतने पूर्ण रूप से दिया है कि उनके काव्य-गुणों की परख के लिए आगे प्रयास करने की कोई अपेक्षा शेष नहीं रह जाती। 'स्वान्तः सुखाय' कविता की उद्घोषण कवि ने इसी काण्ड में की है और कविता के विषय में अपनी मान्यता को भी कवि ने यहीं पर स्पष्ट करते हुए लिखा है—

**हृदय-सिन्धु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहि सुजाना।**
**जो बरसै बर बारि बिचारू। होंहि कवित्त मुकतामनि चारू॥**

'हृदय समुद्र है और उसमें मति (प्रतिभा) सीप के समान है। स्वयं सरस्वती जी स्वाति-नक्षत्र हैं। ऐसी स्थिति में जब सुन्दर विचार रूपी जल की वर्षा होती है तो कविता-रूपी मोती उत्पन्न होते हैं।'

इससे स्पष्ट है कि कवि तुलसीदास हृदय के साथ-साथ प्रतिभा की संगति को काव्य के लिए अनिवार्य मानता है। इस मान्यता को प्राचीन काल से ही काव्य का प्रमुख हेतु स्वीकार किया जा रहा है।

इस प्रकार की उत्कृष्ट प्रतिभा से उत्पन्न काव्य में निश्चित रूप से कलात्मक सौन्दर्य जन्म लेता है। कलापक्ष और भावपक्ष काव्य के दो प्रमुख अंग हैं। जिस काव्य में इन दोनों के सहज उत्कर्ष के दर्शन होते हैं, वह श्रेष्ठ काव्य होता है। बालकाण्ड का कलापक्ष जितना समुन्नत एवं समृद्ध है, भावपक्ष भी उतना ही समुनन्त एवं समृद्ध है। छंद और अलंकार कलापक्ष के तत्व हैं तो रस भावपक्ष का उपादान है। दोहा, चौपाई और सवैया रामचरित मानस के मुख्य छन्द हैं। इन छन्दों का प्रयोग कवि तुलसी ने कथा की गत्यात्मकता के निर्वाह के लिए किया है। किन्तु जहाँ कवि ने किसी वस्तु-स्थिति का कोई प्रभावोत्पादक चित्रण किया है वहाँ दोहा, चौपाई और सवैया के अतिरिक्त अन्य छन्द का भी प्रयोग किया गया है। कवि ने छन्दों का प्रयोग रस-परिपाक के सहायक रूप में किया है और इस कारण यह एक पूर्ण उत्कृष्ट एवं सफल काव्य है।

बालकाण्ड के काव्य-सौन्दर्य का एक बहुत बड़ा अंश उसके अलंकारों में अन्तर्निहित है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और काव्यलिंग कवि के प्रिय अलकार हैं जिनका प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। आदि कवि बाल्मीकि की वन्दना करता हुआ कवि कहता है—

बंदउँ मुनि पद कंजु, रामायन जेहिं निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित॥

कवि श्री सीतारामजी के चरणों की वन्दना निम्नलिखित दोहे में किस परमोत्कृष्ट एवं कलात्मक सौन्दर्य की उद्‌भावना के साथ करता है वह दर्शनीय है—

गिरा अरथ जल बोचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥

कवि अलंकारों के श्लिष्ट प्रयोग में अतीव पटु है और बालकाण्ड में इस पटुता का परिचय अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। रामकथा की व्याख्या करता हुआ कवि रूपक, उपमा और उल्लेख तथा व्यतिरेक अलंकारों की संश्लिष्ट योजना प्रस्तुत करता है—

रामकथा कलि पंनग भरनी पुनि बिवेक पावक कहुँ अरनी।
रामकथा कलि कामद गाई, सुजन सजीवनि मूरी सुहाई।
सोई बसुधातल सुधा तरंगिनी, भय भंजनि भ्रम भक भुअंगिनि॥

इस प्रकार अलंकारों की यह संश्लिष्ट योजना पर्याप्त दूरी तक चलती है। वस्तुतः अलंकारों की यह संश्लिष्ट योजना कवि की समृद्ध काव्य-शक्ति की परिचायिका होती है। इस योजना द्वारा अतिशय कलात्मक सौन्दर्य की सर्जना होती है जिससे पाठक के मन-मानस पर एक परम आह्लादकारी प्रभाव पड़ता है। इस योजना के अन्तर्गत 'सांग रूपक' अलंकार की गणना की जा सकती है। कवि-प्रवर तुलसीदास सांग रूपक अलकार के प्रसिद्ध आचार्य हैं। बालकाण्ड में 'मानस रूपक' इसी प्रकार का एक प्रसिद्ध रूपक है जिसमें रामकथा की प्रत्येक सम्भव स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। अनुप्रास और उत्प्रेक्षा के अतीव मनोहारी चित्र बालकाण्ड में प्राप्त हैं। बालकाण्ड में शृंगार रस के निष्पादन के रूप में अनुप्रास की योजना अत्यन्त मार्मिकता के साथ कवि ने की है—

**कंकन किंकनि नूपुर धुनि सुनि ।**
**कहत लखन सन राम हृदय गुनि ।।**

इन शब्दों द्वारा कवि ने रस की मुख्यता की ओर से अपनी दृष्टि नहीं फेरी है, यह सिद्ध हो जाता है और फिर उस कंकन-ध्वनि के लिए उत्प्रेक्षा और भी अधिक रस उत्पन्न करती है—

**मानहु मदन दुन्दभी दीन्ही, मनसा विश्व विजय कहँ कीन्हीं ।**

'कंकन किंकन नूपुर ध्वनि' को कामदेव की दुन्दभी मानकर चलना शृंगाररस की सर्वोच्चता का प्रतीक बनकर रह गया है। उत्प्रेक्षा में असम्भव की सम्भावना की जाती है और यह रहस्य उत्प्रेक्षा का बीज है। कवि ने इसको पूर्णतः निभाया है। लता भवन से निकलते हुए राम-लक्ष्मण का एक चित्र देखिए—

**लता भवन ते प्रगट भए, तेहि अवसर दोउ भाइ ।**
**बिगसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ ।**

इस प्रकार अलंकारों का सहज प्रयोग और रस की निष्पत्ति में उनका उपयोग बालकाण्ड में अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है जो उसका एक उदात्त पक्ष है।

भावपक्ष के अन्तर्गत रस की वर्णना बालकाण्ड में सम्यक् रूपेण

सम्पन्न की गई है। भक्तिरस से प्रारम्भ होकर वात्सल्य, शृंगार, हास्य, वीर, अद्भुत और रौद्र रसों के विभिन्न आस्वादन कराती हुई बालकाण्ड की कविता-गंगा अन्त में एक ऐसा मिला-जुला आह्लादजनक प्रभाव छोड़ जाती है कि उसमें अवगाहन की पुनः पुनः इच्छा होती है। वात्सल्य रस की सरल उद्भावना कवि ने बालक राम की अपने भाइयों के साथ बालक्रीड़ाओं के द्वारा की है। इन क्रीड़ाओं का आनन्द कवि ने दशरथ तथा कौशल्या को ही प्राप्त नहीं कराया है अपितु पाठक भी उसमें डूब जाता है—

भोजन करइं चपल चित इत उत अवसर पाइ।
भाजि चलें किलकात मुख दधि ओदन लपटाय॥

रामविवाह में शृंगार रस प्रभावशाली और शालीन रूप में प्रकट हुआ है। इस रस की कवि ने जो व्यंजनामूलक सूक्ष्म उद्भावना की है उससे इसका गौरव बढ़ गया है। शृंगार रस का आदर्श रूप बालकाण्ड में प्राप्त है जिसमें रीतिकालीन अश्लीलता की गन्ध तक का अभाव है। राम के और परशुराम के रूप-वर्णन में वीर और रौद्र रस मूर्त्तिमान हो उठे हैं। शिव-विवाह प्रसंग तथा नारद-मोह प्रसंग हास्य और अद्भुत रस की सूक्ष्म रूप से सृष्टि करते हैं। शिव का वह रूप देखकर सुरांगनाओं को भी हँसी आ जाती है—

देखि सिवहिं सुर-त्रिय मुसकाहीं, बर लायक दुलहिनि जग नाहीं।

इस प्रकार समस्त रसों का सुन्दर प्रयोग बालकाण्ड को एक पूर्ण रचना के समान ही बना देता है। यहाँ पर यह ज्ञातव्य है कि कवि ने जान-बूझकर उन रसों की उपेक्षा की है जो इसके विरोधी हैं। करुण, भयानक और वीभत्स रसों की उपेक्षा का यही कारण है।

नवीन प्रसंगों की उद्भावना को भी बालकाण्ड में स्थान मिला है। 'फुलवारी प्रसंग' एक इसी प्रकार की तुलसी की नवीन उद्भावना है। रामचरित मानस से पूर्ववर्ती रामकथा साहित्य में इसका अभाव है। इसकी स्वतन्त्र परिकल्पना द्वारा कवि ने राम-सीता के पारस्परिक स्नेह को और अधिक स्वाभाविक बनाने का सफल प्रयास किया है। संक्षेप में बालकाण्ड में कवि की प्रतिभा का पूर्ण विलास प्राप्त है जिसके द्वारा कवि अपने महाकाव्य के आदिसर्ग' को रस, अलंकार और भाव की दृष्टि से इतना समृद्ध काव्यात्मक सौन्दर्य प्रदान कर सका है।

## बालकाण्ड की विशेषताएँ

बालकाण्ड तुलसीकृत रामचरित मानस का प्रथम काण्ड है। इसकी कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

१. यह काण्ड अन्य काण्डों की अपेक्षा आकार में विशाल है।

२. इस काण्ड में अवान्तर कथाओं की भरमार है। जैसे—सती-मोह, शंकर-पार्वती विवाह, हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु, जलन्धर, प्रतापभानु की रावण के रूप में जन्म लेने की कथाएँ, नारद-मोह, कश्यप-अदिति तथा मनु-शतरूपा के यहाँ पुत्र रूप में रामजन्म की कथा।

३. बालकाण्ड में कुछ प्रासंगिक कथाएँ भी हैं। जैसे—अहिल्या-उद्धार की कथा, ताड़का-वध और परशुराम के आगमन की कथा।

४. बालकाण्ड कथा की अवस्था की दृष्टि से कथानक का प्रारम्भ है। रामकथा का बीज भी बालकाण्ड में ही है।

५. इस काण्ड में रामावतार के कारणों की विशद विवेचना की गयी है।

६. इस काण्ड में धरती पर रावण के द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का प्रदर्शन है जो आज भी धरती पर होने वाले अत्याचारों की तुलना में आता है।

७, पुष्पवाटिका का प्रसंग बालकाण्ड की सर्वश्रेष्ठ विशेषता है। पूर्व-राग का इतना मर्यादित और संयत वर्णन अन्य राम-काव्यों में भी दुर्लभ ही है।

८. दुष्टों की वन्दना तुलसी का सौजन्य और निरहंकार वृत्ति का सूचक है। बालकाण्ड में सन्तों के साथ-साथ असन्तों की भी वन्दना की गयी है।

९. इसमें सत्संग की महिमा का सोदाहरण वर्णन मिलता है जो पाठकों पर पर्याप्त प्रभाव डालता है।

१०. इसी काण्ड में तुलसी के कुछ दार्शनिक विचारों का परिचय मिलता है तथा उनकी दास्य-भाव की भक्ति के दर्शन होते हैं।

११. मानस जैसे सर्वोत्तम काव्य-ग्रन्थ की रचना करते हुए तुलसी ने बालकाण्ड में अपने आपको कवित्व-शक्ति से वंचित बताया है।

१२. बालकाण्ड में भगवान् के दोनों रूपों—निर्गुण और सगुण का विवेचन मिलता है, पर प्रधानता सगुण रूप को ही दी है।

१३. राम के नाम को राम से भी बड़ा और फलदायक बताया है।

१४. शिवजी को राम का अनन्य भक्त बताकर शैव और वैष्णवों में समन्वय का आदर्श प्रस्तुत किया है।

१५. बालकाण्ड में रामकथा का अंश कम है और अवान्तर तथा प्रासंगिक कथाएँ अधिक हैं।

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य विशेषताएँ भी इस काण्ड में हैं, पर प्रमुख विशेषताएँ उपरि-लिखित ही हैं।

**प्रश्न १.—मानस के कथानक के आधार-ग्रन्थ कौन-कौन से हैं? मानस से बाल्मीकि रामायण का अन्तर तथा अन्य ग्रन्थों का मानस पर प्रभाव बताइए।**

उत्तर—मानस का कथानक अत्यन्त प्राचीन है। पुराणों में भी उसका वर्णन मिलता है। महर्षि बाल्मीकि की रामायण में वर्णित कथानक ही मूल रूप से मानस के कथानक का आधार है। यद्यपि यत्र-तत्र कथा और उसके वर्णन-क्रम में कुछ भेद भी आ गया है, फिर भी उसके मूल रूप में कोई अन्तर नहीं आ पाया है। बाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त संस्कृत के कुछ अन्य ग्रन्थों से भी कुछ अंश मानस के कथानक में ग्रहण किये गये हैं।

प्राकृत ग्रन्थों में भी राम-कथा प्रचलित रही है। इसके अतिरिक्त पूर्वी द्वीप समूह के लोक-नाट्यों में भी आज तक राम-कथा सुरक्षित है। इस प्रकार तुलसी को एक जन-प्रचलित कथानक मिला है जिस पर उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से मौलिकता की छाप लगा दी है।

मंगलाचरण के पश्चात् ही तुलसी ने यह भी लिखा है कि—

"नानापुराण-निगमागम-सम्मतं यद्
रामायणे निगदितम् क्वचिदन्यतोऽपि"

इससे यह स्पष्ट है कि तुलसी ने मानस के कथानक का आधार किसी एक ग्रन्थ विशेष को न बनाकर अनेकानेक ग्रन्थों को बनाया था। मुख्यतः मानस-कथानक के आधार-ग्रन्थ इस प्रकार हैं—बाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, हनुमान्नाटक, प्रसन्न राघव—

मानस और वाल्मीकि रामायण के कथानक में मुख्य अन्तर निम्नांकित है—

१. वाल्मीकि के राम 'नरत्व प्रधान' हैं तो तुलसी के राम 'नारायणत्व प्रधान' अर्थात् आदि कवि ने राम को नररूप में चित्रित किया है और तुलसी ने देवरूप में।

२. तुलसी ने कौशल्या को राम के विराट् रूप के दर्शन कराये हैं, आदि कवि ने नहीं।

३. वाल्मीकि ने जयन्त के द्वारा चंचु-प्रहार सीता के स्तन्य-प्रदेश में कराया है और तुलसी ने चरणों में।

४. तुलसी ने लंका काण्ड के पश्चात् उत्तरकाण्ड में भरत-मिलाप, राम-राज्याभिषेक, राम-राज्य-प्रशस्ति आदि का वर्णन किया है, वाल्मीकि ने इन्हें युद्ध-काण्ड के अन्तर्गत ही चित्रित कर दिया है।

५. वाल्मीकि ने लक्ष्मण को रावण की शक्ति से मूच्छित होना दिखाया है जबकि तुलसी ने मेघनाद की शक्ति से दिखाया है।

६. अहिल्या-उद्धार की कथा में भी अन्तर है। वाल्मीकि ने राम के दर्शनोपरान्त अहिल्या को दृश्यमान बताया है और राम-लक्ष्मण दोनों से उसके चरणों को स्पर्श कराया है, जबकि तुलसी ने ऐसा नहीं किया है।

७. शबरी का देहान्त वाल्मीकि ने राम-लक्ष्मण की अनुमति से धधकती अग्नि में चित्रित किया है। तुलसी ने नवधा भक्ति प्राप्त कराके सुग्रीव से मित्रता-हेतु पम्पासर की ओर जाने की सम्मति दिलाकर अपने आप ही पार्थिव शरीर को त्याग देने का चित्रण किया है।

८. मानस का 'फुलवारी प्रसंग' तुलसी की मौलिक कलात्मकता का परिचायक है। रामायण में पूर्वराग की ऐसी मार्मिक व्यंजना नहीं है।

६. 'केवट-प्रसंग' मानस का सरस एवं मधुर प्रसंग है जो रामायण में नहीं है।

१०. वाल्मीकि ने परशुराम का आगमन अयोध्या को लौटते समय दिखाया है जबकि तुलसी ने धनुष यज्ञ के समय जनकपुरी में ही।

११. मानस में वन-गमन के समय सुमित्रा ने लक्ष्मण को उपदेश दिये हैं, पर रामायण में नहीं।

१२. वाल्मीकि ने भरत के आने से पूर्व ही राम को युवराज-पद प्रदान करने की इच्छा दशरथ के द्वारा प्रकट कराई है, जबकि तुलसी के दशरथ भरत के न आ सकने के कारण अत्यन्त दुखी हैं।

१३. मानस की ग्राम-वधुओं का प्रसंग भी वाल्मीकि रामायण में नहीं है।

१४. वाल्मीकि का वालि अन्त समय में भी दुराग्रही ही बना रहता है जबकि तुलसी का वालि राम का भक्त बन जाता है।

१५. वाल्मीकि की शूर्पणखा अपने वास्तविक वेश में ही राम के पास जाती है जबकि तुलसी की शूर्पणखा सुन्दर वेश में।

१६. वाल्मीकि के विभीषण सामान्य रूप से ही राम से जा मिलते हैं जबकि तुलसी के विभीषण चरण प्रहार की घटना से दुःखी होकर मिलते हैं।

१७. रामायण की सीता वनगमन के समय कुछ स्त्रियोचित मर्यादा का त्याग करती हुई प्रतीत होती है जबकि तुलसी की सीता और भी अधिक मर्यादित एवं संयत दिखायी देती है।

अध्यात्म रामायण का मानस पर प्रभाव—

मानस पर अध्यात्म रामायण का प्रभाव राम के सगुण-निर्गुण रूप के विवेचन, त्रिदेवों की स्थिति, भक्ति और ज्ञान, सत्संग, मोक्ष, वैराग्य आदि प्रसंगों पर पड़ा है। साथ ही कथा के उपक्रम, विस्तार एवं उपसंहार पर भी इसी का प्रभाव है। बालकाण्ड की अनेक अवान्तर कथाएँ भी तुलसी ने इसी से ली हैं।

हनुमान्नाटक का प्रभाव —

मानस में अवान्तर कथा-भेद और प्रसंग-विस्तार इसी का प्रभाव है। जनक का प्रण, उनका निराशा-जन्य दुःख, लक्ष्मण का कठोर प्रत्युत्तर, जटायु की करुण मृत्यु पर राम का शोक-प्रदर्शन, सुमित्रा का लक्ष्मण को उपदेश, केवट-प्रसंग, अंगद के व्यंग्यपूर्ण वचन आदि हनुमान्नाटक की प्रेरणा से ही चित्रित हुए हैं।

प्रसन्न राघव का प्रभाव—

हनुमान्नाटक के प्रभाव ही प्रसन्न राघव के भी है। लक्ष्मण-परशुराम संवाद, सीता का विरह-निवेदन, रावण-सीता-वार्तालाप, अशोक वाटिका में मुद्रिका-प्रसंग आदि प्रसन्न राघव के प्रभाव-स्वरूप चित्रित हुए है।

प्रश्न २—सिद्ध कीजिए की बालकाण्ड अवान्तर कथा-प्रसंगों का भण्डार है।

उत्तर—मानस के सातों कांडों में बालकांड सर्वाधिक विस्तृत एवं व्यापक है। इसमें राम के जन्म से लेकर उनके विवाह तक की कथा का समावेश है। पर यह सब तो बालकांड के उत्तरार्द्ध में है, इस प्रथम सोपान का आधे से अधिक भाग अवान्तर कथाओं से भरा हुआ है। इन अवान्तर में भी प्रारम्भिक कथाएँ रामावतार होने के कारणों से सम्बन्ध रखती हैं।

सर्व-प्रथम सती-मोह, दक्ष के यज्ञ में सती का प्राण-त्याग, पुनः पार्वती के रूप में हिमगिरि के यहाँ जन्म और शंकर से विवाह की कथा है। फिर भगवान् शंकर ने पार्वती को विप्रशाप-वश विष्णु भगवान के जय–विजय नामक दो द्वारपालों के हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु होने की कथा सुनायी है। इन दोनों का अन्त क्रमशः वराह तथा नृहसिंह अवतारों के द्वारा होना बताया गया है। दूसरे जन्म में ये दोनों ही रावण और कुम्भकर्ण बनते हैं। इनका अन्त रामावतार द्वारा होता है।

तत्पश्चात् कश्यप और अदिति के दशरथ और कौशल्या के रूप में जन्म लेने की कथा है।

एक कथा जलन्धर राक्षस की है जिसकी पतिव्रता पत्नी वृन्दा के शाप से भगवान् को नर-रूप में जन्म लेना पडा और जलन्धर ही रावण हुआ।

दूसरी कथा नारद-मोह की है। विश्वमोहिनी नामक राजकन्या से विवाह की इच्छा होते हुए भी उसमें असफलता पाकर नारद विष्णु भगवान् को भी शाप देते हैं और हँसी करने वाले दो शिवगणों को भी राक्षस होने का शाप देते हैं।

तीसरी कथा मनु और शतरूपा की है जिनके तप से प्रसन्न होकर भगवान् ने उनके पुत्र में जन्म लेने का वरदान दिया है।

उक्त सभी कथाएँ शंकर भगवान ने पार्वती जी को सुनाई हैं।

राजा प्रतापभानु की कथा याज्ञवलक्य भारद्वाज को सुनाते हैं। राजा भानु विप्रशाप से सपरिवार राक्षस कुल में रावण के रूप में जन्म लेता है। उसका छोटा भाई कुम्भकर्ण बनता है और धर्मात्मा मन्त्री विभीषण के रूप में जन्म लेता है। रामावतार में विभिषण के अतिरिक्त इन सबका कुलनाश हो जाता है।

इन कथाओं के आधार पर ही यह कहा जा सकता है कि बालकांड अवान्तर कथाओं का भण्डार है।